मङ्गलायतन विश्वविद्यालय

॥ विश्वं ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥

MANGALAYATAN
UNIVERSITY

Learn Today to Lead Tomorrow

Hindi I

HNO-1101

Edited By

Dr. Sagufta Parveen

DIRECTORATE OF DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

MANGALAYATAN
UNIVERSITY

विषय सूचि

इकाई–1 जयशंकर प्रसाद 'अजात शत्रु' 1–140

1.1 उद्देश्य 1
1.2 प्रस्तावना 2
1.4 हिन्दी साहित्य एवं भाषा का इतिहास 5
1.5 आधुनिक काल में हिन्दी गद्य के उदय तथा विकास 32
1.6 उर्दू साहित्य 44
1.7 अजातशत्रु : कथासार 45
1.8 अजातशत्रु : नाट्यकला 57
1.9 अजातशत्रु : संवाद योजना 64
1.10 अजात शत्रु : देशकाल और वातावरण 70
1.11 अजातशत्रु : अभिनेयता 75
1.12 अजातशत्रु : प्रतिपाद्य/उद्देश्य 80
1.13 अजातशत्रु : भाषा–शैली 90
1.14 अजातशत्रु : रस–योजना 96
1.15 अजातशत्रु : गीति–योजना 100
1.16 अजातशत्रु : पात्र–योजना 107
1.17 प्रमुख नारी पात्र 122
1.18 अभ्यास प्रश्न 139
1.19 संदर्भ पुस्तकें 140

इकाई–2 हमीदुल्ला 'ख्याल भरमली' 141–188

2.1 उद्देश्य 141
2.2 नवाब हमीदुल्लाह: एक परिचय 142
2.3 परम्परा, प्रगति और स्वरुप 143
2.4 हमीदुल्ला के नाटकों में नारी 159

2.5 'दुलारी बाई' और 'ख्याल भारमली' में लोकनाट्य शैली 162
2.6 "ख्याल भारमली" मंगचलारण की विशिष्टता 176
2.6 सूत्रधार - अभिनेत्री का प्रयोग 177
2.7 भोपा-भोपी का प्रयोग 177
2.8 गायन मण्डली का प्रयोग 178
2.9 भारमली की लोककथा 180
2.10 लोकसंवाद और लोकभाषा 180
2.11 अंग्रेजी शब्द और भाषा का प्रयोग 182
2.12 लोकगीत 183
2.13 लोकनृत्य 184
2.14 लोकवाद्य 185
2.15 पूर्वदीप्ति शैली 186
2.16 हास्य और व्यंग्य 187
2.17 निष्कर्ष 187
2.18 अभ्यास प्रश्न 187
2.19 संदर्भ पुस्तकें 187

इकाई-3 राजेन्द्र यादव 189-212

3.1 उद्देश्य 189
3.2 प्रस्तावना 189
3.3 जन्म एवं बाल्यकाल 194
3.4 शिक्षा-दीक्षा 195
3.5 राजेन्द्र यादव: व्यक्तित्व तथा कृतित्व 196
3.6 राजेन्द्र यादव: कृतित्व 198
3.7 लेखन का प्रारम्भ तथा प्रेरणा 201
3.8 बहुमुखी प्रतिभा 202
3.9 साहित्य की समीक्षा 202
3.10 सम्पादक व अनुवादक 203
3.11 राजेन्द्र यादव की रचना-दृष्टि तथा चिन्तन पर युग का प्रभाव 203
3.12 राजेंद्र यादव के उपन्यास 205

3.13 राजेंद्र यादव की प्रकाशित रचनाएँ। 208
3.14 उपसंहार 210
3.15 अभ्यास प्रश्न 211
3.16 संदर्भ पुस्तकें 211

इकाई-4 निबन्ध 213-296

4.1 उद्देश्य 215
4.2 प्रस्तावना 215
4.3 नवजागरण का प्रभाव 218
4.4 प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना 221
4.5 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन 222
4.6 अनुवाद की भूमिका 223
4.7 नवजागरण का सामान्य परिचय 223
4.8 भारतेंदु युगीन निबंधों में नवजागरण का स्वरूप 225
4.9 समाज सुधार 225
4.10 धर्म सुधार की आवश्यकता पर बल 226
4.11 नारी चेतना 227
4.12 देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना 227
4.13 आचार्य शुक्ल का निबन्ध साहित्य 229
4.14 निबन्ध साहित्य की परिस्थितियाँ 230
4.15 निबन्ध की विशेषताएँ 231
4.16 निबंधकार शुक्ल जी का वैशिष्ट्य 232
4.17 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध साहित्य 233
4.18 आचार्य द्विवेदी के निबंधों में लालित्य तत्व 233
4.19 आचार्य द्विवेदी के निवंधों में सांस्कृतिक तत्व 234
4.20 आचार्य द्विवेदी के निवंधों में जीवटता 236
4.21 ललित निबंध की विकास यात्रा 237
4.22 पं. विद्यानिवास मिश्र का व्यक्तित्व एवं उनका साहित्य संसार 237
4.23 पं. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों का प्रतिपाद्य 238

4.24	भक्तिकाल के काल विभाजन और नामकरण	243
4.25	भारतेन्दु युग का काल-विभाजन और नामकरण	245
4.26	आदिकालीन जैन साहित्य	245
4.27	सिद्ध-नाथ साहित्य	247
4.28	रासो साहित्य	248
4.29	कबीरदास	248
4.30	निर्गुण एवं सगुण भक्ति	249
4.31	आदिकालीन जैन साहित्य	250
4.32	रामभक्ति काव्य के सामन्तवाद विरोधी मूल्य	250
4.33	भक्ति आंदोलन	251
4.34	सूफी प्रेमाख्यानक काव्य	253
4.35	निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानमार्गी शाखा	254
4.36	सूफी प्रेमाख्यान	255
4.37	कृष्णभक्ति काव्य की कथ्यगत विशेषता	255
4.38	रीतिकालीन काव्यभाषा	256
4.39	पुनरुत्थानवाद की अवधारणा	258
4.40	छायावाद	259
4.41	भारतेन्दु युगीन नाटक	259
4.42	तुलनात्मक भाषाविज्ञान	260
4.43	राष्ट्रभाषा और राजभाषा	263
4.44	हिन्दी शब्द की उत्पत्ति एवं विकास	265
4.45	पिजिन और क्रियोल में अंतर	266
4.46	विज्ञापन की भाषा	267
4.47	भाषा और सामाजिक संदर्भ	268
4.48	सार्वभौमिक व्याकरण	269
4.49	हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था	270
4.50	अर्थग्रहण की प्रक्रिया	271
4.51	मौखिक तथा लिखित वार्तालाप	272
4.52	ऐतिहासिक ध्वनि प्रक्रिया परिवर्तन	273
4.53	संसक्ति	273
4.54	भाषा शिक्षण के क्षेत्र	275

4.55	व्यतिरेकी विश्लेषण	
4.56	बहिरंग अलोचना और अंतरंग आलोचना	279
4.57	भाषा शिक्षण की विधि	280
4.58	नुक्कड़ नाटक 'औरत' में स्त्री की समस्याएँ	280
4.59	'धोखा' निबन्ध की शैलीगत विशेषताएँ	281
4.60	सप्रसंग व्याख्या	282
4.61	शुक्ल जी के निबन्धों के भाव और मनोविकार	282
4.62	आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा–शैली	283
4.63	'संस्कृति और जातीयता'	284
4.64	रेखाचित्र और संस्मरण	285
4.65	ठकुरी बाबा की तत्त्वों के आधार	286
4.66	प्रेमचंद द्वारा रचित 'कलम् का सिपाही'	287
4.67	आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'	288
4.68	'किन्नर देश की ओर' की शैली और भाषागत विशेषता	289
4.69	'अदम्य जीवन' की शिल्पगत विशेषता	290
4.70	'ऑक्टेवियो पॉज' नामक साक्षात्कार	291
4.71	व्यंग्य निबन्धकार की दृष्टि से हरिशंकर परसाई	291
4.72	जीवनी और आत्मकथा की तुलना	292
4.73	निष्कर्ष	293
4.74	अभ्यास प्रश्न	295
4.75	संदर्भ पुस्तकें	295

इकाई-1:

जयशंकर प्रसाद

संरचना (Structure)

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

1.4 हिन्दी साहित्य एवं भाषा का इतिहास

1.5 आधुनिक काल में हिन्दी गद्य के उदय तथा विकास

1.6 उर्दू साहित्य

1.7 अजातशत्रु : कथासार

1.8 अजातशत्रु : नाट्यकला

1.9 अजातशत्रु : संवाद योजना

1.10 अजात शत्रु : देशकाल और वातावरण

1.11 अजातशत्रु : अभिनेयता

1.12 अजातशत्रु : प्रतिपाद्य/उद्देश्य

1.13 अजातशत्रु : भाषा-शैली

1.14 अजातशत्रु : रस-योजना

1.15 अजातशत्रु : गीति-योजना

1.16 अजातशत्रु : पात्र-योजना

1.17 प्रमुख नारी पात्र

1.18 अभ्यास प्रश्न

1.19 संदर्भ पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व को जानने हेतु;
- अजात शत्रु : देशकाल और वातावरण को समझने हेतु;

नोट्स

- प्रमुख नारी पात्र का वर्णन करने हेतु।
- अजातशत्रु : कथासार, नाट्यकला, संवाद योजना को समझने हेतु।

1.2 प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद कृत नाटक 'अजातशत्रु' का प्रकाशन 1922 ई. में हुआ था। इसके पूर्व राज्यश्री, विशाख आदि प्रसाद के जो नाटक प्रकाशित हुए थे, उनमें लेखक ने आगे चलकर कुछ परिवर्तन किये थे। आजतशत्रु के प्रथम और द्वितीय संस्करण में अंतर है। द्वितीय संस्करण में वे पद्यांश हटा दिये गये हैं। जिनका प्रयोग पात्र कथोपकथन के बीच करते थे। 'अजातशत्रु' कथानक बौद्ध काल से सम्बन्ध रखता है। समस्त कथा मगध, कोशल तथा कौशांबी के तीन प्रसिद्ध स्थानों पर घटित होती है और यह तीन अंकों में विभिक्त है।

1.3 जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

हिन्दी-साहित्य में छायावाद के कवि शिरोमणि जयशंकर प्रसाद का समय उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक का है। उनका साहित्य अतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान का संदेश है।

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी संवत् 1946 (सन् 1889) को काशी के एक सम्पन्न और यशस्वी घराने में हुआ था। कहा जाता है कि उनके पूर्वज मूलतः कन्नौज के थे। कन्नौज से सत्रहवीं शताब्दी में वे जौनपुर आकर बस गये थे। उसी कुल की एक शाखा अठारहवीं सदी के अंत में काशी जाकर बस गई थी और वहीं उन्होंने तम्बाकू का व्यापार सम्भाल लिया था। उनके इस व्यापार की प्रगति के कारण ही उनकी कीर्ति 'सुँघनी साहू' के रूप में चारों ओर फैल गई और काशी-नरेश के बाद नगर में उन्हीं का रुतबा था। सुँघनी के अलावा तम्बाकू की अन्यान्य किस्मों में भी वे लगातार नई-नई चीजें बनाते रहते थे, जिनका कहीं कोई सानी नहीं था। इस मामले में लगता था कि उन्होंने तम्बाखू के व्यवसाय को एक ललित कला के दर्जे तक पहुँचा दिया है। यह परिवार अपने विद्याप्रेम और दानवीरता के लिए विख्यात था, अतः विद्वानों, कवियों, संगीतज्ञों, पहलवानों, वैद्यों और ज्योतिषियों का वहाँ प्रतिदिन जमघट लगा रहता था। पश्चिमोत्तर सीमा के पठानों और चाकू बेचने वाली खानाबदोश बलूची स्त्रियों से लेकर नेपाल और भूटान के कस्तूरीफरोशों तक, महापंडितों से लेकर जादू-टोने वालों तक, दार्शनिक से लेकर नीम-हकीमों तक, साधु-संतों से लेकर तरह-तरह के पाखंडियों तक – मनुष्य का शायद ही कोई रूप, कोई नमूना हो जो उस रंगमंच पर न आया हो। ऐसे में एक संवेदनशील बालक के चित्त पर जीवन-लीला का यह विपुल और रंगारंग वैविध्य अंकित होता चला गया तो यह स्वाभाविक ही था।

इनका समस्त परिवार शैवमतावलम्बी था, इसलिए इनके परिवार में शैवमत के सिद्धातों पर प्रायः विचार-गोष्ठियां हुआ करती थी। यही कारण है कि आगे चलकर प्रसाद जी शैव-दर्शन से प्रभावित हुए। पंडितों की नगरी काशी में रहते हुए शास्त्रीय चर्चाओं की बारीकियों का प्रभाव उन पर भला कैसे नहीं पड़ता। प्रसाद जी के दादा और पिताजी दोनों इन पांडित्यपूर्ण वाद-विवाद में स्वयं भाग लेते थे, संस्कृत और तर्कशास्त्र में उनकी गति थी। किंतु उनकी सहज व्यावहारिक बुद्धि इस मस्तिष्क-व्यायाम से कहीं अधिक ध्यान अपने शारीरिक-स्वास्थ्य पर देती है। प्रसाद जी के चाचा आदि सभी पहलवान थे। उनके पिता पर ही उतने बड़े कारोबार और पूरे परिवार को संभालने का उत्तरदायित्व था। एक ओर यह वैभव-विलास

तथा दूसरी ओर एक अकेले आदमी के भरोसे सारा कारोबार छोड़कर शेष भाइयों की गैर-जिम्मेदार मस्ती, परिणाम में धीरे-धीरे व्यापार ढीला पड़ता गया। किंतु पिता के जीवन-काल में किसी को इस बारे में चिंता की जरूरत महसूस नहीं हुई।

पिताजी की मृत्यु के समय प्रसाद जी की उम्र केवल ग्यारह वर्ष की थी। घर संभालने की जिम्मेदारी अब उनके बड़े भाई शम्भूरत्न के कंधों पर थी। शम्भूरत्न एक अत्यन्त उदार और विशाल-हृदय व्यक्ति थे। किंतु उनमें अपने पिता जैसी व्यापार-कुशलता नहीं थी और इस कारण पैतृक व्यवसाय को एक के बाद एक धक्के लगते गये। कर्ज सिर पर चढ़ता गया मगर रहन-सहन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और अतिथि-सत्कार पर परम्परा भी यथावत् बनी रही। कुछ ही सालों के भीतर बड़े भाई का सहारा भी सिर से उठ गया और सोलह वर्षीय प्रसाद पर समस्याओं का एक पूरा पहाड़ आ टूटा। आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह जर्जर हो चुके एक संस्कारी कुल-परिवार के लुप्त गौरव की रक्षा और पुनरुद्धार की चुनौती तो मुँह बाए खड़ी ही थी, उस पर अन्तहीन मुकदमेबाजी, भारी कर्ज का बोझ, रहे-सहे को भी मिट्टी में मिला देने को तुले हुए स्वार्थान्ध और षडयंत्रकारी रिश्तेदार, तथाकथित मित्रों-शुभचिन्तकों की खोखली सहानुभूति का असह्य व्यंग... सब कुछ विपरीत-ही-विपरीत था। ऐसे में शिक्षा का क्रम तो टूटना ही था। बड़े भाई के दुलार-भरे संरक्षण में और उर्दू-हिन्दी-व्रज भाषा के काव्य-प्रेमियों की संगत में जो स्वप्न धीरे-धीरे इस किशोर कवि के भीतर पनप रहा था वह स्वप्न था वाग्देवी को अपना समूचना जीवन अर्पित कर देने का, और यहाँ भाग्य ने जैसे इसका उल्टा ही सरंजाम कर रखा था। सोलह वर्ष के सुकुमार कवि को दुनियादारी का कठोरतम पाठ पढ़ाने का। कोई और होता तो अपनी सारी प्रतिभा को लेकर इस बोझ के नीचे चकनाचूर हो गया होता। मगर प्रसाद का अन्तरंग काँच का नहीं, हीरे का बना हुआ था। परिस्थिति से मौलिक प्रतिशोध लेते हुए उन्होंने कुछ ही वर्षों के अन्दर न केवल अपने कुटुम्ब की माली हालत सुदृढ़ कर ली बल्कि अपनी मानसिक सम्पत्ति को भी अपनी बौद्धिक और भावनात्मक कमाई को भी – इस सारे वात्यायक से अक्षत उबार लिया। व्यवस्था भी उतनी ही सम्हाली और अपनी रचनात्मक प्रतिभा के भले ही कुछ मन्थर-विलम्बित, किन्तु निरन्तर और अचूक विकास-कर्म से उन्होंने साहित्य-जगत को विस्मय में डाल दिया। धीरे-धीरे लगभग नामालूम ढंग से उनकी रचनाएँ साहित्य के वातावरण में गहरे मिटती गई और क्या कविता, क्या कहानी, क्या नाटक, हर क्षेत्र में खमीर की तरह रूपान्तकरकारी सिद्ध होती चली गई। साहित्यिक दलबन्दी, द्रोहपूर्ण आलोचना, षड्यन्त्रपूर्ण चुप्पी – कुछ भी इस प्रतिभा को आगे बढ़ने से नहीं रोक सके। इसका कारण यही था कि इन रचनाओं में भी वही तेजस्विता, वही अनिवार्य मोहिनी-शक्ति थी जो कि उन रचनाओं के स्त्रोत प्रसाद के व्यक्तित्व में थी।

प्रसाद जी ने तीन विवाह किए थे। प्रथम पत्नी का क्षय रोग से तथा द्वितीय का प्रसूति के समय देहावसान हो गया था। तीसरी पत्नी से इन्हें रत्न शंकर नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। जीवन के अन्तिम दिनों में प्रसाद जी उदर रोग से ग्रस्त हो गए थे तथा इसी रोग ने कार्तिक शुक्ला देवोत्थान एकादशी, विक्रम संवत् 1994 को इस बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति का देहावसान हो गया।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रसाद जी की बहुमुखी देन है। उन्होंने उपन्यास, काव्य, नाटक, कहानी, निबंध, चम्पू आदि सभी विधाओं पर सशक्त रूप से लेखनी चलाई है। लेकिन फिर भी उनकी अमर कीर्ति का आधार स्तंभ काव्य और नाटक ही हैं। इनके उज्ज्वल व्यक्तित्व के अनुसार इनका रचना संसार अत्यंत विस्तृत और बहुआयामी है। इन्होंने नौ वर्ष की अल्पायु में ही 'कलाधार' उपनाम से व्रजभाषा में रचना प्रारम्भ कर दी थी।

नोट्स

प्रसाद जी का रचना-साहित्य इस प्रकार है -

(क) **काव्यः** प्रसाद ने अपनी काव्य धारा को द्विवेदी कालीन इतिवृतात्मकता निकालकर नवीनता की ओर प्रेरित किया, सुन्दर काल्पनिक विलान के नीचे छायावादी और रहस्यवादी काव्य का स्वरूप उपस्थित करने में ये सिद्धहस्त रहे हैं। इनकी इसी विचारधारा ने आगे चलकर निराला, पंत, महादेवी जैसे कलाकारों को जन्म दिया। यह कहना उचित होगा कि प्रसाद ने अपनी प्रतिभा के बल पर भाव, भाषा, शैली, छन्द, विषय आदि को छायावादी और रहस्यवादी परिवेश प्रदान किया। प्रसाद जी काव्य और कविता-संग्रह निम्नलिखित हैं:-

(i) कामायनी (ii) आँसू (iii) झरना (iv) लहर (v) महाराणा का महत्त्व (vi) प्रेम पथिक (vii) कानन कुसुम (viii) चित्राधार (ix) करुणालय।

(ख) **नाटकः** हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग नाटकों का प्रयोग काल था। इस काल में अनुवाद, रूपान्तर और मौलिक नाटकों की जो परम्परा मिली, उसका द्विवेदी युग में यथेष्ट विकास नहीं हो पाया। इसमें अंग्रेजी तथा बंगला से कुछ नाटकों के अनुवाद अवश्य हुए किन्तु उनमें नवीन नाट्यविधान की धूमिल रेखाएं ही सामने आई। पारसी रंगमंच के अधिक प्रभाव के कारण उत्कृष्ट मौलिक रचनाओं की ओर किसी का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। स्वयं भारतेन्दु द्वारा निर्मित रंगमंच का प्रभाव भी इसी पारसी रंगमंच की तड़क-भड़क के प्रभाव में निष्प्राण हो गया। इस विषय परिस्थित में प्रसाद जी नाट्य क्षेत्र में अवतरित हुए। इन्होंने काव्य-कला के साथ-साथ नाट्य कला को परिभाषित कर साहित्यिक जगत को चमत्कृत कर दिया। प्रसाद के नाटक निम्नलिखित हैं-

(i) राज्यश्री (ii) विशाख (iii) अजातशत्रु (iv) जनमेजय का नाग यज्ञ (v) कामना (vi) स्कन्दगुप्त (vii) एक घूंट (viii) चन्द्रगुप्त (ix) ध्रुवस्वामिनी (x) कल्याणी-परिणय (xi) सज्जन। (x) उपन्यासः प्रसाद ने उपन्यासों की रचना भी की है। काव्य के क्षेत्र में जहाँ वे आदर्श और भावकु बनकर हमारे सामने आए तथा नाटक के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के आराधक के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हुए, वहीं वे उपन्यासों में आधुनिक समस्याओं के प्रति सजग और जागरुक दिखाई पड़ते हैं। प्रसाद जी के उपन्यास निम्नलिखित हैं-

(i) कंकाल (ii) तितली (iii) इरावती (इसे वे पूरा नहीं कर पाए, क्योंकि इसके प्रणयन में संलग्न रहते हुए वे अकाल काल-कवलित हो गए।)

(घ) **कहानीः** कहानी के क्षेत्र में प्रसाद जी का स्थान गौरवपूर्ण रहा है। जब हिन्दी कहानी-कला अपने शैशव काल में ही थी, तब प्रसाद जी की कहानी "इन्दु" नाटक पत्रिका में प्रकाशित हुई। उसकी कहानी अपनी मौलिकता के कारण उस समय की श्रेष्ठतम कहानियों में गिनी गई।

इसके बाद प्रसाद जी ने अनेक कहानियों की रचना की। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि हिन्दी की सर्वोत्तम कहानियों का कोई संग्रह प्रकाशित किया जाए तो उसमें पचास प्रतिशत कहानियां प्रसाद की होंगी। प्रसाद जी के कहानी संग्रहों के नाम निम्नलिखित हैं-

(i) आकाशदीप (ii) इन्द्रजाल (iii) प्रतिध्वनि (iv) आँधी (v) छाया।

(ड.) **निबन्ध और आलोचनाः** प्रसाद ने यद्यपि किसी विशाल आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना नहीं

की, तथापि उनके आलोचनात्मक निबन्ध ही उनकी गवेषणात्मक, प्रज्ञा, विश्लेषण, मनीषा और विचाराभिव्यक्ति के परिवाचक हैं। काव्य कला तथा अन्य निबन्ध में इनके आलोचनात्मक निबन्ध संग्रहीत हैं।

(च) **चम्पू:** प्रसाद ने चम्पू काव्य की भी रचना की है। इनकी इस प्रकार की रचना का नाम है- "उर्वशी"। इसके साथ ही इन्होंनें एक काव्य कहानी भी लिखी है जो "प्रेम राज्य" के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रसाद जी की रचनाओं के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उन्होंने तत्कालीन युग में प्रचलित गद्य एवं पद्य साहित्य की समस्त विद्याओं में लिखा तथा साहित्य के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यह चिरन्तन एवं विश्वसनीय सत्य है कि प्रत्येक साहित्यकार को अपने जीवन में विभीषिकाओं का हलाहल पान करना पड़ता है। ये विभीषकाएं ही साधक की साहित्य साधना का केन्द्र बिन्दु बनती है। प्रसाद भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनके महान व्यक्तित्व के आनन्दमय वातावरण को देखकर कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि वे क्षय रोगी होंगे और यह रोग ही उनके जीवन का अंत कर देगा।

निष्कर्षत: प्रसाद जी का नाट्य-लेखन के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान है और उनका सम्पूर्ण कृतित्व हिन्दी-साहित्य की अमूल निधि है।

1.4 हिन्दी साहित्य एवं भाषा का इतिहास

भक्तिकाल के काल विभाजन

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल जिसे भक्तिकाल कहा जाता है अत्यधिक वैभवशाली युग है। भक्तिकाल की अंतिम सीमा के निर्धारण में थोड़ा विवाद है। विवाद के कारण केशवदास हैं। केशवदास भक्तिदास के कवि हैं या रीतिकाल के, विवाद का यही बिन्दु है। केशवदास का रचनाकाल 1555-1617 ई. है। रचनाकाल की दृष्टि से केशव भक्तिकाल में आते हैं लेकिन उनकी रचना शैली और साहित्यिक चेतना का स्वर रीतिवादी हैं यहीं यह प्रश्न उठता है कि भक्तिकाल का रूपांतरण किस प्रकार से रीतिकाल में हुआ। भक्ति में प्रेम और समर्पण मुख्य भाव थे। भक्ति का प्रेम तिरोहित होकर स्थूल शृंगार का विषय हो गया उसमें समर्पण के स्थान पर उपभोग की प्रधानता हो गई। तब भक्ति की संवेदना अवरुद्ध हो गई और रीतिवाद का विकास आरंभ हुआ। शृंगार की आध्यात्मिक अनुभूति के मानवीय अनुभूति बनने में तत्कालीन सामंतों की रुचि ने व्यापक योगदान दिया। वह वास्तविक लौकिक शृंगार कम बना कुछ लोगों के मनोरंजन का साधन अधिक बना।

जहाँ तक केशव का सवाल है, कशव के 50 वर्ष बाद रीतिकाल की अखंड धारा प्रवाहित होती है लेकिन साहित्यिक मनोवृत्ति और रचना की भावधारा का मिजाज पहले ही बदल चुका था। उस बदले हुए मिजाज की अभिव्यक्ति को केशव की रचना में आसानी से पहचाना जा सकता है।

'रामचंद्रिका' के साथ उन्होंने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' को भी रचा था। वस्तुत: केशव भक्ति के प्रभाव क्षेत्र से मुक्त होकर रीति के चमत्कार क्षेत्र की ओर अग्रसर हो रहे थे। केशव के साहित्य और

नोट्स

जीवन के जो मूल्य सामने आते हैं, वे निःसंदेह रीतिकाल के जीवन मूल्य हैं। केशवदास की रचनाओं में छंदों की विविधता, अलंकारों की बहुलता एवं चमत्कार प्रियता अधिक है। यह रीतिकाल की मुख्य विशेषता है। रीतिकालीन साहित्य के जो आधार हैं, जैसे लक्षण ग्रंथ साहित्य में मिलती हैं। भक्तिकाल साहित्य के जो आधार हैं, जैसे केशव के साहित्य में मिलती हैं। भक्तिकाल की शायद ही कोई कवि हो जिसने आश्रयदाता की छत्रछाया को स्वीकार किया हो। केशव ने राजाश्रय में कविता को रचा था। इसलिए केशव को संक्रांति काल का कवि मानते हुए भी उन्हें रीतिकाल में ही रखा जा सकता है और भक्तिकाल की अंतिम सीमा को 1643 ई. स्वीकार करना उचित होगा। आचार्य शुक्ल द्वारा खींची गई वह सीमा रेखा हिन्दी साहित्य में मान्य हो चली है।

भक्ति के नामकरण के संबंध में कोई विवाद नहीं है। लगभग सभी साहित्येतिहासकारों ने एकमत से इस नाम का समर्थन किया है। भक्ति तत्कालीन साहित्य का आंतरिक भाव है। भक्ति के प्रकार में भिन्नता मिलती है लेकिन भक्ति साहित्य की आंतरिक चेतना में कोई विरोध नहीं मिलता है। भक्तिकाव्य का जो सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है वह यह है कि यदि भक्तिकाल की धार्मिक और आध्यात्मिक अनुभूतियों को छोड़ भी दिया जाए तो भी उसमें मानवीय संवेदना की शीतल छाया मौजूद है। भक्तिकाव्य ने जीवन के प्रश्न को कवित का प्रश्न बनाया है। इसलि वह दबे स्वर में व्यवस्था को चुनौती देता है। समाज के लिए एक विकल्प की तलाश करता है। उस साहित्य में क्रांति और विद्रोह की चेतना है। भक्ति साहित्य कालजयी इसीलिए है कि उसने जीवन की जटिलताओं को काव्य के उद्देश्य के रूप में पस्तावित किया।

भक्तिकालीन काव्य

सम्पूर्ण भक्तिकाल का अवलोकन करने पर हम आसानी से पहचान सकते हैं कि सभी भक्तों ने ईश्वर भावना से प्रेरित होकर ही अपने उद्‌गार व्यक्त किए लेकिन ध्यान देने पर ए बात और हमारे सामने आती है, वह यह है कि सभी भक्तों के काव्य की अपनी अलग पहचान है। कबीर, सूर, जाससी, तुलसी, मीरा सभी भक्त कवि थे किन्तु उनके काव्य कुछ न कुछ भेद अवश्य है। उदाहरण के तौर सूरदास की भक्ति सखा भाव की है, वे अपने आराध्य कृष्ण को सखा के रूप में भजते हैं। दूसरी ओर तुलसी अपनी आराध्य राम को अपना मालिक मातनते हैं। मीरा अपने कृष्ण को प्रियतम के रूप में भजती हैं। इस प्रकार सभी रूप से हम भक्ति काव्य को दो भागों में बाँट सकते हैं–निर्गुणोपासक और सगुणोपसक। निर्गुण और सगुण की भी दो-दो उपशाखाएँ हो जाती हैं। हम निम्न तालिका से इन भेदों को आसानी से पहचान सकते हैं:

भक्ति आंदोलन की शुरुआत ईसा से पाँचवी छठी शताब्दी में ही हो गई थी। दक्षिणभारत के तमिल प्रांत के आलवार भक्तों की वाणियों द्वारा भक्ति का स्रोत बहने लगा था। यह भक्ति की धारा कर्नाटक होते हुए महाराष्ट्र पहुँची, फिर सीमावर्ती प्रदेश में इसका विस्तार होता गया।

धीरे-धीरे सम्पूर्ण उत्तर भारत भक्ति आंदोलन से आंदोलित हो उठा।

ऊपर की तालिका में भक्ति की शाखाओं, उपशाखाओं को दर्शाया गया है। यह तालिका केवल भक्ति के भिन्न-भिन्न रूपों को ही प्रकट करती है, किन्तु वास्तव में सभी ईश्वर की सत्ता का ही गुणगान कर रहे थे। निर्गुण भक्तों ने ईश्वर को निराकार रूप में माना। उनके अनुसार ईश्वर सर्वशक्तिमान है। वह

तो कण-कण में व्याप्त है इसलिए वह किसी आकार क अंदर समा ही नहीं सकता। निर्गुण शाखा के ज्ञानाश्रयी उपशाखा के अंतर्गत कबीर, रैदास, नानक आदि प्रमुख भक्त कवि हुए। प्रेममार्गी उपशाखा के अंतर्गत जायसी, कुतुबन, मंझन आदि कवि हुए।

सूफी कवियों का आराध्य पुरुष न होकर नारी है। उसकी सत्ता सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है। इन कवियों ने नारी की जो कल्पना की है, वह वास्तव में साधारण नारी नहीं बल्कि सर्वशक्तिमान सत्ता है।

भारतेन्दु युग का काल

आधुनिक हिन्दी के विकास का आरंभ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सन् 1843 ई. से मानते हैं तो डॉ. रामविलास शर्मा इसका आरंभ सन् 1868 ई. से ही मानना उचित समझते हैं। दूसरी ओर डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस युग का आरंभ सन् 1850 ई. से ही माना है। वैज्ञानिक और राजनीतिक घटनाओं के प्रभाव को दृष्टिगत कर हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का आरंभ

सन् 1850 ई. से मानना समुचित समझते हैं। ऐसा दिखाई देता है। दूसरा कारण यह है कि सन् 1850 ई. युग-प्रवर्त्तक भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म समय है। चाहे उनके जन्म से आधुनिकता का आरंभ न हुआ हो लेकिन और दूसरी घटनाओं के साथ यह भी एक घटना ही मानी जा सकती है। अत: इस वर्ष को धुनिक संवेदना का पहला कदम कहा जा सकता है। आधुनिक काल के अंतर्गत एक विशेष प्रकार के साहित्य की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसे ही दृष्टिगत करके इस काल को सामान्य रूप से भारतेन्दु युग के नाम से पुकारा जाता है। इसका अवसान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सन् 1893 ई. तक माना है। दूसरी ओर डॉ. रामविलास शर्मा और लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस युग की अंतिम सीमा सन् 1900 ई. मानी है। इस काल की अंतिम सीमा

- सन् 1900 ई. ही मानना उचित होगा क्योंकि इस काल तक भी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
- सन् 1893 ई. के बाद भी सक्रिय रहीं।
- सन् 1850 ई. से लेकर सन् 1900 ई. तक के इस हिन्दी साहित्य के इतिहास को कम से कम चार भागों में साहित्य समीक्षकों ने विभाजित करना उचित समझा है। इस दृष्टि से उन्होंने चार नाम प्रस्तुत किए हैं-परिवर्तन काल, पुनर्जागरण काल, आधुनिक काल और नवजागरण काल।

प्रत्येक देश और काल के साहित्य में परिवर्तन की प्रकृति अवश्य होती है। इसलिए परिवर्तन काल नाम का कोई औचित्य नहीं ठहरता है। पुनर्जागरण काल का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। यही नपहीं, इस काल का प्रबल वेग केवल भारतेन्दु युग तक ही नहीं रहा, अपितु यह स्वतंत्रता काल तक समान रूप से रहा। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस विशाल कालखंड के साहित्य में अनेकता और विविधता दिखाई देती है। इस आधार पर इसे साहित्यिक संवेदना का पुरर्जागरण कहना भी उचित नहीं है। इसलिए इसे कई उपभागों में विभाजित करके ही इसे समझने में सुविधा होगी।

आदिकालीन जैन साहित्य

जैन साहित्य की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश में लिखी गई हैं। जैन अपभ्रंश साहित्य का व्यापक प्रभाव परवर्ती हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। जैन साहित्य के महत्त्व की दूसरी बात उसकी प्रामाणि

नोट्स

ाकता को लेकर है। आदिकाल में जितने भी प्रकार के साहित्य मिलते हैं उनमें लगभग सभी प्रकार के साहित्य की प्रामाणिकता परप्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। जैन साहित्य इसका उपवाद है। जैन साहित्य का परिरक्षण धर्म संप्रदाय के आश्रय में हुआ था, इसलिए उस साहित्य का लिखित रूप अपरिवर्तित रूप में जैन मठों और पुस्तकालयों में सुरक्षित रहा। जैन साहित्य में आदिकाल की भाषा और सामाजिक गति का महत्त्वपूर्ण तथ्य छिपा हुआ है, इसलिए जैन साहित्य का अध्ययन अनविार्य है। उसे मात्र धार्मिक साहित्य कहकर हिन्दी साहित्य से खरिज नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा संभव होता तो भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग नहीं कहा जाता। मिथक में मानवीय अनुभूमि का संशिलष्ट रूप छिपा होता है। इस युग के संदर्भ में मिथक के अर्थ बदलते हैं। जैन साहित्य में भी कुछ मिथकों का प्रयोग मिलता है। साहित्य में मिथक का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। संस्कृत साहित्य में भी मिथक का प्रचुर प्रयोग मिलता है। साहित्य के संदर्भ में यह देखना होता है कि उन धार्मिक रचनाओं में मानवीय अनुभूि को विस्तार मिला है या नहीं। रचना की सृजनात्मक अनुभूति में मानवीयता है यानहीं वस्तुतः

धार्मिकता साहित्यिक संवेदना का अवरोधक नहीं है। धर्म का उपयोग यदि संकीर्ण दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए हो रहा है तो वह साहित्य निःसंदेह साहित्य कोटि में नहीं आ पाएगा।

जैन साहित्य के प्रकार: जैन साहित्य में तीन प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। प्रथम प्रकार की रचनाएँ, जिन्हें पौराणिक काव्य कह सकते हैं, इस प्रकार के रचनाकारों में स्वयंभू, पुष्पदंत आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। द्वितीय प्रकारकी रचनाओं में, मुक्तक रचनाओं को रखा जा सकता है जिसमें रस, फाग, चर्चरी अदि काव्यों का विवेचन किया जा सकता है तथा तृतीय प्रकार की रचनओं में, हेमचन्द और मेरुतुंग की रचनाओं को लिया जा सकता है।

आदिकालीन सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषता

सिद्ध साहित्य से हमारा तात्पर्य वज्रयान परम्परा के उन सिद्धाचार्यों के साहित्य से है, जो अपभ्रंश के दोहे तथा चर्या पद के रूप में उपलब्ध है। वस्तुतः सिद्धों ने आनी साधना का लक्ष्य ज्ञान, साधना पद्धति, हठयोग को अनुभूति के रंग में रंग दिया। उसके पीछे सिद्धों का उद्देश्य था-बौद्ध धर्म के निवृत्तिमूलक दुःखवादी रूप का निराकरण करके आनंद की भावना की प्रतिष्ठा। आनंद को सिद्धों न आयात्मिक गहनता माना है। इसके लिए जिस शब्दावली का उन्होंने प्रयोग किया है, वह लौकिक अर्थ में प्रणय के घनिष्ठ चित्र है।

साहित्य में प्रणय के प्रसंगः सिद्धों ने बौद्ध परम्परा में चली आती हुई निर्वाण ाावना का तिरस्कार कर महासुख की अनुभूति को प्रमुखता प्रदान की। बौद्ध धर्म में निर्वाण के तीन अवयव इहराए गए हैं-शून्य, विज्ञान और महासुख। वज्रयान में महासुख का प्रवर्तन हुआ। वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही सहवास सुख के समान बताया गया है, इसलिए सिद्धों के सहित्य में प्रणय के प्रसंग अधिक हैं। हो सकता है, सिद्धों के इस प्रणय का गहन आध्यात्मिक अर्थ हो, लेकिन उन्होंने जिस लौकिक शब्दावली में व्यक्त किया है, वह भी साहित्य के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कण्हपा के डोम्बी गीत में डोम्बी के प्रति कपाली का प्रेम निवेदन बहुत ही संवदनशील है। कण्हपा जब डोम्बी नारी का चित्रण करते हैं तो उसमें लोकजीवन की डोम्बी नारी का यथार्थ चित्र उपस्थित हो जाता है। यह डोम्बी अन्य डोम्बी नारियों

की भाँति नगर के बाहर कुटिया में रहती हैं वह नृत्य में कुशल हैं वह नौका पर चढ़कर नदी पार कर नगर के हाट में अपना सामानबेचने जाती है। वह तंत्री मालाएँ तथा हाथ की बुनी हुई टोकरियाँ वेचती है। नगर बाहिरे डोंबी तोहरि कुड़िया छइ।

छोइ जाइ सो बाह्य नाड़िया।

आलो डोंबि? तोए सम करिब म साँग। निधिण कण्ह कपालीं जोई लाग।।

एक्क सो पदमा चौपट्टि पाखुडी। तहि चढि नाचउ डोंबी वापुड़ी।

हालो डोंबी? तो पुछिम सद्भावे। अइससि जासि डोंबी कहरि नावे।।

इसमें 'कमल चौसठ पाखुड़ी' के ऊपर डोम्बी के नाचने का आध्यात्मिक अर्थ हो सकता है लेकिन लौकिक अर्थ का सौन्दर्य भी इसमें व्याप्त है। कण्हपा बार-बार अपने दोहे में गृहिणी का वर्णन करते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि जैसे नमक पानी में घुल जाता है, उसी प्रकार गृहिणी को अपने चित्त में धारण करो। इस प्रकार कण्हपा गृहस्थ और गृहिणी की अद्वैत अनुभूति का संकेत करते हैं।

सिद्ध-नाथ साहित्य

सिद्ध साहित्य: भारतीय धर्म साधना में सिद्धों का प्रादुर्भाव 8वीं शती के अस-पास माना जाता है। सिद्ध सम्प्रदाय वस्तुतः वौद्ध धर्म की विकृति है। ईसा की प्रथम शताब्दी तक आते-आते बौद्ध धर्म हीनयान और महान नामक दो शखाओं में विभक्त हो गया। हीनयान में सिद्धान्त पक्ष की प्रधानता थी जबकि महायान में व्यवहारिकता पर बल दिया जाता था। हीनयान केवल विरक्तों और संन्यासियों को आश्रय देता था जबकि महायान के द्वार सबके लिए खुले थे। ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गृहस्थ-संन्यासी सबको निर्वाण तक पहुँचाने का दावा महायान शाखा का था।

बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार भारत से बाहर भी पर्याप्त हुआ। तिब्बत और नेपाल में यह धर्म शैव मत से प्रभावित हुआ और जनसामान्य को आकर्षित करने के लिए इसमें तन्त्र मन्त्र एवं अभिचार का समावेश हो गया। परिणामतः इसकी मूल दिशा बदल गई और त्याग, तपस्या एवं संयम का स्थान भोग-विलास ने लेय लिया। साधक 'मन्त्र-जप' की ओर उन्मुख हो गए और इस प्रकार महायान ही मन्त्रयान बन गया। आगे चलकर इस मन्त्रयान के दो भाग हुए-बज्रयान और सहजयान। इनमें से वज्रयानी ही सिद्ध कहलाए। ये मन्त्र जप से सिद्धि की आकांक्षा करते थे।

सिद्ध साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ:

1. सिद्ध साहित्य में शास्त्रीय चिन्तन पक्ष गौण है, साधना पर बल दिया गया है।
2. गुरु के महत्व को स्वीकारा गया है।
3. रूढ़ियों, बाह्याडम्बरों का विरोध है तथा शास्त्र के प्रति अवहेलना भाव है।
4. सिद्ध साहित्य में रहस्यवादी भावना के साथ-साथ योग साधना पर विशेश बल है। ब्रह्माण्ड में जो शिव और शक्ति है, पिण्ड (शरीर) में वही सहस्रार और कुण्डलिनी है।
5. वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है।

नोट्स

6. ब्राह्मणवाद के प्रति अवज्ञा एवं वेदों के प्रति असम्मान व्यक्ति किया है।
7. चमत्कार प्रदर्शनर की भावना विद्यमान है।
8. प्रतीकों का प्रयोग करते हुए चमत्कार सृष्टि की गई है।
9. सिद्धों की साधना को गुह्य साधना कहा गया, जिसके बहाने उसमें कामशास्त्र का समावेश हुआ।

रासो काव्य की पृष्ठभूमि

रासो काव्य की पृष्ठभूमि: रासो काव्य से हमारा तात्पर्य आदिकालीन साहित्य की वीरगाथात्मक कृतियों से है। आदिकालीन साहित्य में रास ग्रन्थ और रासो ग्रन्थ दोनों प्रकार की रचनाओं की चर्चा मिलती है। रास साहित्य और रासो साहित्य का मुख्य अंतर भावानुभूति को लेकर है। रास साहित्य की संवेदना धार्मिक अनुभूति अथवा लौकिक प्रेम की अनुभूति से जुड़ी हुई है। रास काव्य का प्रसार जैन साहित्य में देखने को मिलताहै। रास साहित्य में लौकिक प्रेमानुभूतिको भी अभिव्यक्ति किया गया है। 'संदेश रासक' इसी तरह के साहित्य का उदाहरण है। आदिकालीन साहित्य में रास काव्य का नाम जैन रचनाकारों द्वारा लिखे गए रासक ग्रन्थों और 'संदेश रासक' जैसे प्रेमानुभूति प्रधान काव्य संवेदना के लिए रूढ़ हो गया हैं वस्तुत: रास, रासो, रासउ और रसायण शब्द अलग-अलग हैं और वे एक खास तरह के मनौभाव को अभिव्यक्त करते हैं।

वस्तुत: रासो साहित्य की रचना चारणों द्वारा हुई थी। चारणों का साहित्य में आगमन सामंतवादी व्यवस्था के समानांतर होता है। सामंतों को प्रशशास्तिगान के लए चारणों की आवश्यकता हुई। प्रशस्तिगान में चारण अधिकतर आश्रयदाता सामंतों की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा करते थे। प्रशस्तिगान की विषय-वस्तु बहुत ही सीमित थी। सामंतों के जीवन में दो बातों की प्रधानता थी युद्ध और प्रेम। इसलिए चारणों के साहित्य में भी इन्हीं दो विषयों की प्रमुखता मिलती है। किसी राजा की रूपवती कन्या का संवाद पाकर किसी दूसरे राजा का चढ़ाई करना तथा उस कन्या का हरण कर लेना, वीरों के लिए गौरव और अभिमान का विषय था। पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासों में इस प्रकार के कई प्रसंग आए हैं। राजनीतिक कारणों से हुए युद्धों के स्थान पर भी चारणों ने काव्य में रूपवती स्त्री को ही युद्ध का कारण परिकल्पित किया है।

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी के बीच के युद्ध का कारण एक रूपवती स्त्री को बताया गया है। साहित्य बहुत कुछ सामाजिक संरचना पर निर्भर करता है। सामाजिक संस्था की बनावट का प्रभाव साहित्य पर भी दृष्टिगोचर होता है। सामंती व्यवस्था में चारण कवियों ने जीवन के उन पक्षों को अनदेखा किया जिसका संबंध जीवन के अभावों से है, इसीलिए व्यवस्था से शोषित सामान्य मानव के घरेलू जीवन और उसकी समस्याओं की ओर उनका ध्यान नहीं है।

कबीरदास

कबीरदास: इनके जनमकाल, जीवन-मरण तथा जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं के विषय में किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के घर में हुआ था किन्तु लोकभय से वह इन्हें लहरतारा ताल के निकट छोड़ आई। इनका पालन-पोषण नीरू-नामा नाक जुलाहा दम्पत्ति ने

किया। रामानन्द इनके दीक्षा गुरु थे, उनसे नाम का मंत्र लेने के लिए ये पंचगंगा घाट की उन सीढ़ियों पर जा पड़े जहाँ से प्रतःकाल रामानन्द स्नान करने जाते थे। अंधेरे में रामानन्द के चारण कबीर साहब पर पड़ गए और रामानन्द जी बोल उठे 'राम राम कह'। आगे चलकर यही मंत्र मानुष सत्य के महान् लक्ष्य की प्राप्ति में तथा वैषम्य के दुराग्रहों को छोड़कर सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना में सहायक हुआ। कबीर ने 'मसि कागद' नहीं छुआ, उन्होंने आत्म-चिंतन एवं लोकनिरीक्षण से जो ज्ञान प्राप्त किया, उसी को निर्भयतापूर्वक अपनी साखियों और पदों में अभिव्यक्त किया। इन्होंने वर्णाश्रम धर्म में प्रचलित कुरीतियों को ही नहीं, लोक में प्रचलित अपधर्म को भी पहचाना: 'ताथै कहिये लोकाचार वेद कतेब कथै व्यवहार'। कबीर साहसी और तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी कथनी और करनी में जबरदस्त सकरूपता थी। जनता को सम्बोधित करके परीक्षा के क्षणों में पीछे हट जाने उपदेशक वे न थे। वे ऐसे कर्मयोगी थे जो अंधविश्वासों की खाई पाटन के लिए अपना घर जलाने को तैयार थे। काशी को देवभूमि मानकर यह विश्वास किया जाता है कि जिस व्यक्ति की मृत्यु तपोभूमि में होगी वह मरणोपरान्त अवश्य ही श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी होगा और जो व्यक्ति मगहर में कालकवलित होगा वह अगले जन्म में निकृष्ट योनि में जन्म लेगा। लोक में फैले इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए जीवन के अन्तिम समय में कबीर मगहर में जाकर रहने लगे। उन्होंने सिद्ध किया कि 'एक जीव वे सब जग उपज्या कौन भला कौन मंदा' और इसी प्रकार यह अंधविश्वास भी तोड़ा: 'जो काशी तन तजै कबीरा तो रामहि कहा निहोरा रे'।

निगुर्ण एवं सगुण भक्ति

सामान्यतः ईश्वर के दो रूप माने गए हैं- सगुण एवं निर्गुण। जब परमात्मा को निराकार, अज, अनादि, सर्वव्यापी, गुणातीत, अगोचर, सूक्ष्म मानकर उसकी विवेचना की जाती है तब उसे निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है और जब वही ब्रह्म सगुण साकार रूप धारण कर नर शरीर ग्रहण कर विभिनन प्रकार के कृत्य करता है तब उसे सगुण परमात्मा के रूप में जाना जाता है। राम, कृष्ण आदि शरीरधारी परमात्मा के सगुण, साकार रूप हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार-"सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मानता है, पर भक्ति के लिए सगुण रूप ही स्वीकार करता है, निर्गुण रूप ज्ञानमार्गियों के लिए छोड़ देता है।" सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य माना गया है वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रह्मज्ञान और योगसाधना को विशेष स्थान दिया गया हैं सगुण भक्ति में भगवत्कृपा को विशेष महत्व मिला है तो निगुर्ण भक्ति ब्रह्मानुभूति पर विशेष बल देती है।

सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण भक्ति को निर्गुण भक्ति की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है, किन्तु केवल इसी कारण से निर्गुण भक्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सगुणोपासकों ने निर्गुण भक्ति पर अनेक प्रकार की शंकाएँ उठाई हैं। उनका सबसे प्रबल तर्क यह है कि निर्गुण अनुभूति का विषय कैसे बन सकता है, जब तक कि भक्ति के लिए कोई रूपाकार ही न हो। भक्ति के लिए साकार, मूर्त की आवश्यकता होती है। निराकार का ध्यान कैसे किया जा सकता है।

कबीर आदि निर्गुण सन्त कवियों में ज्ञानमार्ग की जो बातें है, वे हिन्दू शास्त्रों की हैं जिनका संचय उन्होंने सामानन्द जी के उपदेशों से किया। माया, जीव, ब्रह्म, त्रिकुटी, छः रिपु आदि का परिचय उन्हें सत्संग से ही मिला था। हठयोगियों की शब्दावली कबीर ने सामान्य जनता की बुद्धि पर आश्रित है।

नोट्स

निर्गुण ब्रह्म को जब भावना का विषय बना लिया जाता है तो 'रहस्यवाद' का जन्म होता है। कबीर और जायसी दोनों में ही निर्गुण ब्रह्म को रहस्यवाद का विषय बनाया है। सांसारिक प्रपंच से ऊपर उठकर उस अलौकिक सत्ता को प्राप्त करने की साधना रहस्यवाद का मूल तत्त्व है।

कबीर और जायसी दोनों का निर्गुण धारा के कवि मानने का मूल कारण है-इनके द्वारा ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अज, अनादि मानना तथा उसके साकार रूप को अस्वीकार करना। आचार्य शुक्ल जी ने सूफी कवि जायसी के रहस्यवाद को भावात्मक तथा सन्त कवि कबीर के रहस्यवाद को साधनात्मक कोटि में स्वीकार किया है।

आदिकालीन जैन साहित्य

जैन साहित्य की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश में लिखी गई हैं। जैन अपभ्रंश साहित्य का व्यापक प्रभाव परवर्ती हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। जैन साहित्य के महत्व की दूसरी बात उसकी प्रमाणिकता को लेकर है। आदिकाल में जितने भी प्रकार के साहित्य मिलते हैं उनमें लगभग सभी प्रकार के साहित्य की प्रमाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। जैन साहित्य इसका अपवाद है। जैन साहित्य का परिरक्षण धर्म संप्रदाय के आश्रय में हुआ था, इसलिए उस साहित्य का लिखित रूप अपरिवर्तित रूप में जैन मठों और पुस्तकालयों में सुरक्षित रहा। जैन साहित्य में आदिकाल की भाषा और सामाजिक गति का महत्वपूर्ण तथ्य छिपा हुआ है, इसलिए जैन साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है। उसे मात्र धार्मिक साहित्य कहकर हिन्दी साहित्य से खरिज नहीं किया जा सकता। वास्तव में, धर्म किसी साहित्य को खरिज करने का आधार नहीं हो सकता। यदि ऐसा संभव होता तो भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग नहीं कहा जाता। मिथक में मानवीय अनुभूमि का संशिलष्ट रूप छिपा होता है। हर युग के संदर्थ में सिथक के अर्थ बदलते हैं। जैन साहित्य में भी कुछ मिथकों का प्रयोग मिलता है। साहित्य में मिथक का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। संस्कृत साहित्य में भी मिथक का प्रचुर प्रयोग मिलता है। साहित्य से संदर्भ में यह देखना होता है कि उन धार्मिक रचनाओं में मानवीय अनुभूति को विस्तार मिला है या नहीं। रचना की सृजनात्मक अनुभूति में मानवीयता है या नहीं। वस्तुतः

धार्मिकता साहित्यिक संवेदना का अवरोधक नहीं है। धर्म का उपयोग यदि संकीर्ण दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए हो रहा है तो वह साहित्य निःसंदेह साहित्य कोटि में नही आ पाएगा।

जैन साहित्य के प्रकारः जैन साहित्य में तीन प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। प्रथम प्रकार की रचनाएँ, जिन्हें पौराणिक काव्य कह सकते हैं, इस प्रकार के रचनाकारों में स्वयंभू, पुष्पदंत आदि के नाम गनाए जा सकते हैं। द्वितीय प्रकार की रचनाओं में, मुक्तक रचनाओं को रखा जा सकता है जिसमें रास, फाग, चर्चरी आदि काव्यों का विवेचन किया जा सकता है तथा तृतीय प्रकार की रचनाओं में, हेमचन्द और मेरुतुंग की रचनाओं को लिया जा सकता है।

रामभक्ति काव्य

'भक्ति' तथा 'भक्ति आन्दोलन' का पूरा चरित्र सत्तावाद सामन्तवाद का विरोधी रहा है। कृष्ण भक्त धारा के एक भक्त कवि कुम्भनदास का पद 'सन्तन को कहा सीकरी सो काम' इस पूरी विचार परम्परा

का प्रतीक है। तुलसीदास ने 'प्राकृत जन कीन्हे गुन गाना' की प्रशस्ति परम्परा का विरोध किया। उनका यह स्वर न केवल विद्रोही स्वर है बल्कि गहरे अर्थों में चारण-भाट सामन्त पूजा का तिरस्कार करता है। भक्ति आन्दोलन की प्राणधारा से प्रभावित अकबर ने तीर्थकर और जजिया समाप्त कर दिया। उसी के समय में राजा मानसिंह ने वृन्दावन और काशी में विशाल मन्दिर बनवाए। कुछ अकबरकालीन ऐसे सिक्के मिले हैं जिन पर 'राम-सीता' का चित्र अंकित है, ऐसी एक अठन्नी 'भारत कला भवन' काशी में है। 'राम-सीय' नागरी में अंकित हैं। अकबर स्वयं सूर्यनाम का हजार जप करता था और पंडित सुन्दर लाल जी से हिन्दू शास्त्रों की चर्चा सुनता था।

'ईश्वर' से बड़ा कोई नहीं है यह बात भक्तिकाल में निर्गुण कबीर, प्रेममार्गी जायसी में पूरे विश्वास के साथ मौजूद है और इसी बात को 'राम से बड़ो है कौन' पूछकर तुलसी ने राम-भक्ति-महिमा का लीला गान किया है। रसिक राम भक्तिधारा में रामदास, अग्रदास, विषणुदास, नहररिदास, कल्याण जी, नाभादास, चतुरदास, रामदास, मलेकदास सभी ने 'वाताराम' के गुणों का गान किया है - किसी हिन्दू मुसलमान सामन्त का नहीं। इन सभी के लिए भक्ति मात्र उपासना पद्धति नहीं है - एक मूल्य है, एक पूरी जीवन-पद्धति।

मर्यादावादी रामभक्ति परम्परा ने वाल्मीकि रामायण के आदर्शपर राकथा पर आधारित प्रबन्धों की रचना की। तुलसी पूर्व रामभक्ति धारा में कवि ईश्वरदास तथा विष्णुदास ने चरित काव्य परम्परा का राम-रूप लिया है। मोहन ने 'हनुमन्नाटक' सूरदास ने 'सूरसागर' में राम-रामायण लिख दी और मीराबाई ने राम की शयन-आरती लिखकर कृष्ण लिखकर भक्तों की राम निष्ठा का विस्तार किया। परमानंद दास, नंददास, हितहरिवंश सभी राम-सीता गान करते हैं। इस परम्परा का श्रेष्ठ रूप तुलसी दास में 'रामचरितमानस', 'कवितावली', 'गीतावली', 'विनय पत्रिका' आदि रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। जहाँगीर-कालीन सामंतवाद के अत्याचार तुलसी को याद है-

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करमाया।।
जेही विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।।

'नाना पुराण निगमागत सम्मत' अर्थात् आगम (लोक-परम्परा) निगम (वैदिक-बौद्धिक परम्परा शास्त्र) दोनों परम्पराओं को मिलाकर तुलसी ने राम कथा को सामन्तविरोधी मूलें से मंडित किया। राम वनवास के समय ग्रामवासियों से मिलते हैं - केवट-निषाद को गले लगाते हैं, अहिल्या को तारते हैं, पतित पावन राम, दीनबन्धु-दीनानाथ के रूप में सामने आते हैं - वे राजाओं के पास मदद माँगने नहीं जाते, वानरों-भलुओं-भलों निषादों की मदद से 'जगत दुःखदाता' रावण का वध करते हैं। जगह-जगह मानस में सामन्तवाद-साम्राज्यवाद को नीचा दिखाया गया है।

भक्ति आंदोलन के अखिल भारतीय स्वरूप

भक्ति आंदोलन की शुरुआत सर्वप्रथम दक्षिण भारत में हुई। दक्षिण भारत का भक्ति आंदालन बाद के दिनों में भारत के कई क्षेत्रों में फैला। यह आंदोलन दक्षिण से उत्तर भार में कैसे विकसित हुआ इसे हम समझ चुके है। दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलना का एक सूत्र महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन से जुड़ा।

नोट्स

तेरहतीं-चौदहवीं शताब्दी में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि भक्तों ने इस आंदोलन के माध्यम से महाराष्ट्र में एक जातीय एवं सांप्रदायिक एकता को मजबूत किया। आरंभिक दौर में कट्टर पुराण पंथियों द्वारा इन संतों का विरोध भी हुआ और इन संतो को कष्टमय जीवन बिताना पड़ा लेकिन भक्ति आंदोलन के दृढ़ हो जाने पर यह विरोध टिक नहीं सका। सत्रहवीं शताब्दी में तुकाराम और रामदास तक आते-आते यह आंदोलन महाराष्ट्रीय जनजीवन की एक शक्ति बन गया। इसी के परिणामस्वरूप आगे चलकर शिवाजी के माध्यम से राजनीतिक रूप से महाराष्ट्र का जन्म हुआ। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन में सगुण-निर्गुण का विवाद नहीं था।

इसी तरह बंगाल में चण्डीदास से लेकर चैतन्य तक सभी भक्तों ने मनुष्य मात्र की समानतापर जोर देते हुए वैष्णव भक्ति आंदोलन को दृढ़ किया। इन भक्तों का संबंध भी दक्षिण के वैष्णव आंदालन से ह। इन्होंने मनुष्य मात्र की समानता पर जोर दिया-

"शुनह मानुष भाई,
शबार उपरे मानुष शत्तो
ताहर उपरे नाई।"

जाति और धर्म के वंधन का इन्होंने विरोध किया। हिन्दू तथा मुसलमानों की निम्न श्रेणियाँ वाले लोग भी चैतन्य के शिष्य थे। रुज, सनातन, हरिदास आदि मुसलमान थे जो चैतन्य के प्रधान शिष्यों में गिने जाते थे। इनके यहाँ सगुण-निर्गुण का विवाद नहीं था। उन्होंने जाति आधारित

धार्मिक प्रणालियों को त्याग कर कृष्ण की शरण में जाने का संदेश दिया। पंजाब प्रांत में गुरु नानक साहब ने सिख संप्रदाय की स्थापना की। नानक से लेकर गुरु गोविन्द सिंह तक संतों की लम्बी परंपरा है जिन्होंने समाज को संगठित करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर इस संप्रदाय की क्रांतिकारी भूमिका सामने आई। इस तरह हम देखते हैं कि भक्ति आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय था। भक्ति आंदोलन की यह सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है कि उसने संपूर्ण भारत को एक सांस्कृतिक सूत्र में जोड़ दिया।

इतिहासकारों ने दक्षिण भारत में भक्ति के उदय की व्याख्या सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भों में की है। उनके अनुसार जो स्थित उत्तर भारत में 13वीं - 14वीं सदी में उत्पन्न हुई वह दक्षिण भारत में पहली सदी के बाद ही पैदा हो गई थी। दक्षिणी भारत में पहली शताब्दी के बाद कई शताब्दियों तक राजसत्ता अनेक पराक्रमी शासकों के हाथ में रही। केन्द्रीय सत्ता के मजबूत होने के परिणामस्वरूप व्यापार और कृषि में उन्नत्ति स्वाभाविक है। दक्षिण में चोलवंशी शासक करिकाल नपे कावेरी जल को नियंत्रित कर सिंचाई की व्यवस्था की।

भक्तिकाल की धार्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि

भक्ति युग का विस्तार सम्वत् 1375 से 1700 तक माना जाता है। 'भक्ति' शब्द का अर्थ विभिन्न कोषों में 'विभाजन' अनुराग पूजा 'उपासना' आदि दिया गया है। हमारे विभिन्न आचार्यों ने भक्ति को निम्नलिखित रूप से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है-

1. शाण्डिल्यः 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' (शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र-2) अर्थात् वह ईश्वर के प्रति परम अनुराग रूपा है।
2. नारद-भक्ति-सूत्रः 'सा तस्मिन् परम-प्रेम रूपा, अमृत-स्वरूपा च। तत्रापि महात्म्य ज्ञान विस्मृत्य वपादेः तद्विहीन जाराणामिव' अर्थात् वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा और अमृतस्वरूपा है। फिर भी माहात्म्य ज्ञान का विस्मरण नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह व्यभिचारियों के प्रेम तुल्य हो जाएगी।
3. श्री मद्भगवद्गीताः मय्यर्पित मनोबुद्धियों मदभक्तः स मे प्रियः (अध्याय 12 - 14) अर्थात् जिसने अपना मन औरबुद्धि मुझे अर्पित कर दिया है, वह भक्त मुझे प्रिय है।
4. पाराशार्यः 'पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः अर्थात् पूजादि में अनुराग होना ही भक्ति है।' भक्ति की उपर्युक्त परिभाषाओं में आंशिक अन्तर होते हुए भी भाव की दृष्टि से एकता है। गीता में भक्ति के लिए हृदय और बुद्धि का समर्पण स्वीकार किया है। इसी प्रकार पाराशर्य, शाण्डिल्य, नारद और वल्लभाचार्य ने अनुराग के साथ पूजा व महात्म्य ज्ञान का पक्षद्वा लिया है। अस्तु गीताकार द्वारा व्याख्यायित भक्ति का हृदय और बुद्धि का स्वरूप परवर्ती आचार्यों द्वारा नुराग तथा माहात्म्यज्ञा के रूप में मान्य हुआ। इसी को बाद में आचार्य शुक्ल ने प्रेम और श्रद्धा का नाम दिया। आचार्य शुक्ल की भक्ति सम्बन्धी परिभाषा श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। इसमें उपयुक्त सभी मतों का समन्वय हो गया है।

धार्मिक सन्दर्भः भक्ति युग की धार्मिक परिस्थितियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-प्रथम, बौद्ध धर्म की विकृत परिस्थिति द्वितीय, वैष्णव धर्म की परम्परागत परिस्थिति। इसके अतिरिक्त एक तीसरी विदेशी धार्मिक परिस्थिति ने भी भरत में स्थान बनाया जिसे सूफ़ी धर्म के नाम से जाना जा सकता है।

अष्टछाप

कृष्ण भक्त कवियों में अष्टछाप का विशेष उल्लेख किया जाता है। वल्लभाचार्य ने विशिष्ट द्वैतवादी पुष्टिमार्ग की स्थापना की थी। आगे चलकर बिट्ठलनाथ ने अष्ठछाप कवियों की परिकल्पना की, जिन्हें कृष्णसखा भी कहा गया। इनमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य हैं: सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास और कृष्णदास।

बिट्ठलनाथ के शिष्य हैं: नन्ददास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। वल्लभ सम्प्रदाय में अष्ठछाप कवियों का विशेष स्थान है और कहा जता है कि जब गोवर्धन में श्रीनाथ की प्रतिष्ठा हो गई, तब ये भक्तकवि अष्टछाप सेवा में संलग्न रहते थे-

मंगलाचरण--शृंगार से लेकर संध्या आरती और शयन तक। अष्टछाप के इन कवियों में सूरदास सर्वोपरि हैं जिन्हें भक्तिदास में तुलसी के समकक्ष माना जाता है। तुलसीदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के प्रिय कवि हैं, पर उन्होंने भी स्वीकार किया है कि माधुर्य भाव में 'सूरसागर' रससागर है और जहाँ तक वात्सल्य तथा शृंगार का प्रश्न है, सूर सर्वोपरि हैं। अष्टछाप के कवियों में परमानन्ददास ने कृष्ण की बाललीला को लेकर अपना ध्यान केन्द्रित किया और माधुर्य गुण को प्रमुखता दी। नन्ददास पंडित कवि हैं और उनके भंवरगीत में शास्त्र ज्ञान का परिचय मिलता है। उन्हें अलंकृत अथवा 'जड़िया कवि' कहकर संबोधित किया गया। उनमें काव्य की सहजता अपनी पूर्णता पर नहीं आने पाती, पांडित्य बाधा बनता है। कंभनदास की उक्ति प्रसिद्ध है:

नोट्स

"संतन को कहा सीकरी सो काम
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरी गयो हरिनाम।"

यह उक्ति कवि ने उस विराग भाव की ओर संकेत करती है, जिसमें राजाश्रय का निषेध है।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा: मनुष्यता के सामान्य स्वरूप को लेकर अग्रसर होने वाली सूफी काव्य परम्परा अत्यंत समृद्ध रही है। मलिक मुहम्मद 'जायसी' का पद्मावत इसी परम्परा का उत्कृष्ट ग्रंथ है। जायसी के इस ग्रंथ में सूफी काव्य परम्परा की सभी विशेषताएँ एक साथ दिखाई पड़ती हैं। इस ग्रंथ की उत्कृष्टता एवं विषय तथा शैली इस बात की ओर संकेत करते है कि जपयसी से पूर्व ही यह परम्परा प्रारंभ हो गई थी। जायसी में इस परम्परा का चरम रूप दिखाई पड़ता है। जायसी के पश्चात् भी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की यह परम्परा निरंतर प्रवाहमान रही। इस काव्य परम्परा के सिरमौर कवि जायसी को आधार बनाकर प्रेमाख्यानक काव्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(क) जायसी पूर्व प्रेमाख्यानक काव्य

(ख) जायसी उत्तर प्रेमाख्यानक काव्य

(क) जायसी पूर्व प्रेमाख्यानक काव्य: जायसी के पूर्व प्रेमाख्यानक काव्यों की पुष्टि जायसी का पद्मावत कर देता है जिसमें कवि ने स्पष्ट रूप से अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का उल्लेख किया है-

"विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गरउ पतारा।।
मधूपाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी।।
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ।।
साधु कुँवर खंडरावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू।।
प्रेमावति कहँ सुरसरि साधा। ऊषा लगि अनिरुथ वर बाँधा।।"

क्या सूची में गिनाई गई प्रेमाख्यानक रचनाओं में केवल मृगावती और मधुमालती ही प्राप्त हो सकी हैं। जासयी के इस छंद में कुछ नाम छूट गए हैं। इस परम्परा में मुल्ला दाऊद की चंदायन या नूरकंचदा, दामों कवि की लक्षमण सेन पद्मावती, शेख रिजकुल्ला मुश्ताकी की रचना प्रेमवनजाब निरंजन, नारायणदास की छिताईवार्ता ईश्वरदास विरचित सत्यवती कथा महत्वपूर्ण हैं।

(ख) जायसी के उत्तरवर्ती प्रेमाख्यानक काव्य: जायसी के बाद भी प्रेमगाथाओं की यह परम्परा गतिमान रही।

निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानमार्गी शाखा

ज्ञानमार्ग की प्रतिष्ठा आचार्य शंकर ने की थी। उन्होंने ज्ञान और भक्ति तथा निर्गुण और सगुण भक्ति के विरोध की स्थापना करते हुए निर्गुण को ज्ञान से संबद्ध किया है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म तथा ज्ञन साधना को ही परम सत्य के रूप में स्वीकार किया। इसी ऐतिहासिक कारण से निर्गुण काव्यधारा में ज्ञान की अनुभूति को ही भक्ति माना जाता है अर्थात् निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन 'ज्ञान' को बताया गया है। यह ज्ञान वस्तुत: अंतर्ज्ञान है जो सहज ही बिना किसी भक्तिमार्गीय पद्धति के साधनों के उत्पन्न होता है।

निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानमार्गी शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण निम्नलिखित है:

1. भक्ति निरूपण: संत कवियों के लिए भक्ति शान्ति की खोज में आए साधक की शरणभूमि न थी। यह उनकी कर्मभूमि थी। इसी से वे लोक हृदय को आस्था का संबल दे सके तथा सामाजिक ऐक्य की स्थापना के लक्ष्य की ओर प्रयत्नशील हो सके। प्रचलित सामान्य अर्थ में ईश्वर के प्रति सहज आसक्ति ही भक्ति है। इसमें श्रद्धा और प्रेम के तत्त्वों का योग आवश्यक है। प्रेम की दृष्टि से संत काव्य में नारदी भक्ति के प्रेमतत्त्व के साथ-साथ सूफियों की इश्क भावना का प्रभाव भी लक्षित होता है।
2. सामाजिक चेतना: मध्यकालीन भक्ति काव्य मूलत: सामाकि-सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में सामने आता है। भक्ति आंदोलन ने समाज से अन्त्यजों को सम्मनपूर्वक जीवन यावन करने की आशा का संचार किया। यह मध्यकालीन जागरण, लोक जागरण, भारतीय जागरण अर्थात् जन आंदोलन के नाम से जाना जाता है। विभिन्न वर्ग एवं वर्णों के वितण्डतावादी स्वरूप, वर्ग संघर्ष, धार्मिक भेदभाव, विधि निषेधों से जर्जरित भारतीय जीवन में भक्ति आंदोलन मनुष्य सत्य के स्वप्न को संजोता है।
3. सद्गुरु की महत्ता: संत कवियों ने सांसारिक माया के आवरण से अतीत परब्रह्म निरुपाधि ईश्वर के साक्षात्कार के लिए सद्गुरु क महत्त्व को स्वीकारा है यह सद्गुरु लोक वेद की असारता द्योतित करते हुए ज्ञान रूपी प्रकाश के दीप को प्रज्जवलित करता है। आत्मा ईश्वर से मिलने के लिए व्याकुल है। सात्विक भाव से सारा अंग शिथिल और रोमांचित हो जाता है। पैर आगे नहीं बढ़ते, प्रीति की आशंका से मन अस्थिर हो जाता है।

सूफी प्रेमाख्यान काव्य की प्रमुख विशेषता

सूफी प्रेमाख्यान काव्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित है:

1. प्रबंध काव्य रचना: सूफी प्रेमाख्यान मूलत: प्रबंध काव्य रचना के अन्तर्गत आते हैं। इनमें वर्णन ऐतिहासिक भी हैं और अर्द्धऐतिहासिक भी। प्रेमाख्यानों में रचनाकार का मुख्य ध्येय लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से तसव्वुफ के संदर्भ में जीव और परमात्मा से प्रेम व्यापार का वर्णन करना रहा है। इन चरित काव्यों की परंपरा पुरानी है जिसे उद्देश्य के अनुरूप कतिपय पतरवर्तनों के साथ सूफी कवियों ने स्वीकार कर लिया।
2. कथाओं में एकरूपता: सभी सूफी प्रेमाख्यानों में घटनाओं के वर्णन एवं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के निरूपण का तीरका एक-सा है। इनमें नयापन नहीं है। रोचकता भी नहीं दिखती। कुछ आख्यानों के स्वरूप भेद के कारण पात्रों, प्रसंगों, दृश्यों और वातावरण में नवीनता का संचार कर उनमें प्रेयता व आकर्षण ले आने का प्रयास भी किया गया है। प्रेमी के प्रेम की परीक्षा के संदर्भ सभी प्रेमाख्यानों में एक-से हैं। इसके लिए प्रेमिका की अग्नि-परीक्षा के लिए ऐसी बाधाओं को प्रस्तुत किया जाता है, जिन्हें देखते ही सामान्य

   धीरज वो, साध्य के प्रति निष्ठा के भाव जरा भी अस्थिरता दिखलाने वाले का हौसला पस्त हो सकता है।

नोट्स

3. सामान्य काव्य रूढ़ियाँ: सभी सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में वर्णित काव्य रूढ़ियाँ एक जैसी है। आख्यान विधा की प्रकृति के अनुसार उनमें यत्र-तत्र परिवर्तनल किया गया है लेकिन कथावस्तु की एकरसता में अंतर नहीं आया है। प्रमी-प्रेमिकाओं को प्राय: एक जैसी स्थितियों से गुजरना पड़ा है। मिलन के अवसरों पर भवनों, बगीचों का वर्णन एक जैसा है। कहीं-कहीं परिगणन शैली का भी प्रयोग है। इस कारण कथा के प्रवाह में अवरोध भी दिखता है।
4. समान कथारंभ व समान समापन: सभी सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों का प्रारंभ एक जैसा है। नायक-नायिका के परिचय के प्रसंग में देश की संपूर्ण विशेषताओं का वर्णन किया गया है। कथा की गति बनाए रखने के लिए भारतीय चरित काव्यों की कथारूढ़ियाँ स्वीकार की गई हैं।

कृष्णभक्ति काव्य की कथ्यगत

कृष्ण काव्य की कथ्यगत विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित है:

1. भक्ति का स्वरूप: ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म के निर्वासन के बाद शंकराचार्य के मायावाद का प्रभाव धार्मिक क्षेत्र में बढ़ने लगा था। शंकराचार्य के प्रभाव से भक्ति आंदोलन को धक्का लगा था और जनता में एक तरह की उदासी छा गई थी किन्तु इसी समय भक्ति आंदोलन के मूलाधार प्रकट हुए-वेद, ब्रह्मसूत्र, भगवत् गीता और भगवत। ये चार सूत्र भक्ति आंदोलन के मूलाधार कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति शास्त्र पर लिखे अन्य ग्रन्थों ने भी जैसे 'नारद भक्ति सूत्र', 'शांडिल्य भक्ति सूत्र', 'उज्जवलनील मणि' और 'हरि भक्ति रसामृत सिंधु' जैसे विशिष्ट ग्रन्थों में भी भक्ति के रसमय स्वरूप का निर्धारण किया गया।
2. वर्ण्य विषय: कृष्ण भक्ति काव्य का मुख्य विषय लीला बिहारी कृष्ण की लीलाओं का गायन रहा है। लीला गायन का आरंभ कृष्ण जन्म से होता है और उसका विस्तार शैशव काल की चेष्टाओं, नटखट क्रीडाओं से लेकर नवल किशोर नवल नागरिया राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं, रास क्रीड़ाओं और फिर कृष्ण के मथुरा गमन के बाद गोपी विरह और यशोदा के विरह तक है। मूलत: इन लीलाओं को श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध से लिया गया है। रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसंग के लिए श्रीमद्भगवत का उल्लेख विद्वान इसी कारण से करते हैं।
3. दार्शनिकता: कृष्ण भक्त कवियों के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद के अन्तर्गत आते हैं। तात्विक दृष्टि से इस शुद्धाद्वैतवाद को ब्रह्मवाद अथवा पुष्टिमार्ग तथा अविकृत परिणामवाद भी कहा जाता है। शुद्धाद्वैतवाद में शुद्ध का अर्थ है माया के संबंध से रहित। इस सिद्धांत के अनुसार माया के संबंध रहित ब्रह्म ही जगत का कारण और कार्य है। यहाँ ब्रह्मबाद का अर्थ है सब कुछ ब्रह्म का है, जीव ब्रह्म है और जगत भी ब्रह्म रूप है और इसी से ये तीनों सत्य हैं। यहाँ अविकृत परिणामवाद का अर्थ है कि जगत ब्रह्म का विकार रहित परिणाम है।
4. प्रकृति सौन्दर्य: प्रकृति सौन्दर्य की संवेदना को इन कवियों ने सघन अनुभूतियों से व्यक्त किया है। इनके वर्णन में प्रकृति सदा इनके साथ रही है। प्रकृति और मानव का अनादि साहचर्य इस काव्य की प्रमुख विषेषता कही जा सकती है। प्रकृति के साथ मनुष्य अपने रागात्मक संबंध का विस्तार करता हुआ अनंक रूपात्मक क्षेत्रों में प्रवेश करता है। प्राकृतिक दृश्य के साथ सीधे तादात्म्य से आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण उभरा है किन्तु मूलत: इन कवियों ने प्रकृति

के उद्दीपन रूप पर ही अधिक ध्यान दिया है। संयोग और वियोग के क्षणों में इन कविता को प्रकृति उद्दीप्त करती है। प्रकृति के सभी उपमानों को ये कवि एक साथ लाते है। इसलिए प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण इन्हें आकृष्ट करता है।

रीतिकालीन काव्यभाषा

रीतिकालीन काव्यभाषा का आधार: रीतिकाल में जिस प्रकार काव्य के वर्ण्य विषय पूर्ववर्ती भक्तिकाल से लिए गए उसी प्रकार काव्यभाषा-ब्रजभाषा भी ली गई। रीतिकाल को

डॉ. रसाल ने 'कलाकाल' कहा है। उनका कथन इस दृष्टि से उपयुक्त है कि इसी काल में भाषा-शैली को कलात्मक सज्जा प्रदान की गई। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने शुद्ध साहित्य की रचना की दृष्टि से इसे 'अनारोपित काव्यकाल' काल है और डॉ. नगेन्द्र के कथन से भी इसी बात की पुष्टि होती है। वस्तुत: मुगल दरबार में कलात्मक अभिव्यक्ति को विशेष गौरव प्राप्त था। यही स्थिति देशी राज-दरबारों की थी। वहाँ के दास-दासी भी अलंकृत शैली का प्रयोग करते थे। ऐस स्थिति में कवियों की शिल्प संबंधी सजगता स्वाभाविक थी।

रीतिकाव्य की भाषा मूलत: ब्रजी थी किन्तु उसमें अन्य भाषाओं के शब्दो का ग्रहण उदारतापूर्वक किया गया। इसका कारण यह है कि चिरकाल से मध्यदेश की भाषा ही उत्तर भारत की साहित्य-भाषा बनी हुई थी। शौरसेनी प्राकृत में प्रभूत साहित्य की रचना हुई। शौरसैनी अपभ्रंश का विस्तार पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में गुजरात तक उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में महाराष्ट्र तक हुआ। अत: इस युग के साहित्य में शैरसेनी की बेटी ब्रजभाषा में गुजराती, पंजाब, मैथिली, अवधी, बुंदलखंड़ी, खड़ी बोली और संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, अरबी-फारसी में शब्दों का मुक्त रूप से प्रयोग पाया जाता है।

यह कहना उचित नहीं कि रीतिकाल में काव्य शिल्प का संकुचन हुआ। भक्तिकाल की अपेक्षा रीतिका ल में ब्रजभाषा का शब्द-भंडार अधिक समृद्ध और वैविध्यपूर्ण हुआ। आचार्य भिखारी दास ने 'तुलसी-गंग' के विविध भाषा-प्रयोग की चर्चा की है पर रीतिकाल के कवियों की भाषा भी गुण की दृष्टि से किसी से कम नहीं है। आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन भाषा के व्याकरण सम्मत और परिमार्जित न होने की बात कही है। यह सत्य है कि उस समय भी शब्द-रूप, क्रिया-प्रयोग, वाक्य-विन्यास में त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं पर उन्होंने ही मतिराम, बिहारी, पद्माकर और घनानंद की भाषा और शैली की प्रशंसा भी की है। घनांनद की भाषा-शैली की प्रशंसा

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी विस्तार से की है। त्रुटिपूर्ण और असमर्थ भाषा के द्वारा भावों की समर्थ अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। रीतिकाल के कवि मतिराम, देव, बिहारी, घनानंद और पद्माकर जैसे रससिद्ध कवियों ने सवैया, कवित्त और दोहा छंदों में जिस प्रकार प्रौढ़ और प्रांजी भाषा का प्रयोग किया है उसके समक्ष भक्तिकाल के शीर्षस्थ कवि तुलसी की पदावली अनगढ़-सी लगती है।

रीतिकालीन भक्तिकाल

सामान्य जनता में रीतिकाल में भक्तिकाव्य धारा का ही विशेष सम्मान था क्योंकि वह हिम्मत न हारकर हरिनाम के भरोसे जीवन संघर्ष में जुटी हुई थी। कवि भी जीवन का उत्तमांश राजदरबारों में व्यतीत करने

नोट्स

के बाद वृद्धावस्था में सामान्य जन बन जाता था। समाज के निम्न वर्णों में संतों और सूफी-भावनाओं का प्रचार चला आ रहा था जबकि सवर्णों में राम-कृष्ण की भक्ति अधिक प्रचलित थी। रीतिकाल में भक्ति की निष्ठा के स्थान पर आडंबर की प्रमुखता हो गई थी। इसी कारण इस युग के भक्तिकाव्य में भक्ति का सहज सरल वर्णन दिखाई नहीं देता। भक्ति रीतिकालीन कवियों की मनोवैज्ञानिक जरूरत है। मनोवैज्ञानिक जरूरत इस अर्थ में कह सकते हैं कि कतव के लिए भक्ति समर्पण की विषयवस्तु नहीं है। उनके लिए भक्ति सांसारिकता से ऊबरकर पलयन का एक रास्ता है। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने जीवन के उत्तरार्ध में ही भक्ति काव्य की रचना की। उसमें भी उनका दैन्य और अभाव झलकता है। दूसरे प्रकार की भक्ति के आराध्य राधा और श्रीकृष्णधा हैं। राधा और कृष्ण के प्रेम प्रसंग का सहारा लेकर कवि रसिकता को उभारने का पयत्न करते हैं। जैसे-

"आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई

न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।"

इसके पीछे रीतिकवियों का यह तर्क रहा होगा कि रसिकता का महत्व लौकिक जीवन तक ही सीमित नहीं है, उसका महत्व अलौकिक जीवन में भी है। रीतिकवियों की भक्ति विवेचना के इन सन्दर्भों के अतिरिक्त सांप्रदायिक रूप से भी भक्ति साहित्य की कुछ रचनाएँ मिलती हैं।

संतकाव्य: निर्गुण की उपासना रीतिकाल में अनेक मतों और पंथों की गद्दियों में प्रचलित थी किन्तु भावना की गहराई की अपेक्षा युग के प्रळाव से उसमें प्रदर्शन और आड़बर अधिक हो गया था। यार मुहम्मद ने सन् 1700 ई. के आस-पास हिन्दू-मुस्लिम एकता हो स्थापित करते हुए योग, अध्यात्म की बातों का प्रचार किया। जीवात्मा परमात्मा के विरह-मिलन के प्रसंग में रहस्यात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इन पर सूफियों का भी प्रभाव लक्षित होता है। दूसरे संत बिहार के दरिया साहब थे जिनकी शिष्य परंपरा काफी लंबी थी। इन्होंने बीस ग्रंथों की रचना की।

- सूफी काव्य: भक्ति काल में अद्‌भूत सूफी काव्यधारा रीतिकाल में भी प्रवाहित रही। इस शाखा के कुछ कवियों का परिचय निम्नलिखित है-
- कासिमशाह: कासिमशाह के 'हंसजवाहर' (सन् 1736 ई.) में शहजादा हंस और शहजादी की काल्पनिक प्रेम-कहानी का वर्णन किया गया है। इस पर जायसी के पद्‌मावत का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है।
- नूरमुहम्मद: नूरमुहम्मद ने 'इन्द्रावती' (1744 ई.) नामक आख्यानक काव्य की रचना की। इनकी दूसरी कृति 'अनुराग बाँसुरी' (1764 ई.) है। शुक्ल जी ने इन्हें सूफी परंपरा का अंमि कवि माना है।
- रास-काव्य: रीतिकाल तक आते-आते रामकाव्य में शृंगारी प्रवृत्ति घुलने लगी थी, फलस्वरूप उसका लोकमंगल वाला तत्व कमजोर पड़ने लगा था और लोकरंजन की प्रमुखता हो चली थी।

पुनरुत्थानवाद की अवधारण

भारत में नए तरह के उद्योग भी स्थापित हुए। नई तरह की शिक्षा प्रणाली आरंभ हुई। सरकारी कामकाज का यूरोपीय ढाँचा आया। इस तरह भारत में अंग्रेजी राजसत्ता यदि एक ओर परंपरागत सामंतवाद और

उद्योगों को नष्ट करने का कारण बनी तो उसने एक नए तरह के सामंतवाद को आरोपित भी किया। वह ऐसा पूँजीवाद लाने का जरिया बना जो पूरी तरह ब्रिटिश सत्ता की दया पर कायत था लेकिन इस पूँजीवाद ने नए वर्गों को जन्म दिया। इस विकास ने भारत का अपना पूँजीवाद वर्ग भी पैदा हुआ और आधुनिक उद्योगों में काम करने वाला मजदूर वर्ग भी। ये दोनों वर्ग भी अपने-अपने हितों के लिए राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को प्रभावित कर रहे थे।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार ने भारतीय बुद्धिजीवियों में दो तरह की प्रतिक्रियाएँ पैदा कीं। एक ओर यदि वे ज्ञानोदय के आधुनिक मानवतावादी विचारों के संपर्क में आए तो दूसरी ओर वे यह सोचने के लिए भी मजबूर हुए कि क्या भारत सदैव से ही ऐसा ही पिछड़ा और गुलाम देश रहा है। बहुत से अंग्रेज विद्वानों ने जिन प्राचीन भारतीय ग्रंथों की खोज की और उन पर प्रशंसात्मक लेखन किया ससे भारतीय भी प्रभावित हए बिना नहीं रह सके और उन्होंने एक ऐसे प्राचीन भारत की कल्पना की जब भारत यूरोप से ज्यादा आगे बढ़ा हुआ और खुशहाल देश था। अतीत की ऐसी गौरवशाली कल्पना भारतीय मानस के लिए एक बड़ा बौद्धिक सहारा बनी। इस अतीत में उन्होंने उन सब बुराइयों से मुक्ति पा ली जो वर्तमान भारत में दिखाई देती हैं।

इसने उनके आत्मबल को बढ़ाया लेकिन इस सोच के लिए यह भी जरूरी था कि वे यह भी बताते कि आखिर भारत का पतन क्यों हुआ और क्यों वह पराधीन बना हुआ है? इस पतन के लिए उन्होंने उन मुस्लिम शासकों को जिम्मेदार ठहराया जिन्होंने उनके मंदिर तोड़े, उनकी स्त्रियों का अपमान किया और तलवार के बल पर उन्हें इस्लाम स्वीकार करने को मजबूर किया। इस तरह इस पुनरुत्थानवाद ने यदि एक गौरवशाली अतीत की संकल्पना प्रस्तुत की तो एक ऐसा शत्रु भी दिया जिसको वे अपने पतन के लि जिम्मेदार ठहरा सकते थे। इस पुनरुत्थानवाद ने तीसरा काम यह किया कि इसने एक ऐसा समूह पैदा किया जो यह मानता था कि यहद हम उस अतीत को वापस ले आते हैं तो हम अपने गौरव को पुनः पा सकते हैं।

इस सोच का नेतृत्व आर्य समाज जैसे संगठन कर रहे थे और बाद मं और अधिक उग्र तथा सांप्रदायिक रूप में उन हिन्दू संगठनों द्वारा सामने आया जो भारत को हिन्दू राष्ट्र के रूप में उभरता हुआ देखना चाहते थे। ठीक ऐसे ही अतीतवादी इस्लामी गौरव को हम मुस्लिम पुनरुत्थानवाद के रूप में देख सकते हैं।

छायावाद

छायावादी युग: 'छायावादी' हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट काव्यधारा है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार-"स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह 'छायावाद' है और यह एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"

समाप्ति युग का समय सन् 1918 से 1939 तक मान सकते हैं। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति और द्वितीय महायुद्ध के आरंभ के मध्य छायावादी काव्य की विशेष रूप से रचना हुई। सन् 1920 में इस नाम का सर्वप्रथम प्रयोग 'शारदा' में प्रकाशित मुकुटधर पाण्डेय के एक लेख में हुआ। उन्होंने इस शब्द का

नोट्स

प्रयोग इस काव्य की अस्पष्टता दिखाने के लिए व्यंग्यात्मक रूप में किया था। संयोग की बात है कि आगे चलकर स्वयं इस काव्यधारा के कवियों ने इस नाम को अत्यन्त आग्रपूर्वक अपना लिया।

छायावाद की परिभाषा एवं स्वरूपः छायावाद की विभिन्न परिभाषाएँ उपलब्ध होती है। यथा-

1. डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार - "परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद हैं"
2. श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के विचार से - "छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।"
3. डॉ. देवराज का कथन है - "छायावाद गीति काव्य है, प्रकृति काव्य है, प्रेमकाव्य है।"
4. डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार - "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह रहा है।"

निस्संदेह 'छायावाद' की कोई निश्चित एवं सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है। फिर भी हम कह सकते हैं कि छायावादी काव्य में दार्शनिक अनुभूति, सूक्ष्म अभिव्यक्ति, प्रकृति का मानवीकरण, प्रतीकात्मक शैली और गीति तत्त्व की प्रधानता होती है।"

भारतेन्दु युगीन नाटक

परिनिष्ठित साहित्य के रूप में हिन्दी नाटक का विधिवत विकास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही किया। नाटक के माध्यम से एक सुरुचिपूर्ण राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का नवोन्मेष करना उनके नाटक-सृजन का लक्ष्य था। मनोरंजन के साथ-साथ दर्शक को शिक्षा देना भी उनका अभीष्ट था। उन्होंने नाट्य-लेखन और अभिन्य को मनोविनोद के साथ-साथ समाज-सुधार और युगीन नवजागरण से भी जाड़ा। वे यह मानते थे कि नाट्य प्रदर्शनों के माध्यम से समाज-सुधार का आन्दोलन अधिक प्रभावी हो सकत है। सामाजिक या दर्श का उसके यथार्थ को दिखलाकर अधिकाधिक झकझोरा और अपनी दशा को सुधारने की ओर प्रेरित किया जा सकता है। इसी प्रोजन से भारतेन्दु ने अपने युग को सुधारने की ओर प्रेरित किया जा सकता है। इसी प्रयोजन से भारतेन्दु ने अपने युग के विविध धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि प्रश्नों या समस्याओं को अपने प्रहसनों एवं नाटकों में रूपायित किया और पुनरुत्थानमूलक समाधान प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु और भारतेन्दु मंडल के दूसरे नाटककार मूलतः सुधारवादी थे। समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर इन्होंने अपने समाज की वर्तमान दशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया। हम जानते हैं कि लेखक का दृष्टिकोण जब यथार्थपरक होता है तो वह अनिवार्यतः अपने समय के समाज का खुली आँख से देखता है। उसके राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि सभी घटकों में व्याप्त बुराइयों, विकृतियों, अंधविश्वासों का यथा तथ्य रूप प्रस्तुत करता है।

भारतेन्दु युग परतंत्र युग था। उनके समय के नगर, और राष्ट्र में सर्वत्र सभी स्तरों पर रूढ़िग्रस्त पतनोन्मुखी प्रवृत्तियाँ कार्यशील थीं। परतंत्र जाति की संकुचनशील मनोवृत्तियाँ भारतीय जीवन को दुर्बल, शक्तिहीन एवं खोखली बनाती जा रही थी। उन्हें देखकर दूरदर्शी हरिश्चन्द्र का अनुभूति प्रवण हृदय बारंबार

विकल हो उठता था। इसी विकलता ने उन्हें ऐसी नाट्यकृतियों को सर्जन करने के लिए प्रेरित किया जिनमें भारत का जनवर्ग अपनी ह्रासोन्मुखी गतिविधियों को स्पष्ट, साकार मूर्ति देख सके और उनके रहस्य को समझ कर उनके विरुद्ध विद्रोह करने की दृढ़ता और शक्ति प्राप्त कर सके। इसी अर्थ में वे यथार्थ बोध के नाटककार थे।

द्विवेदी-युगीन कविता

भारतेन्दु युग में जिन नवीन काव्य-प्रवृत्तियों का जन्म हुआ था, द्विवेदी युग में उनका विकास हुआ। हिन्दी काव्य में नई चेतना एवं आदर्श को प्रतिष्ठा बढ़ी जन-जीवन को आशा और विश्वास का संदेश मिला। इस युग के काव्य की भावगत एवं कलागत मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं-

1. राष्ट्रीय चेतना: इस युग के कवियों ने अतीत काल के गौरवमय आख्यानों द्वारा भारतवासियों में देश-प्रेम की भावना को जगाया। जातीय आदर्शों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय आदर्शों को ग्रहण किया। इन्होंने भारत की अखण्डता एवं स्वतंत्रता के लिए स्तुत्य कार्य किया। इस क्षेत्र में कविवर मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'भारत-भारती' जैसी राष्ट्रीय रचनाओं का सृजन हुआ। महाकवि गुप्त इस रचना में देशवासियों को जगाते हुए कहते हैं-

   "हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
   आओं विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।।"

2. सामाजिक चेतना: इस युग के कवियों ने समाज सुधार को दृष्टि में रखकर भी काव्य रचना की है। इन्होंने स्त्री-शिक्षा एवं विधवा-विवाह का समर्थन किया और दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, बाह्य आडंम्बरों आदि सामाजिक असंगतियों का घोर विरोध किया। ये कवि सामाजिक प्रगति के आकांक्षी थे, इनकी सुधारवादी भावना में सद्भावना और मण्डनात्मक प्रवृत्ति प्रमुख थी। इस दिशा में अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति कवियों का योगदान स्तुत्य है।

3. उदार धार्मिक चेतना: द्विवेदी युग के काव्य मे उदार एवं व्यापक धार्मिक चेतना मिलती है। इस काल के कवियों की धार्मिक भावना केवल ईश्वर के गुणगान तक सीमित नहीं है, उसमें सामवतावाद के आदर्शों, विश्व-प्रेम और जनसेवा की उच्च भावना का भी समावेश हुआ है। यथा-ठाकुर गोपलशरण सिंह की ये पंक्तियाँ इसी तथ्य को पुष्ट करती हैं-

   जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।
   विश्व-प्रेम के बन्धन ही में, मुझको मिला मुक्ति का द्वार।।

4. इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता: द्विवेदी युग ने काव्य में आदर्शवाद की प्रधानता के कारण इतिवृत्तात्मकता (डंजजमत वि बिज) की प्रवृत्ति ने बल पकड़ा यह शैली नैतिकता के प्रचार और आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के लिए अति उपयोगी सिद्ध हुई। इस युग के कवियों ने पौराणिक आख्यानों को काव्यवद्ध किया। इनकी यह इतिवृत्तात्मकता शैली नीरसता एवं शुष्कता का कारण भी बनी। फलत: इनके काव्य में अनुभूति की गहराई और कोमलकान्त पदावली का अभाव आ गया, जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप छायावादी काव्य का जन्म हुआ और स्थूलता का स्थन सूक्षमता ने लिया।

नोट्स

खड़ी बोली के विकास में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका

खड़ी बोली हिन्दी गद्य और भारतेन्दु युगीन के विकास में उस काल के पत्र-पत्रिकाओं का बड़ा योगदान है। इस काल की सारी जागृति, सारी सुधारवादी चेतना और सारा साहित्य पत्र-पत्रिका के माध्यम से ही सामने आया और जनसाधारण तक पहुँचा। हिन्दी के पहले साप्ताहिक 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन कलकत्ता से 30 मई 1826 ई. को प्रारम्भ हुआ और ग्राहकों के अभाव में 4 दिसम्बर 1827 ई. को बंद हो गया। इससे पहले राजा राममोहनराय ने 'बंगदूत' का हिन्दी संस्करण भी निकाला था। कलकत्ता से ही हिन्दी का पहला दैनिक समाचारपत्र श्यामसुन्दर सेन ने जून 1854 ई. में 'समाचार सुधावर्षण' के नाम से निकाला जो कई वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। बनारस से जनवरी 1845 ई. में गोविन्द रघुनाथ थते के सम्पादन में राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' निकाला। हन्दी क्षेत्र से निकलने वाला यह पहला पत्र था। इसकी भाषा का झुकाव अरबी-फ़ारसी शब्दों की ओर अधिक था। सिमला अखबार, मालवा अखबार, काशी पखिका आदि इस समय निकलने वाले पत्र भाषा की दृष्टि से उर्दू के ही पत्र थे। हिन्दी भाषा को सच्चे अर्थों में अपनाने वाले काशी के 'सुधाकर' और आगरा के 'बुद्धि प्रकाश' जैसे पत्र थे।

इन पत्रों में साहित्य का प्रकाशन नगण्य था, समाचारों का प्रकाशन ही मुख्य था। साहित्य का प्रकाशन तो मुख्यतः उन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ जिन्हें उस समय के साहित्यकारों ने निकाला। स्वयं भारतेन्दु हिरश्चन्द्र ने 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' कार प्रकाशन किया। उनके अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', लाला श्रीनिवासदास ने 'सदादर्श', तोताराम ने 'भारतेन्दु' कन्हैयालाल ने 'मित्रविलास', देवकीनन्दन तिवारी ने 'प्रयाग समाचार', राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेन्दु' आदि का उल्लेख भी आवश्यक है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना जगाने, रूढ़ियों और अंधविश्वास से मुक्त करके समाज सुधारने और भारत के भविष्य को उज्जवल बनाने के अतिरिक्त इनका उद्देश्य 'यथा हिन्दी भाषा का प्रचार करना व हिन्दी लिखने वालों की संख्या वृद्धि' करना भी था। भारतेन्दु युग का अधिकांश साहित्य पहले पहल इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आया और हिन्दी भाषा का परिमार्जन हुआ। भारतेन्दु ने 'कालचक्र' में यह सच ही लिखा था कि 1873 में "हिन्दी नए चाल में ढली"। इसी वर्ष 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' या 'हरिश्चन्द्रिका' का प्रकाशन हुआ था।

खड़ी बोली के साहित्यिक भाषा के रूप में विकास की प्रक्रिया

भारतेन्दु से पूर्व खड़ी बोली गद्य के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि के राजकाज और पत्र व्यवहार आदि में मिलने वाले उदाहरणों के अतिरिक्त पुस्तकों के रूप में रची गई गद्य-रचनाएँ या तो दक्खिनी हिन्दी में मिलती है या ब्रज आदि विभाषाओं से प्रभावित खड़ी बोली में। दक्खिनी हिन्दी के पहले गद्य-लेखक ख्वाजा बन्देनवाज गेसूदराज ने पन्द्रहवी शताब्दी के दूसरे दशक में सूफी सिद्धान्तों का परिचय देने के लिए 'मेहराजुल आशकीन' की रचना की।

फोर्ट विलियम कॉलेज और खड़ी बोली का गद्यः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों को शिक्षा, भाषा-ज्ञान और सदाचरण सिखाने के उद्देश्य से कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। गिलक्राइस्ट हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। वे रोमन और फारसी लिपि, अरबी-फारसी आक्रान्त

खड़ी बोली में आस्था रखते थे। उनकी दृष्टि में यही शिष्ट जनों की भाषा थी। संस्कृत तत्सम और तद्भव शब्दों से मुक्त खड़ी बोली को वे गँवारू समझते थे। उनके विश्वास और समझ का दूरगामी प्रभाव उर्दू और हिन्दी के विभाजन के रूप में सामने आया। फोर्ट विश्वास कॉलेज में उर्दू और हिन्दी दोनों के गद्य का निर्माण हुआ। इस कॉलेज में खड़ी बोली गद्य का निर्माण करने के लिए दो भाषा मुंशी नियुक्त हुए-आगरा निवासी गुजराती ब्राह्मण लल्लूजी लाल और आरा निवासी सदल मिश्र। सन् 1803 ई. में लल्लूजी लाल ने श्रीमद्भगवत के दशम स्कन्ध की कथा खड़ी बोली गद्य में 'प्रेमसागर' के नाम से प्रस्तुत की। इनकी खड़ी बोली में 'यामिनी भाषा' अर्थात् अरबी-फारसी के शब्दों का बहिष्कार किया गया। जो गद्य इन्होंने लिखा, वह ब्रजभाषा-रंजित, सानुप्रास वाक्यों से युक्त, लम्बे-लम्बे वाक्यों वाली कथावार्ता की शैली का गद्य है, जो व्यवहारोपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। इन्होंने उर्दू और ब्रजभाषा गद्य में कुछ और पुस्तकें भी लिखीं।

स्वाधीनता आंदोलन और नवजागरण

द्विवेदीयुग में स्वाधीनता की माँग और तीव्र हुई। 28 सितम्बर, 1885 ई. में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों की सद्भावना और न्यायप्रियता पर विश्वास करके अपनी माँगें उनके सामने प्रार्थना के रूप में प्रस्तुत करती रही लेकिन इन प्रार्थनाओं का कोई फल नहीं निकला। इसलिए कांग्रेस में असंतोष बढ़ने लगा जो 1905 ई. में बंग-भंग के समय पूर्णतः सामने आ गया। इस बंग-भंग का सभी देशभक्त भारतीयों ने विरोध किया लेकिन विरोधक स्वरूप को लेकर उनमें मतभेद था। फलतः कांग्रेस में उग्र और अनुग्र दो दल बन गए सन् 1906 ई. में कांग्रेस की सदस्यता के नियम इस प्रकार बना दिए गए जिससे उग्र दल वालों के लिए उसके दरवाजे बंद हो गए।

अंग्रेज सरकार भी उग्रवादियों के खिलाफ थी। अतः 1907 ई. में बिना मुकदमा चलाए लाला लाजपतराय को देश से निर्वासित करके माण्डले भेज दिया गया। अगले ही वर्ष केसरी के लेखों को बहाना बनाकर तिलक को छह वर्ष की कड़ी सजा देकर माण्डले भेज दिया लेकिन इससे अंग्रेजी शासन का विरोध कम नहीं हुआ। 1915 ई. में तिलक और एनी बेसेंट ने होमरूल आंदोलन चलाया। सन् 1916 ई. में उग्रवादियों को कांग्रेस में फिर प्रवेश मिला। सन् 1914 ई. में प्रारंभ होने वाले प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने के लिए गाँधीजी ने कांग्रेसियों का मना लिया। इस सहायता के पीछे मनोभाव यह था कि युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज शासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाएँगे, उनकी माँगों को कुछ न कुछ स्वीकार करेंगे लेकिन हुआ उल्टा। युद्ध समाप्त होते ही अंग्रेजों ने अपना दमनचक्र पूरी तेजी से चलायाप जिसकी स्वाभविक प्रतिक्रिया हुई। सन् 1919 ई. का रौलट बिल इसी दमनचक्र का अंग था और 13 अप्रैल, 1919 ई. को जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड उस दमनचक्र की चरम परिणति था।

जिस तरह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों के साहित्य को अनुशासित और निर्देशित किया वैसा न उनसे पहले और न ही उनके बाद कोई एक व्यक्ति कर सका। वे सच्चे अर्थों में युग-निर्माता थे और यह कार्य उन्होंने किया 'सरस्वती' के माध्यम से। इस पत्रिका का पहला अंक जनवरी, 1900 ई. में प्रकाशित हुआ। पहले वर्ष में इसके सम्पादक थे - श्यामसुंदरदास, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्णदास, जगन्नाथदास रत्नाकर और किशोरलाल गोस्वामी। अगले वर्ष अर्थात्

नोट्स

1901 ई. में केवल श्यामसुंदरदास इसके सम्पादक रह गए। फरवरी, 1903 ई. में द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन संभाला और 1920 ई. तक बीच के दो वर्ष छोड़कर वे इसका सम्पादन करते रहे। उनके सम्पादन काल में इसमें जो भी रचनाएँ प्रकाशित हुईं, द्विवेदी जी ने न केवल उनकी भाषा को सुधारा अपितु उनके भावों और विचारों को भी नियंत्रित किया।

प्रगतिशील साहित्य

हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का उदय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ शुरू हुआ यह समझना सही नहीं है। प्रगतिशील साहित्य की रचना उससे पहले ही होनी शुरू हो गई थी। यदि देखें तो इसकी परंपरा भारतेंदु युग से दिखाई देती है जब उस दौर के लेखकों ने भक्ति और शृंगारपरक साहित्य रचने के साथ-साथ अपने समय और समाज के ज्यादा बृहत्तर सवालों पर साहित्य लिखना आरंभ किया। कविता में तो इस नए रुझान की अभिव्यक्ति धीरे-धीरे हुई लेकिन गद्य की विधाओं में तो नए सवाल ही प्रमुखता से उभर कर सामने आए। यह प्रवृत्ति लगातार दृढ़ होती गई प्रेमचन्द, प्रसाद, सुदर्शन, विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक आदि लेखकों की कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में राष्ट्रीय मुक्ति और जागरण की भावना से ओत-प्रोत साहित्य रचा जाने लगा था।

यदि यह साहित्य नहीं रचा जाता तो हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य की बुनियाद खड़ी नहीं होती। प्रगतिशील साहित्य को विदेशी प्रभाव बताने वाले लेखकों के कुतर्क का जवाब यही जनोन्मुखी परंपरा है। इसी ने प्रगतिशील लेखन के लिए अनुकूल माहौल बनाया। कविता से इतर विधाओं में प्रगतिवाद का उदय कोई नई बात इसलिए नहीं थी कि प्रगतिवाद जिसका मुख्य बल यथार्थवाद पर था, वह कथा साहित्य में पहले ही स्वीकृति पा चुका था। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का कथन विशेष रूप से विचरणीय है। उन्होंने लिखा है, 'प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण कविता में जितना परिवर्तन हुआ, उतना कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में नहीं हुआ।

इसका कारण यह था कि प्रेमचन्द के युग से ही उपन्यास में यथार्थवादी प्रवृत्ति का उदय हो गया था। अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचन्द ने शुरू से ही किसानों और मध्यवर्गीय भद्र पुरुषों के यथार्थ जीवन का चित्रण किया था। प्रेमचन्द के ही समय किस तरह परिस्थितिवश किसान मजदूर बनने के लिए विवश हो गया था, इसे भी उन्होंने 'गोदान' में अच्छी तरह दिखला दिया था। इसलिए प्रगति वाद के उदय से अधिक से अधिक यही उम्मीद थी कि प्रेमचन्द की कि परंपरा को और अच्छी तरह आगे बढ़ाने की दृष्टि मिलेगी। प्रेमचन्द ने आरंभिक युग के सुधारवादी और आदर्शवादी विचारों से किस तरह क्रमशः छुटकारा पाया और अंत तक आते-आते उनका दृष्टिकोण कितना स्पष्ट हो गया था इसे 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' की तुलना से अच्छी तरह समझा जा सकता था।

समकालीन कविता

समकालीन कविता की प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. समकालीन कविता के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण कवियों ने समय-समाज की चुनौतियों से उपजी बौद्धिक चिन्ताओं का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया। इन सभी कवियों ने अपनी

काव्य-संवदना को इतना धारदार, निर्भय और व्यापक बनाया कि उसमें न केवल राजनीतिक आर्थिक क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता पर तेज टिप्पणियाँ, खीड़ा-आक्रोश गुस्सा-विद्रोह की मुद्राएँ हैं-वरन् मानवीय सार्थकता के सभी सरोकार सक्रिय हैं।

2. समकालीन काव्य की अन्तर्वस्तु अत्यंत व्यापक है। इतनी व्यापक है कि पूरे देश की जनता के दु:खते-कसकते अनुभव इस सृजन में व्याप्त हैं। देश की राजनीतिक-सामाजिक, आर्थिक-सांस्कृतिक, धार्मिक-नैतिक सभी समस्याओं-प्रश्नाकुलताओं को इन रचनाकारों ने निर्भय भाव से अभिव्यक्त किया है।

3. नेता, संसद, समाजवाद और स्वतंत्रता परसमकालोन कविता ने जो स्वर अपनाया है वह स्वाधीन भारत का काला इतिहास है। कौए, गिद्ध, गुबरैले, तेंदुए, साँड़, शेर इस कविता में पाशविक ताकतों की रक्तखोर मानसिकता को सामने लाते हैं। सर्वेश्वर की कविताओं में काली चट्टानों पर अँगड़ाई लेता काला तेंदुआ सत्ता की बर्बरता का प्रतीक है तथा संसद

   धूमिल के शब्दों में तेली की वह घानी है जिसमें 'आधा तेल है आधा पानी है।' स्वतंत्रता कहने भर को है। हर तरह की पराधीनता का नरक देश भोग रहा है। न आदमी स्वतंत्र है, न भाषा, न अर्थव्यवस्था और न बुद्धिजीवी।

4. समकालीन कविता का कथ्य, जन-संघर्ष की चेतना को अनेक रूपों-स्तरों से सीधे-सीधे अभिव्यक्ति देता है। प्रगतिवाद-नई कविता के कवियों की व्यवस्था विरोध की प्रवृत्ति इस कविता में विद्रोह-विक्षोभ का रूप धारण कर लेती है। सन् 60 के बाद की महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, चरित्रहीनता, काला-परिवेश या अपातकाल की बर्बरता, काले-काले अध्यादेश, नागार्जुन से लेकर धूमिल तक को गुस्से से भर देते हैं।

   "साधो आज मेरे सत की परीक्षा है।
   बीच में आग जल रही है।
   उस पर बहुत बड़ा कड़ाह रखा है।
   कड़ाह में तेल उबल रहा है।
   उस कड़ाह में मुझे बसके सामने हाथ डालना है।
   साधो, आज मेरे सत की परीक्षा है।"

5. नई कविता मोहभंग की कविता है पर समकालीन कविता मोह-भंग की कविता नहीं है। वह आत्म-चीत्कार और व्यक्ति क मोहभंग का साहित्य है। मलयज ने लिखा है-'नेहरू युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है। इसके विपरीत नेहरू-युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है। छात्र-असंतोष, घेराव और दल-बदल में आम आदमी को ही नस बजती है। जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झंडा पार्टी-सिद्धान्तों के चिथड़े को सिलकर बनाया गया हो वहाँ मोहभंग की गुजाइश रह ही नहीं जाती।

नोट्स

छायावाद के प्रवर्त्तक के विवाद पर चर्चा करते हुए छायावाद की परिभाषा

आधुनिक काल में तृतीय चरण के काव्य को छायवादी काव्य कहा गया है। मोटे तौर पर छायावाद की समय सीमा सन् 1920 ई. से 1936 ई. तक मानी गई हैं किन्तु कतिपय विद्वान इसे सन् 1918 ई. से 1938 ई. तक स्वीकर कतरे है। याद्यपि इस काल खण्ड में केवल छायावादी रचनाएँ ही नहीं लिखी गई अपितु राष्ट्रीय सांस्कृति धारा से जुड़ा हुआ काव्य भी इसकी काल में लिखा गया है। अपितु राष्ट्रीय सांस्कृति धारा से जुड़ाव हुआ काव्य भी इसकी काल में लिखा गया है।

माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' रामनरेश शुक्ल 'अंचल' जैसे गीतकारों ने प्रणय की लौकिक एवं मासल अभिव्यक्ति एही काल में की। बच्च की हलाववादी रचनाएँ भी इसी के अन्तर्गत है। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा की रचनाएँ दायावादी विशेषताओं से युक्त स्वीकर कतरे हुए इसका नामकरण 'छायावाद' करना समीचीन प्रतीत होता है। छायावादी रचनओं में उच्च कोटि का कविता अनुभूति की तीव्र विद्यमान है तथा उसने परम्परागत तंत्त्वों का समावेशकरते हुए परवर्ती काव्य के विकास को भी प्रभावित किया साथ ही जन जीवन को समग्रता के साथ, अभिव्यक्त किया इस दृष्टि से भी छायावादइ रचनाएँ ही इस काल की प्रमुख रचना मानी जा सकती है

'कामायनी' (प्रसाद) में छायावादी प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। छायावाद को समझने से पूर्व हमें तद्युगीन जीवन किया। उस काल में भारतीय जनमानस में स्वाधीनता की आकाश, रष्ट्र प्रेम, अहिंसा, गाँधी वादी जैसो कुछ मूल्य व्याप्त थे। देश में अंग्रेजी शासन के प्रति आंक्रोश था और अंग्रेजी को सम्राज्यवादी नीति से भारत को मुक्त करना लेन के जी तोड़ प्रयास किया जा रह है। वास्तुतः छायावाद की राजनीतिक पृष्टभूमि यही है सादियों की दासता से पीड़ित जनता में स्वातन्त्र्य चतना जो मार रही थी परिणमतः सुप्त देश की आत्मा पूरी शथकत के साथ उद्धेलित हो उठी।

अंग्रजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार न देश के बुद्धिजीवितयों के सामन नए क्षितिज खोज दिए। अब भारतीय मनीप देश की जनता को नेतृत्व प्रदान करने की ओर अग्रसत हो गई। इस काल में एक-से एक धुरन्धर राजनीतिक नेताओं ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में आवाज बुलन्द की। ईसाई धर्म प्रचारको ने पाश्चात्य जीवन पद्धति की गरिमा को स्थापित करने के लिए मिशनरी ढंग से प्रचार किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय संस्कृति के मूलयों एवं मान्यताओं के प्रति लोगों में आकर्षण जागृत हुआ। सांसस्कृति सामाजिक क्षेत्र में अनके प्रकार के आनदोलन प्रारम्भ हो गए। भारतीय संस्कृति सामजिक क्षेत्रों मे एक साथ हुआ। स्वामी दयान्नद, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, गोखले, तिलक, गाँधी जैसे महापुरूषों ने देश में नवजागरण का शंख फूँक दिया। स्पष्ट ही उस काल की कविता पर इन सभी महापुरूषों के जीवन मूल्यों एवं सिद्धान्तों का व्यापाक प्रभाव पड़ा। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में छायवादी काल के सभी कवि इनसे प्रभावित है। गाँधीवाद से प्रभावित काचिसां की तो एक पूरी शृखला ही इस काल में दिखाई पड़ती है।

प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को विश्लेषण

छायावादोत्तर युग की हिन्दी कविता में मुख्यःप्रगतिवादी, प्रयागवादी, नई कविता तथा साठोत्तरी कतिवा का समावेश होता है। इस युग की कवितओं में पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश, प्राचीन रूढ़ियों का विरोध,

क्रान्तिकरी स्वर, नई भाषा की खोज, गन्न यथर्थवादी तथा विषय की व्यपकता मिलती है।

प्रगतिवाद: राजनीतिक क्षेत्र में जिसे साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में माजवाद और दार्शनिक क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते है, वही साहित्यि क्षेत्र में प्रगतिवाद कहलाता है। साम्यवादी या मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित कविता प्रगतिवाद कहलाता है। 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' को एक मानना उचित नहीं है। दोनों शब्दों में सूक्ष्म अन्तर है। 'प्रगतिवाद' में 'प्रगति' शब्द का अर्थ केवल आगे बढ़ना नहीं हैं, वरन् एक विशिष्ट शब्द में आगे बढन है और व विशिष्ट दिशा है।- मार्क्सवाद चिारधारा। 'प्रगतिशील' शब्द में हुआ। इस दृष्टि से वाल्मीकि, तुलसी, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवि प्रगतीशील है। प्रगतिवादी सहिहित्य का मूल आधार कार्ल मार्क्स को विशेषता है। यह विष्व की महान शक्तिशाली विचारधाराओं में से एक है। इसके समर्थन ओर विरोधी दोनों ही इसकी शक्ति का धाक स्वीकार करते हैं। इसके प्रभाव से नीव जीवन-दर्श साहित्य, काला एवं संस्कृति का आदिर्भाव हुआ। मार्क्सवादी विचारधारा के मुख्यात चार भागों मे विभाजिक किया जा सकता है-

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. मूल्य-वृद्धि का सिद्धान्त
3. अर्थव्यस्था के अनुसार विश्व-सभ्यता की व्याख्या और
4. ऐतिहासिक भौतिकवाद क

आधुनिक युग के प्रारंभ में साहित्य से गीत

आधुनिक काल की अन परिस्थितियों और गतिविधियों ने युगीन साहित्य, संगीत, भाषा तथा चित्रकला आदि को भी प्रभावित किय। रीतिकाल में इन सभी के दरवारों में आश्रय और प्रश्रय मिल रहा था किन्तु अंग्रजी साम्राज्य की स्थापना के बाद सामंतवादी ढ़ाँचा टूट और इन कलाओं के दरबरी आश्रय भी छिन गई। कला, संगीत तथा नृत्य आदि को धरानों में पीढ़या-दर पीढ़ी संरक्षण मिला करता था। इस युग में वह धीरे-धीरे कम होता चला गया। पाश्चात्य संस्कृति की आँधी ने भारती कलाओं के स्वरूप को बदला। संगती के क्षेत्र में एक नई पद्धाति का अभिव्यथत का प्रमाण बना। पत्र-पित्रकाआ में ये सामंजस्यवादी संस्कृति को सूचक चित्र छपने लग थ।

आगे चकलकर है बेल, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर तथा आनंद कुमार स्वामी आदि ने भारतीय चित्र शैली को आधुनिक जीव दृष्टि से अनुशासित करते हुए एक नया रूप प्रदान किय। बंगाल ने इस दिशा में तो प्रमुख भूमिका निभाई ही, साहित्य की अनके विधाओं में भी आधुनिक जीवन के नवजागरण की मुखर अभिव्यथत देखने को मिली हिन्दी इस युग में साहित्य तेजी से तथा नए-नए रूप-रांग में आगे बढ़ा। साहित्यकारो ने अतीती को चतना को भी साहित्य से स्वर प्राप्त हुआ देश की सभी भाषाओं में साहित्य का वैविधय तथा जागरण की चेतना देखी जा सकती है।

मुदणालयों नही साहित्य को जन-जन तक तो पहुँचाया ही, देश को एक सूत्र मे बाँध ने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाई। देश में नवजागतरण लाने वाले समाचर-पात्रो, पुस्तकों तथा मुद्रणलयों की इस भूमिका को कभी विस्तृत नहीं किया जा सकता है?

नोट्स

उस समय सरकारी कार्यालयों, अदालतों तथा शिक्षा संस्थओं में उर्दू भाषा अधिपत्य था। फलतः हिन्दी भाषा जनसमूह तथा विभिन्न बोलियों के बीच सम्पर्क माध्यम के रूपा में खड़ी बोली को प्रतिष्ठिता करने, उर्द के स्थान पर नगरी लिपि में खेड़ी बोली हिन्दी को हिन्दी भाषा जनता के नवजागरण को सांस्कृतिक माध्यम बनाने सरकारी स्तर पर हिन्दी को यथयोग्य स्थान दिलाने को जा संघर्ष उस समय हुआ, उसमें आधुनिक बोध की तथा अधुनातन चेतना की महत्त्वपर्ण रही ।

सन् 1868 ई. से ही आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का प्रवर्त्तन हुआ और ही से साहित्यि पत्रिका "कवि-वचन-सुधा" की शुरूआत भी हुई। इसके बाद "हरिश्चनद पत्रिका","सरस्वती" तथा "मतवाला आदि पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो चुका था। अतः खड़ी बोली हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह ऐतिहासिक वर्ष ही था। इसके बाद तो "लल्लू जी लाल कवि" द्वारा किया गया खड़ी रूपांतरण "प्रेम सागर" प्रकाशित हआ। फिर पंडित सदल मिश्र ने "नसीके तो पाख्यान" तथा रामचरित्र" नामक ग्रन्थों में प्रयुक्त राजभाषा सामने आई। तदोपरांत मुंशी सदासुख लालाा को "सुख सागर" नामक ग्रन्थ प्रकासित हुआ। इअती प्रकार इंश अल्ला खाँ की रचना 'रानी केतकी की कहानी' भी आधुनिक खड़ी बोली गद्य के अतिहास में महत्त्वपूर्ण रचना के रूप में जानी गई मिशनरियों द्वारा बाइबिल के अनुवाद कि। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्दी का आविर्भव भी हिन्दी खड़ी बोली गद्य के विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण चरण माना गया। इसकी प्रकार, राज लक्ष्मण सिंह की रससिद्ध गद्य शैली नवी चन्द्र राय की गद्य शैली भी अधनिकि हिन्दी साहित्य एवं भाषा के विकास की सूचक बनी।

शुल्लोत्तर हिन्दी आलोचना की विकास

शुक्लोत्तर हिदी आलोचनाः आचार्य रामच्द्र शुक्ला की आलोचना के केन्द्र में बीर गथा से लेकर छायवादी काव्यधारा तक का साहित्य रहा है उनके समीक्षा-सिद्धांत और काव्य के प्रतिमा विशेष रूप से भक्ति काव्य के आधार पर निर्मित हुए है। जिसक समय शुक्ल जी का आलोचक व्यक्तित्व अपने पूर निखार पर था उसी समय व्यक्ति चेतना को केन्द्र में रचाकर छायवादी काव्यधरा का विकास हुआ जिसकी आचार्य शुक्ल ने कड़ी आलोचना की। रसवादी, परम्परानिष्ठ लोकमंगलवादी और मर्यादावादी आचार्य शुक्ल व्यक्ति कें सुख-दुख आशा- आकंषा, प्रे विरह और मानवीय सौन्दर्य के आकर्षण से परिपूर्ण छायावादी कविता को अपेक्षित सहृदयता से न देख-समढ के। पलस्वरूप छायवादी कवियों को अपने पक्ष की प्रसतुति के लिए आलोचनात्मक विवेक के साथ सामने आना पड़ा। प्रसाद पंत, निराला और महादेवी वर्मा मे छावाद नाम की अभ्वि काव्य-प्रवृत्ति की विशेषताओं में रेखांकित किया और शुक्ला जी की इस धारण का विराध किया कि छायवादी कविता विदेशी कविता की नकल और अभिव्यंजना की नूतन प्रणली मात्र है।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद के भारतीय के अंतर्मन की अदम्स अभ्विय्थ्क्त के यप में रेखांकित किया। छायवाद कवियें की मान्यताओं और सीपनाओं के स्पष्ट रूप समाने आ जाने पर परवर्ती आलेचकों को इस काव्यधारों को समझने में आसानी हुई और इसे ननदुलारे वापेयी, शांतिप्रिय दिद्धवेदी और डॉ. नगेन्द्र जैसै ससमर्थ आलोचकों के बाल प्राप्त हुआ। इन आलोचकों के आचार्य शुक्ल की आलोचना-परम्परा का विकास हेतु हुए अनेक संदर्भों में अपनी स्वतंत्र दृष्टि और मैलिकता का परिचय दिया है। शुक्लोत्तर हिन्दी

आलोचना का विकास कई रूपों में हुआ। इनका वर्णन निम्नलिखित है:

1. स्वच्छन्दतावादी आलोच: हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी आलोचना का विकास छायावादी काव्यधरा के मूल्यांक के साथ हुआ। इससे इस काव्यधरा के स्वस्थ मूयांकन के लिए आचार्य नन्दुलारे वायपेयी ने छायावाद संबंधी अनके भ्रमों के दूर किया। इसकी प्रकार को दृष्टिकोण डॉ. नगेन्द्र ने भी रखा। इस स्वच्छन्दतावादी आलोचना से इसके आलोचकों को पर्याप्त ख्यापि मिली। वायपेयी ने 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य', 'नए प्रश्न' जयशंकर प्रसाद','कवि निराला' हिन्दी साहित्य: बीसवी शाताब्दी आदि उल्लेखनीय आलोचनात्मक ग्रथ लिखे।
2. प्रभाववादी या प्रभावभिव्यंजक आलोचना: किसी काव्य कृति का अध्ययनोपरांत मार्मिक ढंग से पाठाकों पर अपने पड़े हुए प्रभावों को व्यक्त करने के स्वरूप को प्रभावसादी या भावभिव्यंजक आलोचना कहते हैं इस प्रकार की आलोचना का पहला प्रसास पद्मसिंह शर्मा शांतिप्रिय द्विवेदी आदि ने किया। इस आलोचना प्रद्वति का हिन्दी में अधिक विस्तार नहीं हुआ।
3. मनो वैज्ञानिक या अन्तश्चेतनावादी आलोचना: मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार कला में नवी प्रयोग होना चाहिए। उसका यह मानना है कि जैसे-जैसे समाज का त्रिकास होता है जएगा, वैसे-वैसे जीवन दशाएँ वदलती जाएँगी। फिर उसके समान्त अवचेतन और चेनत आपस में टकराने लगेंगे। परिणामस्वरूप मानव चिरत्र की संश्लिष्टताएँ और जटिलाएँ और अधिक बढ़ जाएँगी। इलाचन्द्र जौशी, अज्ञेय, डॉ, नगेन्द्र, डॉ देवराज आदि इस आलोचना स्वरूप के महान आलोचक है।

रेखाचित्रण और संस्मरण

रेखाचित्रण के मुख रूप से तीन अंश है-रंग रूप और रंग। इसमें से रेखाओं का पयोग कस भी भावना को आकास प्रदान करने की दृष्टि से दिया जाता है। रेखाएँ भावों के मूर्तता प्रदान करने को साधन होता है। गोपल कृष्ण कोल ने लिखा है-'तभी तो टेढ़ी-मेढ रखाओं' से बने स्केंच चित्रकार के जीवन के प्रति आने वाली सजीवन अनुभूति की साकार अभिव्यक्ति करते है। रेखाचित्र में दूसरा शब्द चित्र है। चित्र शब्द के माध्यम से किसी पदार्थ की आकृति का बोध होता है जो रंग और तूलिका के माध्यम से भित्ति, कागज अथवा काष्ठ पर उतारा जाता है। रेखा और चित्र दो शब्दों से मिलकर रखाचित्र शब्द किसी जीव पदार्थ या वस्तु से खीचें हुए आकार को बाधा करता है जिसका संम्बंध काला से है किन्तु रेखा और चित्र दो शब्दों से मिलकर रेखाचित्र शब्द किसी जीव से खींचे हुए आकार का बोध कराता है जिसका सम्बन्धण कला से है किन्तु रेखा का वेसा चित्र नही है जैसा कि शब्द करता है जिसका सम्बन्ध कला से हैं नितु रेखाचित्र रेखओं के वेसा चित्र नहीं है जैसा कि हम ड्राइंग में देखते हैं। शब्द इस संकेत के माध्यम हे। रेखाचित्र में प्रयुक्त अक्षर और शब्द ही वे रखएँ होती हैं जो भवधिक्य के परिणमस्वरूप सूक्षम रूप से चित्र का अकास ग्रहण कर लेती हैं। डॉ नगेन्द्र ने रेखाचित्र के विश्य में बताया है कि यह ऐसा रचना है जिसमें रेखएँ हों पर मूर्त रूप अर्थात् उतार' चढ़ाव दूसरे शब्दों में, कथानक का उतार-चढ़ाव न हो तथ्यों का उद्धाटन मात्र हो।

डॉ. भगीरथ मिश्रा नरे रेखचित्र के लिए शब्द चित्र का प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है- अपने सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवदना को जागना वाली समान्य विशेषताओं से युक्त

नोट्स

किसी प्रतिनिधि चरित्र में मर्मस्पशी स्वरूप को देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठिभूमि में इस प्रकार उभर कर रखना कि उसके हमारे हृदय में एक निश्चित प्रवाह अंति हो जाए रेखाचित्र या शब्द चित्र कहलाता है।

रेखाचित्र और संस्मकरण: किसी महान व्यक्ति की पत्रित स्मृति को संवदनापूर्ण चित्र संस्मरण कहलाता है। साहित्य की यह विधा रेखाचित्र के अत्यधिक निकट है। संस्मकरण के माध्यम से हम किसी महान व्यक्ति का उज्जवल चित्र के अत्यधिक निकट है। संस्मकरण के माध्यम से किसी माहान व्यक्ति उज्जवल चित्र प्रस्तुत करते है। कभी-कभी वह चित्र संस्मरणात्मक रेखा चित्र जैसा हो जाता है। स्मृति की रेखाओं में महादेवी जी ने अपने सम्पर्क में आए लोगों के संस्मकरण का ही कुछ इस ढंग से प्रस्तु किय है कि वे रेखाचित्र बन गए है।

उन्होंने लिखा है- समय-समय पर जिन व्यक्यिों को सम्र्क ने मेरे चिन्तन को दियाय और संबेदन की गति दीह है, उनके संस्मरणों के श्रेय जिन्हें लिना चाहिए, उसके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकती। कहानी एक युग पुरान पर करूण से भीगी हैं। उन्होनें आगे लिखा है -यदि इन अधूरी रेखओं और धुँधुले रंगों की समष्टि में किसी को अपनी छाया की रेखा भी मिल सके तो यह सफल है अथवा अपनी स्मृति की सुरक्षित समी से उसके बाहर लाकर मैंने उपन्यास ही किया। डॉ. शैलेन्द्र मोहन न स्वीकार किया है कि संस्मकरण और रेखाचित्र में किस प्रकार का विरोध नहीं हैं, कोई मौलिक अन्तर भी नहीं है। वास्तव में इनकी जाति एक ही है या किहए कि संस्मरण रेखाचित्र का एक प्राकर मात्र है जिसमें एक व्यक्ति का चित्र होता है और वह व्यक्ति प्रात: वास्तविक होता है काल्पनिक नहीं।

1.5 आधुनिक काल में हिन्दी गद्य के उदय तथा विकास

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य साहित्य मिलता है तो पर वह नगण्य है। संस्कृत में गद्य का उत्कृष्ट रूप मिलता है और इसके अनेक रूप भी जैसे-नाटक, कथा, आख्यायिका आदि। हिन्दी के प्रारंभिक दौर पर गद्य का विकास न होने का करण इस ओर रूचि न होना मानता चहिए। वस्तुत: हिन्दी से पहले संस्कृति में ही गद्य परंपरा लुप्त हो गई थी। संस्कृति की गद्य परंपरा हिन्दी में क्योंकि विकसित नहीं हुई है। इसका कारण यह कहा जा सकता है कि कि मध्ययुग में बौद्धिकता एवं तार्किकता के स्थान पर भावुकता तथा अंविशस की प्रतिष्ठा हुई है परिणामत: साहित्यकारों का ध्यान गद्य की ओर न जाकर पद्य की ओर गया। बाद में सामाजिक एवं बौद्धिक आंदोलनों के कारण जैसे-जैसे बौद्धिकता, ज्ञान एवं चिंतन प्रतिष्ठित हुआ गद्य साहित्य का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद हिन्दी गद्य में इतनी उन्नती हुई है कि अनके आलोचनों ने आधुनिक काल के गद्य की संज्ञा दी।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य प्रात: अविकसित तो रहा, पर ऐसा भी नहीं है कि गद्य इससे पूर्व लिखा ही न गया हो। पूर्ववर्ती गद्य को भाषा की दृष्टि से मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया गया है:

1. राजस्थानी गद्य
2. मैथली गद्य
3. खड़ी बोली का गद्य

राजस्थानी गद्यः राजस्थानी की प्राचीनतम उपलब्ध गद्य रचनाएँ तेरहवीं शताब्दी की हैं जिसमें आराध ना, अतिचार, बाल शिक्षा, संग्राम सिंह रचिता उल्लेखनीय है। चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी में रचित अनके राजस्थान गद्य रचनाएँ हैं इनमें तत्व विचार तथा धनपाल कथा उल्लेखनीय है। 'धनपाल कथा' में तिलक मंजरी तत्त्व विचार तथा 'धनपाल' के जीवन की एक कथा है। पन्द्रहवी शताब्दी की एक रचना 'पृथ्व चन्द्रचरित्र' है इसी का दूसरा नाम वाग्विलास है। इसकी रचना माणिक्य चंन्द्रसूरि ने 1421 मे की थी राजस्थान गद्य साहित्य की सुदृढ़ परंपरा है। ये तीन रूपों में मिलती है। वचिनका, ख्यात और बतों राजस्थान का अधिकांश गद्य साहित्य जैन मंदिरों या राजपूत नरेशों के आश्रय में रचित है। विषय वस्तु की दृष्टि से यह काफी व्यापक है।

राजस्थान गद्य के समाने मैथिली भाषा में भी गद्य की परंपरा है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ के ज्योतिरीश्वर कृत वर्ण रत्नाकर है। जिसका रचनाकाल 1324 ई. है। इस गद्य परंपरा को विद्यापति ठाकुर ने 'कीर्तिलता' तथा 'कीर्ति' पताका रचकर बढ़ाया।

मौलिक ग्रंथ इस वर्ग की सबसे पुरानी रचना गोरखनाथ रचित 'गोरख सार' है पर आज इसे अप्रामाणि ाक मान लिया गया है ब्रजभाषा के गद्य में सर्वधिक योग पुष्टि संप्रदाय के भक्त लेखकों का है। इस गद्य के विकास में गोस्वामी विट्ठलनाथ, चतुर्थजदास, गोकमुलनाथ, गोस्वमी हरिराय, गोविंददास, ब्रेजभूषा और द्वारिकेश को नाम लिया जा रहा है। बल्लभ संपद्राय के अनुयायियों ने सौ से अधिक गद्य रचनाएँ प्रस्तुत की है। इनमें सबसे अधिक प्रचलित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा दो सौ वैष्णवन की वार्ता है। ये दोने गोकुलनाथा द्वारा रचित बताई जाती है पर दोनों की भाषा-शैली में पर्यापत अंतर है। बल्लभ सद्रदाय के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के कुछ भक्तों ने भी गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएँ की। इनमें नाभादास, ललित किशोरी संप्रदायों और ललित वेनि के नाम उल्लेखनीय है। कुछ लेखकों के काव्यशास्त्र, छेंद शास्त्र, विषयों पर विचार रने के उदेश्य से भी ब्रजभाषा में गद्यात्मक रचनएँ प्रस्तुत की है। इमें बनारसी दास, सुख देवसिं तथा बनी कवि का नाम लिखा जा सकता है?। बनारसीदास का 'बनासी दास, सुखदेवसिंह तथा बेनी कवि का 'टिकैतराम', प्रकाश,' प्रियादास के 'सेवक चरित्र' लाल्लूलाल का राजनीति राजनिती और मोधे विलास 'प्रसिद्ध है' टीका साहित्य के रूप में ब्रजभाषा में सैकड़ों रचनाए मिलती है इमें गोपीश्वर की 'शिक्षा ग्रंथ की टीका प्रेमदास की सहित चौरासी की टीका', 'भुवन दीपिका', 'भुवन दीपिका' रहस्य स्टीक, 'कुलपति' मिश्र आदि हैं। अनूदित ग्रंथ भी ब्रजभाषा गद्य में मिलते है। जैसे--नासकेतु पुराण; नंददास 1700 ई. में मार्कण्डेय पुराण दामोदादस, भाषा उललेखनीय है।

जीवनी और आत्मकथा

जीवनी भी आधुनिक गद्य की विधा है। वस्तुतः जीवनी किस रूप से हारमे पररंपरकि साहित्य में भी वर्तमान रही है। तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखा। उसमें मार्यदा पुरूपात्तम राम के जीवन की घटनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति है। परन्तु रामचरितमानस जीवनी नहीं है चरित्र काव्य है। उसमे लौकिक और अतिलोकिक कल्पना के द्वार जीवन के उदात्त पक्षो को अतिशयोक्तिपूर्ण वर्ण किया गया है। उसमें तथ्यों की वास्तकिता को जीवन सूत्र के रूप में उपसिंति नहीं किया गया है। जीवनी लेखक की कल्पना को

नोट्स

मनमानी छूट नहीं होती हे। पात्र के जीवन की वास्तकि जानकारी के आधार पर ही लेखक कल्पना द्व ारा एक चित्र उकेर सकात है जीवनी लेखक के इतिहास के घटनाक्रम की प्रामणिक जानकरी के आधा पर ही उसे विवेचन करना होता है। जीवनी की रचना के लिए निष्पक्षता की जरूरता होती है जीवनी में लेखक को उन मानवी कमजोरियों को भी उभारना होता है जो पात्र के जीवन में है। जीवन में है। जीवन के घटनाक्रम को व्यवस्थित रूप में भी प्रस्तुत करना होता है। ताकि उसमें क्रम बना रहे वस्तुत: जीवनी लेखक का कार्य उत्यन्त कठिन है। जीवनी लेखक जहाँ कठिन है वहीं उसके लेखक में सतर्क दृष्टि पर भी परम आवश्यक है। जीवनी गद्य साहित्य का वह रूप है जिसकी पहइचान छोटी है और उसके स्वरूप की यह निजता उसे गद्य की अन्य विधाओं से अलग करती है। जीवनों किसी व्यक्ति के जीवन का प्रभावपूर्ण और क्रमवद्ध किन्तु धारावाहिक रूप में किया गया वर्णन है। देशकाला और परिस्थितियों का अंलक भी चरित, उसकी सफलताओं और असफलताओं का मनों विश्लेपा भी अपेक्षित है। जीवनी लेखक प्रात: स्वयं मंच पर नहीं आता है वरन् वह अपने सदैव नेपथ्य रखकर ही लेखन करता है।

हिन्दी में जीवनी साहित्य की अपेक्षित भरतेन्दु के समय से ही लिखे जाने लगे थे। भारतेन्द काल रचित जीवनियों में जीवनी साहित्य की अपेक्षित तटस्थता और कलात्मकता नहीं मिलती है। उन पर आख्यान का गहरा प्रभाव मिलता है इसलिए उस युग की अधिकतर जीवनी ऐतिहासकि व्यक्तियों के केन्द्र में रखकर लिखी गई स्वयं भारतेन्दु ने कालिदासा, रामानुज, जयदवे, दर्पण और 'चरितावली' में संकलित है। कार्तिक प्रसाद खत्री में अहिल्याबाई, छात्रपति शिवाजी और मीराबाई के जीवन चरित लिखे। राधाकृष्णदास ने श्री नागरीदास जी के जीवन चरित की रचना की। परिमाण की दृष्टि से देखा जाए तो भारतेन्दु युग में अत्यधिक जीवनी साहित्य मिलता है। परन्तु वास्तविक अर्थ में वे जीवनी न होर आख्यान हैं।

द्विवेदी युग में शिवनंदन साहाय कृत हिरश्चंद्र का जीवन चरित, गोस्वीमी तुलसीदास को जीवन चरित ओर चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित उल्लेखनीय कृतियों उल्लेखनीय कृतियों हैं। परन्तु इन कृतियों मे तटस्थता और निष्पक्षता का अभाव मिलता है। जीवनी कि लिए तथ्यों क जितने प्रमाण की आवश्यकता होती है। उसका भी अभाव झलकता है। द्विवेदी युग में आर्य समाज प्रवत्तर्क दयानंद तथा अन्य महापुरूषों से संबंधित जीवनी साहित्य लिखा गया। अलिलानंदा शर्मा ने दयानंद सरस्वतीक के जीवन के विविध पहलुओं के उभरने के प्रयतन किया। लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय आदि की जीवनी भी लिखी गई। विदेशी महापुरूषों में नेपोलियन बोनापार्ट की सर्वाधिक जीवनी लिखी गई। गौरीशंकर ओझा ने कर्नल टॉक की जीवनी लिखी। ऐतिहासिक नारियों में नूरजहाँ, रानी दुर्गावती आदि के जीवनियाँ लिखी गई। द्वि वेदी युग में ऐतिहासिक पात्रों की जीवनी की ओर लेखकों का रूणन अधिक था ऐतिहासिक पात्र को अपनी कल्पना के अनुसार रच देना द्विवेदी युग के जीवन साहित्य की सीमा है।

सचेतन कहानी

सन् 1950 के आस-पास 'नई कहानी' नई मूल्यों, नए जीवन-बोध, नए शिल्प और नए अनुभव-संसार को प्रामाणिक अभिव्यक्ति करने को जा संकल्प लेकर चली, वह सन् 1960 तक आत-आते पुराना पड़ गया और यह कहानी भी अपनी रूढ़ियों में फँसकर एक प्रकार निस्तेज हो गई। इसका एक कारण यह भी था

कि 'नई कहानी' स्वतंत्रता-प्राप्त के जिस नए वातावरण में नई चुनौतियों के बीच पनपी थी, वे समाप्त हो गई और देश तथा समाज अपनी असफलताओं, कमियों, और असमर्थताओं का बुरी तरह शिकर हो गया। चकनाचर हो गए। पंचवर्षीय योजनाओं और पंचशील सिद्धान्तों को अपेक्षित फल नहीं मिला। एक प्रकार से जनता को ऐतिहासकि मोहभंग की पीड़ झेलनी पड़ी। राजनितिक उठा-पटक दलबन्दी, नए-नए दलों का निर्माण, दलों टुटना-बिखरना, राजनीतिक आदर्शों-मर्यादाओं के छिन-भिन्न होना आदि जो राजनीतिक परिदृश्य समाने आय, उसने साहित्य-जगत को भी प्रभावित किया। साहित्यकारों में भी आनन-फानन में चर्चित-प्रतिष्ठत हो जाने और उसके लिए अपना एक नया शिविर बना लेने या तोड-फोड करके नया साहित्यि दल गठित कर लेने की प्रवृत्ति बदलवती हो उठी। इस सबके चलते सातवें दशक में हिन्दी कहानी में दो-तीन वर्षों के अंतराल पर और कभी-कभी समानान्तर छोटे-मोटे कहानी आन्दोलन शुरू हुए।

सचेतन कहानी: सचेतन कहानी को गति देने वाले कथाकारों में महीप सिंह के अलाव मनहर चौहान, कुलदीप बग्गा, नरेन्द्र को हली, बेरही, श्रवण कुमार, योगेश गुप्त, हेतु भारद्वाज, राम दरश मिश्र, जगदीश चतुर्वोदी के नाम उल्लेखनीय हैं। महीप सिंह की 'उजाले के उल्लू', 'स्वराघात', जगदीश चतुर्वे की अधखिले गुलाब, 'मनहर चौहान' की बीस सुबहो के बाद और सुरेन्द्र अरोड़ की 'बर्फ' जैसे कहानियाँ 'सचेतन कहीनी' सचेतन कहानी' का स्वरूप स्पष्ट करती है। आस्था और संघर्ष का भाव संचारित करने पर बल दिया दिया और प्रतिगामी मानोदशाओं को निषेध किया। उल्लेखनीय यह है कि 'सचेतन कहानी' का आन्दोलन 'आधार' और 'संचेतना' पत्रिका के माध्यम से चर्चित हुआ और इन्हीं में प्रकाशित कुछ लेखकों की कहानियों तक ही सीमित रहा गया।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी के सर्जनातमक साहित्य में जिस तरह को परिवर्तन उपस्थित हुआ, उसके मूल्यांक के लिए मान-मूल्यों की भी आवश्यकता पड़ी। इसके फलस्वरूप स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-आलोचना का अनेकायामी विकास हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद पहले से चली आती हुई मार्क्सवादी आलोचना का अधिक विकास हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद पहले से चली आती है मार्क्सवादी आलोचना का अधिक विकास हुआ। रामविलास शर्मा का अधिकांश अलोचना-साहित्य स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही प्रकाशित हुआ। उन्होंने आलोचना प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ला, उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की क्रान्तिकारी कवि निराला की विस्तृत समीक्षा लिखकर जहाँ अपने मार्क्सवादी एवं प्रगतिवादी आलोचना-कर्म का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया, वही मार्क्सवादी आलोचना को हिन्दी आलोचना के केन्द्र में भी प्रतिष्ठि कर दिय। 'आचर्या रामचन्द्र शुक्ला और हिन्दी आलोचना', 'प्रेमचंनद और उसका युग?', 'तथा' 'निराला की साहित्य-साध ान' उनकी वे श्रेष्ठ आलोचना-पुस्कें हैं जिसमें उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से साहित्य की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। इस तरह रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी आलोचना की निरी विचार धारात्मकता को कलात्मक विश्लेषण से जोड़कर उसे पूर्णता प्रदान करने की सार्थक कोशिशि की और रचना के वस्तु और रूप में समान महत्त्व प्रदान किया है?

रामविलास शर्मा के साथ स्वातंत्र्योत्तर काल की प्रगतिशील हिन्दी आलोचना या मार्क्सवादी हिन्दी

नोट्स

आलोचना को सशक्त बनाने वालों में गजानन माधव मुक्तिबोध, नामवर सिंह, रांगेय राघव विश्मम्भरनाथ उपाध्याय, शिवकुमार मिश्र के नाम उल्लेखनी है। 'नए साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र' जैसे ग्रन्थों से हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना को एक ऐसी ऊँचाई प्रदान की है जैसो ग्रन्थों से हिन्दी की मार्क्सवादी अलोचना को एक ऐसी ऊँचाई प्रदान को है जिसके छू पाना परवर्ती आलोचना के लिए मुश्किल हो रहा है। उन्होंने कामयानीवादियों की गलत फहमियों रेखांकित किया और अपरनी आलोचना द्वारा उन्हें दूर करने का कार्य भी किया।

मुक्तिबोध ने अपना आलोचना-कर्म व्यवहरिक आलोचना से अवश्य शरू किया, किन्तु उत्तरोत्तक वे काल-कृति की रचना-प्रक्रिया और शिल्प-संरचना के विवेचन और विश्लेषण मे तल्लीन होते गए हौ और एक साहित्यि की डायरी 'एवं 'नए साहित्य को सौन्दर्यशास्त्र' जैसी पुस्तक की रचना करके मार्क्सवादी जीव-दृष्टि और कला-सिद्धान्तों की ऐसी रूप रेखा प्रस्तुत कर दी जो फिलहाल हिन्दी आलोचना में एक मानक बनी हुए है। मुक्तिबोध के साथ ही नामवर सिंह ने भी हिन्दी के मार्क्सवादी समीक्षा के काफी सुदृढ़ किया परम्परा की खोज और वाद-विवाह संवाह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन पुस्तकों के आधार पर नामवर सिंह की मार्क्सवादी आलोचना-दुष्टि और उनकी व्यवहरिक समीक्षा का अच्छा परिचय प्राप्त किया जा सकाता है।

वे रसवादी समीक्षक डॉ. नगेन्द्र, मार्क्सवादी समीक्षक रामविलास शर्मा और कलावाादी समीक्ष आशेक वाजपेयी से बराबर भिड़ते रहे है और इस भिड़न्त से ही उन्हेनें अपनी आलोचना में हव धारा पैदा की है जिसका उल्लेख लोग कभी-कभी 'नामवरी तेवर' के रूप में करते है।

द्विवेदी-युगीन आलोचना

हिन्दी भाषा और साहित्य के विकस एवं परिष्कार के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जो कार्य लिया, वह हिन्दी साहित्य में अद्धितीय है। उनके युग में हिन्दी साहित्य को श्रीवृद्वि तो हुई ही, साहित्यालोचना के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य हआ। इस युग में यद्यपि हिन्दी आलोचना का गंभीर एंव तात्विक रूप से नहीं निखरा किन्तु अनेक महत्त्वपूर्ण आलोचना पद्वतियों अवश्य विकसित हुई जैसे-शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक मूल्यांक एवं निर्णय, परिचयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना, अन्वेषण तथा अनुसंधानपरक समीक्षा आदि।

रीतिकालीन लक्षण-ग्रथों की परम्परा का पालन करते हुए अनेकों विद्वानों ने इस युग में काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना करके शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक समीक्षा को परिपुष्ट किया। राजा मुरारीदान कृत "जसवंत भूषण" महाराजा प्रतापनारायण सिंह कृति "ररसकुसुमाकर' जगन्नाथ भानु कृति "काव्यप्रभाकर, लाला भागवनदी कृत", "अलंकरमंजूषा", "सीताराम शास्त्री कृत, "साहित्य सिद्धांत", "आयोध्यया कृत", "रसकलश" आदि इस युग के वे सैद्धांतिक ग्रंथा है जिनसे हिन्दी की शास्त्र आलोचना का विकस हुआ है। इन ग्रंथों में रीतिकालीन लाक्षण-ग्रथें की परम्परा को तो निर्वाह हुआ ही है। अंग्रेजी, फरसी, उर्दू आदि भाषा साहित्यों के संपर्क और युगनी प्रभवो के पुलस्वरूप कतिपय नई बातों को भी समावेशह हुआ है। प्रचीनी सिद्धांतो के परिपोषण और विवेचन के साथ ही इस युग के नवी सिद्धांतों के प्रतिपादन का भी कार्या हुआ है। इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पुन्नलाल बख्शी, अचार्य रामचन्द्र शुक्ला,

नोट्स

बबू श्यामसुन्दर दास और गुलाब राय के नाम उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी ने "रसारंजन" में विषय के अनुकूल छंद योजना, सरल भाषा के प्रयोग, अर्थ-सौरस्य, मनोरंजन के स्थान पर युगबोध, नैतिक, मार्यदा, देश-प्रेम आदि से संबंधित उच्च भावों की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया और रीतिकालीन कविता की अतिशृगारिकता तथा विलासित की प्रवृत्ति की कड़ी ही आलोचना करते हुआ कहा कि इसक न तो देश और समाज के कल्याण हो सकाता है, न उसके सर्जक का ही। उन्होंने अपनी "कवि कर्त्तवय" नमक निबंध पर विस्तार के साथ कवि के नए कर्त्तव्यों को बोध कराते हुए काव्य-विषय, काव्य-भाषा, शौली उदेश्य आदि को जा विवेचन किया है, उससे पता चलता है कि द्विवेदी जी नवीनता के पोषण थे और नई परिस्थितियों में साहित्य साधना को नए दालियत्वों से जोड़ना चाहते थे। उन्होंने "सरस्वती पत्रिका के माध्यम से इस कार्य के सम्पनन किया और हिन्दी भाषा, साहित्य और आलोचना को नई दिशा प्रदान की।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास: स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास परम्परा में तीन पीढ़ियों की सर्जनात्मकता का योगदान है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश के राजनीतिक-सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन उपस्थित हुआ। स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान जिस व्यापक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का अभ्युदय हुआ था, वह धीरे-धीरे हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की गिरफ्त में आती गई और अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' की नीति सफल होती गई इसी के परिणामस्वरूप सन् 1947 ई. में अखंड भारत के दो खंड हो गए-हिन्दुस्तान और पाकिस्तान। भारत विभाजन के बाद देश में साम्प्रदायिक दंगे हुए। आजाद भारत के निर्माण और विकास के लिए प्रयत्न हुए। तरह-तरह की योजनाएँ बनीं। उद्योग-धंधों, कार्यालयों और अन्य कर्मक्षेत्रों का विस्तार हुआ। इस परिदृश्य से सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उथल-पुथल हुई, परिवर्तन, विघटन और निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई। इसके अलावा आजादी के भी जो मीठे-कड़वे अनुभव हासिल हुए, उन सबको केन्द्र में रखकर स्वातंत्रयोत्तर काल के उपन्यासकारों ने महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की। यशपाल का 'झूठा-सच' स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के यथार्थ को चित्रित करने वाला महाकाव्यात्मक उपन्यास है। यह उपन्यास दो खंडों में लिखा गया है। पहला खंड है – 'वतन और देश' और दूसरा है – 'देश का भविष्य'। ये दोनों शीर्षक काफी व्यंजनापूर्ण हैं और आजादी के पूर्व और आजादी के बाद के भारत की संघर्ष कथा को बड़ी सजीवता के साथ रूपायित करते हैं। इसमें 1942 से 1952 ई. तक के भारत के राजनीतिक-सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

स्वतंत्रता-प्राप्त के बाद भी पिछली पीढ़ी के व्यक्तिवादी, समाजवादी, मनौवैज्ञानिक और ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करने वाले उपन्यासकार सक्रिय रहे हैं। सामाजिक एवं मानवतावादी उपन्यासकार अमृतलाल नागर के अनेक महत्त्वपूर्ण उपन्यास स्वतंत्रता के बाद वाले दौर में प्रकाशित हुए। 'बूँद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर', 'शतरंज के मोहरे', 'अमृत और विष', 'बिखरे तिनके', 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'मानव के हंस', 'खंजन नयन' और 'करवट' जैसे उपन्यासों से अमृतलाल नागर को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में विशेष प्रतिष्ठा मिली। 'बूँद और समुद्र' में उन्होंने व्यक्ति और समाज के संबंध को बूँद और समुद्र के संबंध के रूप में चित्रित किया और व्यक्ति की सामाजिक चेतना को प्रमुखता प्रदान की। 'अमृत और विष' में उन्होंने अंग्रेजी शासन के आरंभ से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत की जीवन स्थितियों का

नोट्स

सजीव चित्रण किया है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' मेहतर समाज के इतिहास, उनके रीति-रिवाज, देशभूषा, बोली-बानी तथा नित्य के दुःख-दर्द का मार्मिक दस्तावेज तो है ही, सवर्णों के अत्याचार और वर्ण व्यवस्था की खामियों और बुराइयों का भी उद्‌घाटक है।

द्रविड़ भाषा

द्रविड़ भाषाओं को भाषा वैज्ञानिकों ने चार भागों में विभाजित कया है:

1. द्रविड़ वर्ग
2. आन्ध्र वर्ग
3. मध्यवर्ती वर्ग
4. बहिरंग वर्ग अर्थात् ब्रहुई बोली

1. द्रविड़ वर्ग: द्रविड़ वर्ग के अन्तर्गत तमिल, मलयालम, कन्नड़ और कन्नड़ की बोलियाँ, तेलु और कोड़गु से सभी हैं। तेलुगु अथवा आन्ध्र भाषा अकेली ही एक वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।
2. आन्ध्र वर्ग के अन्तर्गत आन्ध्र अथवा तेलुगु भाषा आती है। इसकी अनेक बोलियाँ भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। तेलुगु भाषा का विस्तार और प्रसार इतना अधिक है कि यह दक्षिण-पूर्व के पूरे क्षेत्र में बोली जाती है। इसकी कोई विभाषा नहीं है। इसी भाषा को जब कुछ जातियाँ या व्यापारी बोलते हैं तो इसमें कुछ विकार अवश्य आ जाता है लेकिन भाषा का अस्तित्व नहीं बिगड़ता है। तेलुगु के प्रयोग को देखने से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि यह दक्षिण में तमिल से अधिक लोकप्रिय है। इसका प्रसार-प्रचार इतना अधिक है कि इसके बोलने वाले न केवल दक्षिण में ही हैं अपितु उत्तर ने चांदा तक, पूर्व में बंगाल की खाड़ी के किनारे चिकाकोल से लेकर पश्चिम मे निजाम के आधे राज्य तक देखा जा सकता है।
3. मध्यवर्ती वर्ग: मध्यवर्ती वर्ग के अन्तर्गत द्रविड़ भाषाओं का परिक्षेत्र बहुत विस्तृत है। द्रविड़ भाषा की बोलियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध बोली गोंडी बोली है। इसकी समानता अपने पास की तेलुगु भाषा की अपेक्षा द्रविड़ वर्ग की भाषाओं से अधिक है। उसके बोलने वाले गोंड लोग आन्ध्र, उड़ीसा, बरार, चेदिकोशल अर्थात् बुंदेलखंड और छत्तीसगढ़ हैं। इसके साथ ही मालवा का सीमान्त क्षेत्र भी है।
4. बहिरंग वर्ग अर्थात् ब्रहुई बोली: सुदूरक कलात में ब्रहुई लोगों का एक वर्ग द्रविड़ बोली का प्रयोग करता है। इस वर्ग में से कुछ और लोग ऐसे हैं जिन्होंने बलूची और सिंधी बोलियों को अपना लिया है जहाँ के सभी स्त्री-पुरुष लगभग दुभाषिए का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी तो स्त्रियाँ सिंधी बोलती हैं तो उनके पति ब्रहुई बोला करते हैं। यहाँ किस प्रकार से अन्य वर्गीय भाषाओं में एक द्रविड़ भाषा ही प्रचलन में बनी रही, इसे सोचकर भाषा वैज्ञानिक चकित हैं।

हिन्दी भाषा क्षेत्र और उसकी बोलियाँ

भारतवर्ष के प्रमुख भाषा परिवारों की भाषायी विशेषताएँ समझ लेने के बआद एक प्रश्न उठता है क्या

ये सभी भाषाएँ अपने आप में अलग-अलग हैं या कहीं किसी व्याकरणिक पक्ष पर ये भाषाएँ एक-दूसरे की बहनें प्रतीत होती हैं? चिरकाल से चली आ रही द्विभाषिता एवं भाषा सम्पर्क ने आज यह स्थिति पैदा करा दी है कि भारतीय भाषाएँ भिन्न होने पर भी व्याकरणिक दृष्टि से काफी समान हैं। जब दो भाषाएँ पड़ोसी हो जाती हैं तो यह स्वाभाविक है कि उनमें हर प्रकार का आदान-प्रदान स्थापित हो जाता है। सैकड़ों वर्षों से चली आ रही भाषायी सम्पर्क स्थिति पहल कुछ समान शब्दावली को और फिर धीरे-धीरे समान भाषा की संरचना के नियमों को जन्म देती है।

एक समय ऐसा भी आता है कि दो भिन्न परिवार की भाषाएँ आपस में इतनी मिलने-जुलने लगी जितनी वे अपने ही परिवारकी अन्य भाषाओं से नहीं मिलती थी। भारत की भाषाओं में ठीक यही स्थिति उत्पन्न हो गई है। आज हिन्दी और तेलुगु में ज्यादा व्याकरणिक समानताएँ हैं अपेक्षाकृत हिन्दी एवं अंग्रेजी में 1959 में प्रो. एम. बी. एमेनो ने अपने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित लेख श्प्दकपंद द ' स्पदहनपेजपब इमंश में मसीका, पीटर हुक, अब्बी के अनुसार भारतीय कॉलिन भाषाएँ भिन्न-भिन्न परिवारों की एवं भिन्न-भिन्न भू-भागों में बोले जाने के बावजूद भी एक-दूसरे के इतनी समान हैं कि 'भारत की भाषा' जैसी इकाई में बाँधी जा सकती हैं।

भाषाई क्षेत्र अथवा 'Linguistic Area' की शब्दावली सर्वप्रथम प्रो. वाल्टेन ने 1943 में की थी। इससे पहले 1928 में सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक त्रुबेत्सकॉय ने चतंबीइनदक जैसे शब्द का प्रयोग किया था। भाषा-गुच्छ के स्थान पर जब भाषाई क्षेत्र ही अधिक प्रयोग में लाया जाता है और इसको प्रचलित करने का श्रेय जाता है एम.बी. एमेनो को जिन्होंने सर्वप्रथम 'भारत एक भाषाई क्षेत्र' जैसा महत्त्वपूर्ण लेख लिखा और कई-कई व्याकरणिक समानताओं का उल्लेख किया। उनके मतानुसार, 'भाषाई क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ विभिन्न भाषा परिवारों की भाषा के एक स्थान पर बोले जाने के कारण इनमें कुछ ऐसी व्याकरणगत विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती है जो इन भाषाओं के परिवार की अन्य भाषाओं में नहीं मिलतीं।'

भाषा सर्वे के आधार पर मुख्य आधुनिक आर्य भाषाओं का परिचय

भाषा सर्वे के आधार पर मुख्य आधुनिक आर्य भाषाओं का परिचय निम्नलिखित है:

1. सिंधी: सिंध प्रांत में सिंधु नदी के किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इस भाषा को बोलने वाले मुस्लिम लोगों की संख्या सर्वाधिक है इसीलिए इसमें फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। सिंधी भाषा फारसी लिपि का एक विकृत रूप है। सिंधी भाषा की पाँच मुख बोलियाँ हैं जिनमें 'विचोली', 'ब्राचड', 'कच्छी' प्रमुख हैं।
2. लहंदा: इसे पश्चिमी पंजाब की भाषा कहा जाता है जो इस समय पाकिस्तान में है।। लहंदा और पंजाबी आपस में इतनी सन्निकट हैं कि दोनों में भेद करना काफी कठिन कार्य है। हलंदा के अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्चा तथा हिंदकी आदि हैं। यह पंजाबी से बहु भिन्न हैं इसकी अपनी लिपि 'लंडा' है लेकिन आजकल यह फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह कश्मीर में प्रचलित शारदा लिपि की उपशाखा मानी जाती है।
3. कश्मीरी: कश्मीरी पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव प्राचीन काल से ही पड़ा है क्योंकि कश्मीर के सारस्वत ब्राह्मणों ने संस्कृत को अध्ययन-अध्यापन की भाषा बनाया है। पहले कश्मीर में

नोट्स

ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न शारदा लिपि प्रचलित थी किन्तु आज वहाँ फारसी लिपि का प्रचार है। संविधान की अष्टम सूची की अठारह स्वीकृत भाषाओं में कश्मीरी को स्थान मिला है।

4. पंजाबी: पंजाबी भाषा का हिन्दी के पश्चिम उत्तर भाग में है। यह पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब के पूर्वी भाग तथा पूर्वी पंजाब के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। पूर्वी पंजाब के पूर्वी भाग में हिन्दी का विस्तृत क्षेत्र है। पंजाबी पर दरद अथवा पिशाच भाषाओं का कुछ प्रभाव शेष हैं पंजाबी का शुद्ध रूप अमृतसर के आस-पास बोला जाता है। इसकी उत्पत्ति 'टक्क' अपभ्रंश से हुई है।
5. गुजराती: गुजराती भाषा गुजरात, बड़ौदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों में बोली जाती है। गुजराती पर गूजर जाति का अत्यधिक प्रभाव है। गुजराती में बोलियों का स्पष्ट भेद अधिक नहीं है। भाषावैज्ञानिकों के अनुसार इसकी उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से हुई है जिसके उदाहरण हमें 12वीं और 13वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक के जैन लेखकों की कृतियों में मिलते हैं। गुजराती साहित्य बहुत विस्तृत नहीं है लेकिन जो भी हमें मिलता है, वह काफी अच्छी अवस्था में है।

प्रारंभिक हिन्दी पर टिप्पणी

'प्रारंभिक हिन्दी' कौन-सी है और उसमें क्या-क्या रचनाएँ हैं, यह प्रश्न बड़ा जटिल है। किस रचना को हिन्दी की पहली रचना माना जाए? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, महापंडित राहुल साकृत्यायन आदि विद्वान तो अपभ्रंश को भी समाहित कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में पृथक नाम की कोई आवश्यकता ही नहीं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा मध्यदेश को वर्तमान 'हिन्दी प्रवेश' की संज्ञा देते हैं जिसका देश के इतिहास में असाधारण महत्त्व मानते हैं। मध्य देश के तेरह जनपद स्वीकार कर वहाँ बोली जाने वाली प्रधान बोलियों का सामूहिक रूप हिन्दी मानते हैं। उनके अनुसार सिद्धों और नाथों की रचनाएँ अपभ्रंश मिश्रित हैं। दक्षिण मध्य देश और गुजरात में जैन कवियों की प्राकृत और अपभ्रंश रचनाओं में भाषा का पुट दिखाई देने लगता है। बाद में हिन्दी की तीन कृतियाँ-बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, आल्हाखंड मानते हैं। प्रचीनतम रूप भी कदाचित इसी काल में प्रारंभ हो गया था किन्तु मौखिक परम्परा से अनेक शताब्दियों तक चलते रहने के कारण इन तीनों में बहुत परिवर्तन हुए।

भाषा से प्राचीनतम हिन्दी रूप को लिया जा सकता है।

डॉ. हरदेव बाहरी 'आरंभिक हिन्दी' के अंतर्गत एक नहीं तरह संभावनाएँ रखते हैं:

1. सिद्धों की वाणियाँ,
2. जैन कवि पुष्पदंत,
3. चंद्रायन, स्वयंभू कृत पउम चरिउ,
4. अवहट्ट में प्राप्त 'वर्ण रत्नाकर' तथा कीर्तिलता,
5. चंद्रायान,
6. नाथ जोगी, विशेषत: गोरखनाथ,

7. संत नामदेव, त्रिलोचन, कबीर का साहित्य,

8. दक्खिनी,

9. अमीर खुसरो की हिंदवी की रचनाएँ,

10. रोडा कृत राउलवेल,

11. राजस्थान के आस-पास कह हिन्दी

(क) अपभ्रंश मिश्रित पश्चिमी हिन्दी,

(ख) डिंगल,

(ग) मरुभाषा,

(घ) पिंगल भाषा,

12. प्राकृत पैंगलम और हेमचन्द्र के व्याकरण में इसके प्रारंभिक रूप के उदाहरण मिल सकते हैं।

उपर्युक्त में से कुछ की चर्चा अपभ्रंश में और कुछ ग्रंथों का विवेचन अवहट्ट में किया जा चुका है। क्रमांक 5 स्पष्टत: अवधी का पूर्व रूप है। क्रमांक 6, 7, 8, 9 की चर्चा विस्तार से आगे 'खड़ी बोली' में की जा रही है। आगे चलकर डॉ. बाहरी के अनुसार 'पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का मत सही जान पड़त है कि 11वीं शताब्दी की परवर्ती अपभ्रंश से पुरानी हिन्दी का उदय माना जा सकता है परन्तु कठिनाई यह है कि उस संक्रांति काल की सामग्री इतनी कम है कि उससे किसी भाषा के ध्वनिगत और व्याकरणिक लक्षणों की पूरी-पूरी जानकारी नहीं मिल सकती।

साहित्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा

उत्तर भारत की प्राय: साहित्यिक भाषाएँ 'मध्यप्रदेश' की बोलियों का परिष्कृत रूप रही हैं।

मध्यदेश मूलत: गंगा-यमुना के मध्य या प्रदेश अपनी महान सांस्कृतिक परंपरा के लिए सदैव स्मरणीय रहा है। मूल शैरसेनी का बोली रूप 'ब्रज' ही इन जनबोलियों में से एक नहीं। ग्यारहवीं शताब्दी में मध्यदेश की जनभाषा के रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ। एक ओर तीरता और शौर्य के भावों से परिपुष्ट होकर नई शक्ति का संचार हुआ दूसरी ओर मध्य युग के भक्ति आंदोलन के प्रमुख माध्यम के रूप में इसको सम्मान मिला जिससे इसका स्वरूप अखिल भारतीय हो गया। अपनी पूर्वज भाषाओं को धरोहर पूर्वज भाषाओं को धरोहर के रूप में प्राप्त कर इसके वैभव में वृद्धि हुई।

इस विशाल मध्यदेश में नौ महाजनपद थे। इसी के अंतर्गत मत्स्य, शूरसेन, कुरु तथा पांचाल इन चार महाजनपदों से बना भूभाग महत्त्वपूर्ण रहा है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार मनु के इस ब्रह्मर्षि देश का क्षेत्र वही है जो आज ब्रजभाषा का क्षेत्र है। ब्रजभाषा के क्षेत्र में आज यह भूभाग आता है:

1. उत्तर प्रदेश के अलीगढ़, मथुरा, आगरा, बुलंदशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली।
2. हरियाणा प्रदेश के गुड़गाँव जिले की पूर्वी पट्टी।
3. राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग।
4. मध्य प्रदेश में ग्वालियर का पश्चिमी भाग।

नोट्स

कन्नौजी वस्तुतः ब्रज का ही पूर्वी रूप है जबकि बुंदेली दक्षिणी रूप। इनको सम्मिलित कर लेने से यह क्षेत्र और अधिक विस्तृत हो जाता है।

राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन की दिशाएँ:

हिन्दी के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी प्रमुखता: गृह मंत्रालय पर है। गृह मंत्रालय में पहले राजभाषा के लिए अलग विभाग नहीं था बल्कि गृह मंत्रालय के साथ जुड़े हुए हिन्दी सलाकहार इस कार्य को देखते थे। सन् 1976 में राजभाषा विभाग की स्थापना की गई और इसका प्रमुख राजभाषा सचिव है। राजभाषा विभाग भारत सरकार में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन की वरूवस्था और देख-रेख करता है। हिन्दी के कार्यान्वयन की व्यवस्थ के संदर्भ में हम तीन प्रकार की समितियों का उल्लेख करेंगे जो विभिन्न स्तरों पर कार्यान्वयन की देख-रेख कर रही है:

1. केन्द्रीय हिन्दी समिति: यह राजभाषा के कार्यान्वयन के लिए सबसे बड़ा अभिकरण है, इसका गठन 1976 में किया गया था। भारत के प्रधानमंत्री इस समिति के अध्यक्ष हैं और प्रमुख मंत्रालयों में मंत्रियों तथा संसद सदस्यों के अतिरिक्त हिन्दी के कुछ वरिष्ठ विद्वान इसके सदस्य होते हैं यह समिति देश के हिन्दी के कार्यान्वयन के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करती है और नीति निर्धारण करती है।
2. हिन्दी सलाहकार समिति: प्रायः सभी मंत्रालयों में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन हेतु मंत्रलय स्तर की हिन्दी सलाकहार समितियों का गठन किया गया है। संबंधित मंत्री इस समिति के अध्यक्ष होते हैं। मंत्रालय के विभागों के अध्यक्ष तथा संबंधित निकायों, कर्यालयों के शासी प्रधान इसके सदस्य होते हैं, साथ ही कुछ संसद सदस्य और हिन्दी के विशिष्ट विद्वान इसके नामित सदस्य होते हैं। इस समिति का काम संबंधित संखालय में हिन्दी के कार्यान्वयन की प्रगति को देखना और विकास के उपाय सुझाना है।
3. राजभाषा कार्यान्वयन समिति: मंत्रालयों तथा इसके अधीन कार्य करने वाले कार्यालयों, स्वायत्त संस्थाओं तथा भरत सरकार द्वारा स्थापित उपक्रमों में हिन्दी के कार्यान्वयन के लिए राजभाषा कार्यान्वियन समितियों का गठन किया गया है। मंत्रालय की समिति का अध्यक्ष संयुक्त सचिव होता है, अन्य कार्यालयों में कोई घनिष्ठ अधिकारी मुख्य राजभाषा अधिकारी की हैसियत से इस कार्य को देखता है। हर कार्यालय में जो हिन्दी प्रकोष्ठ हैं, प्रायः मुख्य राजभाषा अधिकारी की देख-रेख में काम करता है।

देवनागरी लिपि के विकास

प्रारंभिक समय से ही ब्राह्मी लिपि संस्कृत भाषा के लेखन के लिए सदियों तक व्यवहार में आती रही है, बाद में देवनागरी लिपि का विकास हुआ। देवनागरी संस्कृत भाषा की प्रमुख लिपि बनी, भले अन्य लिपियों में भी संस्कृत का लेखन होता रहा।

तमिलनाडु में संस्कृत के लेखन के लिए तमिल और मलयालम के वर्णों के योग से 'ग्रंथ' लिपि का प्रचलन हुआ। देवनागरी नामकरण संबंधी प्रमुख मत निम्नलिखित हैं:

1. बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तार में उल्लेखित 64 लिपियों में से नागलिपि के आधार पर इसका नाम

पड़ा।

2. गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने सर्वप्रथम इसका उपयोग किया।
3. नगरों में विकास होने के कारण यह देवनागरी है।
4. देवनागरी काशी में प्रचार-प्रसार होने के बाद यह नाम पड़ा।
5. दक्षिण के विजयनगर राजाओं के दानपत्रों में इसे नंदि नागरी का नाम दिया गया है। इसी से देवनागरी नाम का विकास हुआ।
6. तांत्रिक उपासना पद्धति के देवनगरम नामक यंत्रों के बीच अंकित सांकेतिक हिन्हों से देवनागरी लिपि का विकास होने के कारण उसका नाम देवनागरी हुआ।
7. प्राचीन काल में देव रूप में सम्मानित राजाओं द्वारा प्रयोग किए जाने के कारण देवनागरी नाम पड़ा।
8. मध्ययुग की नागर स्थाप्य शैली से समानता के कारण यह नाम पड़ा।
9. इसमें देववाणी संस्कृत का लेखन होने के कारण देवनागरी नाम पड़ा।

दसवीं देववाणी संस्कृत से ही देवनागरी में लेखन के नमूने प्राप्त हो जात हैं। 18वीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दी में मुद्रण के विकास के साथ यह परिपक्वता में पहुँची। आज देवनागरी का उपयोग संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त मराठी और नेपाली में भी होता है। हिन्दी की समस्त बोलियाँ देवनागरी में ही लिखी जाती हैं और बोलियों की लिपियाँ समाप्त हो चुकी हैं। कश्मीरी और सिंधी भाषाएँ अरबी-फारसी लिपि में लिखी जाती हैं।**आधुनिक युग के काल विभाजन**

आधुनिक काल का आरंभ 1850 यानी उन्नीसवीं शती के मध्य स्वीकार किया गया है। अतः आधुनिक काल का प्रारंभिक बिन्दु सन् 1857 को मान लेना चाहिए। यह वह समय था जब यूरोपीय संस्कृति के प्रवेश ने भारतीय जीवन में उथल-पुथल आरंभ कर दी और अंग्रेजों की शक्ति के सम्मुख देशी राजा और नवाब टिक नहीं पाए। वे उनसे पराजित होते चले गये। सन् 1857 का विद्रोह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहलाया। यह विद्रोह ज्यादा व्यापक रूप नहीं ले पाया सिर्फ हिंदी भाषा क्षेत्र तक ही सिमटकर रह गया। यद्यपि यह क्षेत्र व्यापक था, पर प्रकृति और संरचना में भिन्न था। 1857 के विद्रोह को दबाने में अंग्रेजों ने छक्के छूट गए थे। इसी के बाद ही कंपनी राज्य का अंत हुआ था और तभी महारानी विक्टोरिया को घोषणा-पत्र जारी करना पड़ा। अतः आधुनिक काल का पारंभिक वर्ष इसे ही स्वीकार करना चाहिए।

नए चिंतन एवं भाषा का उदयः आधुनिक काल में पहली बार साहित्य मनुष्य के सुख-दुख के साथ जुड़ा। व्यक्ति में नवीन दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। मध्यकाल में व्यक्ति हो अपने परिवेश तक की सुध नहीं थी पर आधुनिक काल में मनुष्य अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सावधान हो गया। इस देश मं जिन दार्शनिक चिंतकों और धार्मिक व्याख्याताओं का आविर्भाव आधुनिक युग की पीठिका के रूप में हुआ, उनकी मूल चिंतनधारा इहलौकिक है। आधुनिक युग में ऐतिहासिक साहित्य की भाषा ही बदल गई-खड़ी बोली ने ब्रजभाषा की जगह ले ली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को दो भागों मं विभाजित किया है-गद्य एवं काव्य। ये दोनों खंड एक-दूसरे से भिन्न हैं। दोनों खंडों को दो-दो प्रकरणों में विभाजित किया गया है। गद्य के पहले प्रकरण

नोट्स

ब्रजभाषा, गद्य और खड़ी बोली गद्य के विकास की विवेचना की गई है और दूसरे प्रकरण में गद्य साहित्य के आविर्भाव के विषय में विवेचन किया गया है। इन्हें फिर तीन उत्थानों में विभाजित किया गया है। काव्य खंड में-पुरानी काव्यधारा और नई काव्यधारा दो प्रकरण हैं। नई धारा के तीन उत्थान हैं। शुक्लजी के गद्य और काव्य खंड एक-दूसरे से अलग हैं। एक प्रवृत्ति का दूसरी प्रवृत्ति से तालमेल नहीं है। गद्य खंड में एक प्रवृत्ति कार्य करती है काव्य खंड में दूसरी। जैसे काव्य खंड के दूसरे प्रकरण के तीसरे उत्थान में और गद्य खंड के दूसरे प्रकरण में एकरूपता नहीं निरूपित की जा सकती।

1.6 उर्दू साहित्य

इस्लाम धर्म के भारतीय उपमहाद्वीप में आगमन से उत्पन्न हुई नई सांस्कृतिक परिस्थितियों में पैदा हुई उर्दू भाषा का साहित्य बहु धनी है। सूफी-संतों के द्वारा आधात्मिक विषयों पर लखित रचनाओं से इस साहित्य का प्रारंभ हुआ। उर्दू साहित्य वर्तमान काल में अपनी भाषायी प्रवृत्ति विशेष के कारण सभी को प्रिय है। काव्य की विभिन्न विधाओं में गजल, मर्सिया, मसनवी, रूबाई, नज्म आदि को प्रमुखता प्राप्त रही है। गजल अपनी भाव-अभिव्यक्ति के काध्यम के कारण सदैव सबसे प्रिय विधा रही है। उर्दू अफसाना, उपन्यास तथा नाटक समाज के विभिन्न वर्गों की विषम समस्याओं का चित्रण करते रहे हैं। आधुनिक भारत में उर्दू साहित्य की रचना विभिन्न विचारधाराओं पर आधारित होती गई। इनमें प्रगतिवाद को प्राथमिकता प्राप्त हुई। इस संध के लेखक भी 1960 के बाद विभिन्न वर्गों में विभक्त हुए। जिनमें से कुछ पुरानी विचारध ारा के समर्थक थे तो कुछ स्वच्छंद प्रकृति के। मुक्त कविता का विकास भी स्वच्छंद प्रकृति के कविगण ों के माध्यम से हुआ। लेकिन भारतीय समाज में उर्दू कविता की एक विशेष छवि है बल्कि गैर-उर्दू भाषी भारतीयों में उर्दू का दूसरा नाम ही गज़ल है। मुक्त कविता का प्रभाव पुराने प्रतिविंबों को हटाने में असफल रहा है। क्योंकि बदलती हुई परिस्थितियों में उर्दू भाषी पाठकों की संख्या भी उर्दू लेखकों के लिए एक चिंताजनम विषय है। नए विचारों पर आधारित लिखे जा रहे उर्दू साहित्य का वर्तमान परिस्थितियों का विषय होगा इस पर टिप्पणी करना कठिन है।

परम्परा का परिचय देते हुए नाथ-साहित्य

नाथ पक्ष के साधकों ने अपने को योगी कहकर संबोधित किया है। योगी के विषय में एक कहावत है 'रमता जोगी बहुत पानी'। मतलब यह कि इनकी दिशा क्या होगी इसका कुछ भी ठिकाना नहीं है। नाथ पंथ के साहित्य के संबंध में इसी उक्ति को प्रस्तावित किया जा सकता है। नाथ पंथी साहित्य प्रामाणि कता की दृष्टि से संदिग्ध है। नाथ पंथ का उद्भव किस प्रकार से हुआ इस पर विद्वानों में मतभेद है। नाथ पंथ के संबंध में यहाँ इतना ही समझना चाहिए कि नथों का सिद्धों से गहरा संबंध था। सिद्धों की जा सूची मिलती है उसमें से कुछ का संबंध नाथ परंपरा से भी था। नाथ परंपरा में मत्स्येंद्र नाथ के गुरु जलंधर नाथ माने जाते हैं। तिब्बत में ग्रंथों से भी सिद्ध जलंधर आदि नाथ कहे गए हैं। आचार्य शुक्ल का विचार है कि जलंधर ने ही सिद्धों से अपनी परंपरा अलग की और पंजाब की ओर चले गए। जलंधर के शिष्य मछंदर या मत्स्येन्द्रनाथ थे और मछंदर के शिष्य गोरखनाथ या गोरक्षनाथ थे। गोरखनाथ संप्रदाय

के विशेष प्रवर्त्तक थे। गोरखनाथ अपने युग के महान धर्मनेता थे। इनकी संगठन की शक्ति अपूर्व थी। गोरखनाथ के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। राहुअ सांकृत्यायन इनका समय दसवीं शताब्दी बताते हैं, आचार्य शुक्ल इन्हें 12वीं शताब्दी का मानते हैं और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन्हें दसवीं शताब्दी का मानने के पक्षधर हैं। जिस प्रकार सिद्धों की संख्या चौरासी प्रसिद्ध है, उसी प्रकार नाथों की संख्या नौ बतायी जाती है। इन नौ नाथों में नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पट, जलंधर, मलयार्जुन का नाम गिनाया जाता है।

नाथ साहित्य: गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ है। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गयी वहाँ, दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परंपरागत रुढ़ियों पर भी आघात किया गया है। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्याख्या करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरख ने किया।

1.7 अजातशत्रु : कथासार

'अजातशत्रु' जयशंकर प्रसाद द्वारा 1922 में रचित ऐतिहासिक नाट्यकृति है। प्रस्तुत नाटक को तीन अंकों में विभाजित किया गया है। इसकी कथावस्तु तीन राज्यों के पात्रों से संबंधित है यथा- मगध, कोशल एवं कौशाम्बी। इन तीनों राज्यों से संबंधित पात्रों का नामोल्लेख इस प्रकार है-

मगध राज्य

बिंबसार	:	सम्राट
अजातशत्रु (कुणीक)	:	राजकुमार
पद्मावती	:	राजकुमारी
वासवी	:	बड़ी रानी
छलना (चेल्लना)	:	छोटी रानी, राजमाता
जीवक	:	राजवैद्य

कोशल राज्य

प्रसेनजित	:	सम्राट
विरुद्धक (शैलेन्द्र डाकू)	:	राजकुमार
बाजिरा	:	राजकुमारी
शक्तिमती (महामाया)	:	रानी (दासी पुत्री, शाक्यकुमारी)
बंधुल	:	सेनापति
मल्लिका	:	सेनापति बंधुल की पत्नी
सुदत्त	:	कोषाध्यक्ष
दीर्घकारायण	:	सेनापति बंधुल का भांजा

नोट्स

कोशम्बी राज्य

उदयन	:	सम्राट (मगध सम्राट का जमाता)
पद्मावती	:	मगध की राजकुमारी (सम्राट उदयन की रानी)
वासवदत्ता	:	उज्जयिनी की राजकुमारी (सम्राट उदयन की रानी)
मागंधी (श्यामा)	:	आम्रपाली (सम्राट उदयन की रानी)
वसंतक	:	सभा का विदूषक

प्रस्तुत नाटक के अन्य पात्र एवं उनसे संबंधित सूचनाएँ-

गौतम	:	बुद्धदेव
आनंद	:	गौतम का शिष्य
देवदत्त	:	भिक्षु (गौतम का प्रतिद्वंदी)
समुद्रदत्त	:	देवदत्त का शिष्य
मागंधी (श्यामा)	:	शैलेन्द्र पर आशक्त
समुद्रदत्त	:	मागंधी (श्यामा) पर आशक्त
बाजिरा	:	अजातशत्रु पर आशक्त एवं अन्ततः प्रणय सूत्र में बंधना

आलोच्य नाटक की कथावस्तु के तीनों अंकों का क्रमानुसार विवरण इस प्रकार है-

प्रथम अंक

प्रथम दृश्यः अजातशत्रु लुब्धक नामक शिकारी को डाँट रहा है क्योंकि वह राजकुमार के चित्रक के लिए एक मृगशावक को पकड़कर नहीं लाता। अजातशत्रु अपने सेवक समुद्रदत्त से लुब्धक की चमड़ी उधेड़ने के लिए कोड़ा मंगवाता है किन्तु दाह क्षण समुद्रदत्त की सौतेली बहन पद्मावती उसके कोड़े को पकड़ते हुए कहती है कि मैंने ही लुब्धक से मृगशावक लाने के लिए मना किया था। अजातशत्रु क्रोधित मुद्रा में अपनी बहन से कहता है कि तुम अनुचरों को मेरा अपमान करना सिखा रही हो। प्रत्युत्तर में पद्मावती कहती है कि मैं तुम्हें हिंसक कार्यों से बचाना चाहती हूँ। तभी अजातशत्रु की माँ छलना पदार्पण करते हुए पद्मावती से कहती है कि तुम अजातशत्रु को साधु-संतों का पाठ पढ़ाकर डरपोक बनाना चाहती हो। अपनी सौतेली माँ की कटूक्ति का उत्तर देते हुए पद्मावती कहती है-

> **"माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता**
> **है? ऐसा विष-वृक्ष लगाना क्या ठीक होगा? अभी कुणीक**
> **किशोर है, यही समय सुशिक्षा का है। बच्चों का हृदय**
> **कोमल थाला है, चाहे इसमें कंटीली झाड़ी लगा दो, चाहे**
> **फूलों के पौधे।"**

यह सब सुनकर छलना पद्मावती का बहुत अपमान करती है। पद्मावती की माँ वासवी प्रवेश करती है और अजातशत्रु से प्रेम, दुलार करती है लेकिन छलना उसका तिरस्कार करते हुए कहती है कि

मैं राजमाता हूँ, अतः कुणीक को शिक्षा देने का मुझे पूर्ण अधिकार है। वह कुणीक को वासवी के महल में जाने से भी मना कर सती है। माँ-बेटी से यह अपमान सहन नहीं होता और वे वहाँ से चल पड़ती हैं लेकिन जाते-जाते छलना को सावधान करते हुए कह जाती है कि- "यह असत्-गर्व मानव समाज का बड़ा भारी शत्रु है।"

द्वितीय दृश्यः महाराज बिंबसार अकेले बैठे हुए मानव जीवन की क्षणभंगुरता के विषय में विचार कर रहे हैं। उसी क्षण छलना प्रवेश करते हुए क्रोधमय वाणी में अपने प्रति बिंबसार से कहती है कि बड़ी रानी ने मेरा अपमान किया है और साथ ही वह कुणीक का भी बुरा ही चाहती है। बिंबसार कहता है कि वासवी पर तुम्हारा यह आरोप अन्यायपूर्ण है। पद्मावती भी तुम्हारे वैर-विरोध के कारण ही चली गई है, अतः अब तुम इस उत्पात को समाप्त कर दो। छलना कहती है कि- "मैं उत्पाद रोकना चाहती हूँ। आपको कुणीक के युवराज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़ेगी।" तभी वासवी प्रवेश करती है और छलना के आग्रह का समर्थन भी करती है। गौतम का प्रवेश होते ही छलना गौतम से जाने की अनुमति मांगती है, किन्तु गौतम कहते हैं कि तुम्हारे पति और देश के सम्राट के होते हुए मैं आज्ञा कैसे दे सकता हूँ। बिंबसार छलना को जाने की आज्ञा देते हुए मैं आज्ञा कैसे दे सकता हूँ। बिंबसार छलना को जाने की आज्ञा देते हुए कहता है कि कुणीक को अपने साथ मत ले जाना क्योंकि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है। छलना क्रोधित मुद्रा में चली जाती है, गौतम राजा को समझाते हैं कि तुम आज ही कुमार को युवराज बनाकर इस भीषण भोग से दूर हो जाओ। बिंबसार गौतम के इस आग्रह को स्वीकार कर लेता है। उसी समय वासवी भी अपने नारी-धर्म का पालन करते हुए कहती है-

"भगवन! हम लोगों के लिए एक छोटा-सा उपवन पर्याप्त है।
मैं वहीं नाथ के साथ रहकर सेवा कर सकूंगी।

तृतीय दृश्यः देवदत्त और उसका शिष्य समुद्रगुप्त पथ में वार्तालाप करते हुए चल रहे हैं। देवदत्त अपना वक्तव्य रखते हुए कहता है कि मेरे प्रयास करने पर ही रानी छलना ने बिंबसार को सिंहासनच्युत करवाया है। देवदत्त ऋषि गौतम की भर्त्सना करते हुए कहता है- "यह गौतम बड़ा ही कपट-मुनि है। देखते नहीं यह कितना प्रभावशाली होता जा रहा है।" वह गौतम के प्रभाव को दूर करने के उद्देश्य से बिंबसार को मगध राज्य से दूर करने के विषय में कह रहा है कि तभी राजवैद्य जीवक प्रवेश करते हैं। जीवक देवदत्त से पूछते हैं कि- "संघभेद करके आपने नियम तोड़ा है, उसी तरह राष्ट्रभेद करके क्या देश का नाश करना चाहते हैं?" देवदत्त जीवक को पुरानी मंडली का गुप्तचर बताते हुए समुद्रदत्त से कहता है कि यह विद्रोही है, इसका मुख बंद करवा देना चाहिए। जीवक निडरतापूर्वक उन्हें चेतावनी देते हुए कहता है कि वह दिन दूर नहीं जब तुम्हारे जैसे व्यक्तियों के कारण मगध का पतन हो जाएगा।

चतुर्थ दृश्यः उपवन के अन्तर्गत महाराज बिंबसार और वासवी वार्तालाप करते हुए इस तथ्य पर दुःख व्यक्त करते हैं कि अजातशत्रु के द्वार से भिक्षुक खाली हाथ लौट जाते हैं। वासवी कहती है कि मेरे पिताजी ने काशी का जो राज्य भेंट स्वरूप प्रदान किया था उसकी आय पर मेरा ही हक है, उसी आय को लेकर हम भिक्षुओं में दान कर सकते हैं। तभी जीवक प्रवेश करता है और महाराज से कहता है कि "निष्ठुर देवदत्त के कुचक्र से महाराज के जीवन की रक्षा होनी चाहिए।" गौतम की प्रतिष्ठा ने देवदत्त को अंधा कर दिया है, वह अपने स्वार्थ में लिप्त होकर विकृत मार्ग को अपना चुका है। मगध

नोट्स

राज्य के विनाश की इच्छा वह तब तक पूर्ण नहीं कर सकता जब तक आप जीवित रहकर गौतम का मान-सम्मान बढ़ाते रहेंगे और उसकी सहायता करते रहेंगे। महारानी वासवी जीवक को कार्यभार सौंपते हुए कहती है- "महाराज को अब स्वतंत्र वृत्ति की आवश्यकता है, अतः काशी प्रांत का राजस्व, जो हमारा प्राप्य है, लाने का उद्योग करना होगा। मगध-साम्राज्य से हम लोग किसी प्रकार का संबंध न रखेंगे।" जीवक उनकी सहायता के लिए कौशांबी में प्रस्थान करता है।

पंचम अंक : कौशांबी के राजमहल में मागंधी (श्यामा) साचे रही है कि मैं इतनी रूपवान हूँ किन्तु फिर भी गौतम ने मुझसे विवाह करना अस्वीकार करके मेरे इस रूप-यौवन का अपमान किया है। अब मेरा विवाह कौशांबी नरेश उदयन से हो चुका है लेकिन मैं दरिद्र-कन्या होने के अपमान की यंत्रणा में पिस रही हूँ। वह आक्रोश में कहती है कि- "उदयन राजा है, तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ। दिखला दूंगी कि स्त्रियां क्या कर सकती हैं।" मागंधी द्वारा गौतम के विषय में पूछने पर दासी बताती है कि वे रानी पद्मावती के महल में घंटों बैठकर उपदेश देते हैं, जिसे राजा उद्यन भी सुनते हैं। दासी नवीना रानी मागंधी के महल में महाराज को बुलाने चली जाती है। राजा उदयन आकर बताते हैं कि महात्मा गांधी के उपदेश सुनने के कारण ही मैं आपके पास नहीं आ सका। वे पद्मावती के महल में उपदेश देते हैं, महादेवी वासवदत्ता भी वहीं नित्य आती थी। यह सुनकर मागंधी पद्मावती और गौतम के प्रति ईर्ष्या-भाव प्रदर्शित करते हुए व्यंग्यमयी भाषा में कहती है- "कौशांबी इस पाखंड से बची रहे, तो बड़ा उत्तम हो। स्त्रियों के मंदिर (राजमहल) में उपदेश क्यों हो- क्या उन्हें पतिव्रत छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है?" राजा उदयन रानी के आक्षेप को सुनकर क्रोधित हो जाते हैं लेकिन मागंधी उन्हें शराब पिलाकर मना लेती है। वह एक षडयंत्र भी रचती है- पद्मावती के महल से 'हस्तिस्कंध' नामक वीणा मंगवाती है लेकिन उसमें एक सर्प का बच्चा भी रखवा देती है। जब उदयन वीणा को उठाते हैं तो उसमें से वह सर्प का बच्चा निकलता है। यह देखकर उदयन क्रोधित हो जाते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि पद्मावती मुझे मारना चाहती है।

षष्ठ अंकः कौशांबी के पथ पर जाते हुए जीवक के स्वगत कथन से स्पष्ट होता है कि राजा उदयन अपनी पत्नी पद्मावती से रुष्ट है, इसी कारण वह जीवक से भी अच्छे ढंग से बात नहीं कर पाए। पद्मावती का संदेश लेकर दासी जीवक के पास आकर कहती है कि रानी ने कहा है- आप मेरी चिंता मत कीजिए, माता और पिता की देखभाल अब तुम्हारे ही हाथ है, अतः शीघ्र ही मगध के लिए प्रस्थान करें। उचित अवसर आने पर पिताजी के श्रीचरणों के दर्शन भी करूंगी। महाराज उदयन मुझसे इसीलिए रुष्ट हैं 'क्योंकि नयी रानी ने मेरे विरुद्ध कान भर दिये हैं।' यही कारण है कि मैं पिताजी के पास आने में असमर्थ हूँ। मार्ग में जीवक की गौतम से भेंट हो जाती है। वह गौतम को बताता है कि "मगध-राजकुल में बड़ी अशांति है। वानप्रस्थ-आश्रम में भी महाराज बिंबसार को चैन नहीं है।" गौतम के जाने पर उदयन की सभा का विदूषक बसंतक जीवक से मिलने पर रानी पद्मावती के विषय में कहता है- "बड़ी रानी वासवदत्ता पद्मावती को सहोदरा भगिनी की तरह प्यार करती है। उनका कोई अनिष्ट नहीं होने पावेगा। .... उसकी ओर से आप निश्चिंत रहें।" इसके पश्चात जीवक कौशल चला जाता है।

सप्तम दृश्यः कौशल का कोषाध्यक्ष सुदत्त राजा प्रसेनजित की राजसभा में आकर सूचना देता है कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबसार को सिंहासन से उतारकर उनका तिरस्कार किया है और स्वयं

राजसिंहासन पर आसीन हो गया है। इस घटना का समर्थन करते हुए प्रसेनजित का पुत्र विरुद्धक अपने पिता के समक्ष कहता है कि "युवराज को राज्य संचालन की शिक्षा देना महाराज का ही कर्त्तव्य है।" विरुद्धक अपने भी इसी प्रकार के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहता है- "पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार मांगे तो, तो उसमें दोष ही क्या?" पुत्र के ये कथन सुनकर वे क्रोधित हो जाते हैं और उसे धिक्कारते हुए कहते हैं- "यह विद्रोही युवक हृदय - जो नीच रक्त से कलूषित है - युवराज होने के योग्य है?" विरुद्धक जैसी संतान ही अपने माता-पिता का वध करती है। प्रसेनजित अपने पुत्र विरुद्धक को राजपद से वंचित कर देता है तथा उसे व उसकी माँ को केवल जीविका-निर्वाह के लिए राजकोष से व्यय देना निर्धारित कर देता है।

कौशांबी से लौटते हुए जीवक कौशल-नरेश की राजसभा में भी आता है। महाराज मगध की घटना से पहले ही अवगत थे, अतः मंत्री को आदेश देते हैं कि काशी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह अजातशत्रु को राज-कर न देकर वासवी को ही अपना कर दान करें, क्योंकि काशी का प्रांत वासवी को मिला है, सपत्नि-पुत्र (अजातशत्रु) का इस पर कोई अधिकार नहीं है।

कौशल-नरेश का सेनापति बंधुल आकर उन्हें यह सूचना देता है कि लिच्छवियों को परास्त कर दिया गया है, यह सब आपके ही श्रीचरणों का प्रताप है। अब वे विद्रोह करने का नाम भी नहीं लेंगे।

अष्टम दृश्यः प्रस्तुत दृश्य के आरम्भ में विरुद्धक के स्वागत कथन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि वह कभी मल्लिका से प्रेम करता था, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली और मल्लिका का विवाह सेनापति बंधुल से हो जाता है। उसकी माँ शक्तिमति उसे उत्तेजित करते हुए कहती है कि- 'दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया, और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक हो- मैंने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था। ... मल्लिका तो क्या, राजलक्ष्मी तुम्हारे पैरों पर लौटेगी। पुरुषार्थ करो! इस पृथ्वी पर जियो तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।" विरुद्धक भी अपनी माँ के समक्ष प्रतिज्ञा करता है- "बस माँ अब कुछ न कहो आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्त्तव्य और मेरे जीवन का लक्ष्य होगा। माँ मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूंगा और उनके रक्त से नहाकर इस कौशल के सिंहासन पर बैठकर तेरी वंदना करूंगा। आशीर्वाद दो कि इस क्रूर परीक्षा में उत्तीर्ण होऊं।"

नवम दृश्यः रानी पद्मावती अपने महल में बैठी सोच रही है कि स्वामी भी मुझसे असंतुष्ट हैं। वह राजमार्ग पर जाते हुए गौतम को खिड़की से देखने लगती है कि तभी पीछे से उदयन प्रवेश करते हैं। वे क्रोधित होकर पद्मावती से कहते हैं- "पीपीयसी, देख ले यह तेरे हृदय का विष है - तेरी वासना का निष्कर्ष जा रहा है। इसीलिए न यह झरोखा बना है।" पद्मावती चौंककर खड़ी हो जाती है और हाथ जोड़कर कहती है कि वे तो विष के स्थान पर अमृत हैं। जिस गौतम ने सौन्दर्य की मूर्ति मागंधी को त्याग दिया था, वे भला हमारे जैसे मांसपिण्डों को कैसे अपना सकते हैं। उदयन उस पर आक्षेप लगाते हैं कि तूने मुझे मारने के लिए वीणा में सर्प छिपाकर भेजा था। तेरी छलना का दांव मुझ पर नहीं चला लेकिन अब तेरा अंत निश्चित है। पद्मावती स्वयं को कौशांबी की राजभक्त प्रजा बताते हुए दंड स्वीकार करने को प्रस्तुत हो जाती है कि तभी वहाँ वासवदत्त आकर यह रहस्योद्घाटन करती है कि वीणा में सर्प स्वयं मागंधी ने ही रखवाया था। वासवदत्त प्रमाण हेतु दासी द्वारा मागंधी को बुलाने के लिए भेजती है लेकिन

नोट्स

मागंधी ने दासी नवीना और महल को आग लगा दी क्योंकि वह महाराज का सामना नहीं करना चाहती थी। यह सब जानकर महाराज उदयन रानी पद्मावती से क्षमा मांगता है।

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्यः मगध ही राजसभा में अजातशत्रु को समुद्रदत्त के द्वारा यह सूचना मिलती है कि काशी के नागरिक आपको राजकर नहीं देना चाहते क्योंकि वे कहते हैं कि "हम लोग उस अत्याचारी राजा को कर न देंगे जो अधर्म के बल से पिता के जीते जी सिंहासन छीनकर बैठ गया है। और, जो पीड़ित प्रजा की रक्षा भी नहीं कर सकता- उनके दुःखों को नहीं सुनता तथा...।" यह सुनकर अजातशत्रु सोचता है कि यह काशी के नागरिकों की आवाज नहीं हो सकती बल्कि उसके पीछे माता वासवी का हाथ है। तभी सभा में देवदत्त प्रवेश करता है, अजातशत्रु काशी के विद्रोह वाली बात इनको बता देता है। प्रत्युत्तर में देवदत्त ने गौतम पर आक्षेप लगाते हुए कहा कि काशी का यह विद्रोह पाखंडी देवदत्त के कारण ही हो रहा है क्योंकि आजकल वह कौशल में ही घूम रहा है। देवदत्त की प्रेरणा से राज-परिषद की बैठक बुलाकर उसमें बड़ी चतुरता से यह तथ्य प्रस्तुत किया जाता है कि मगध के प्रत्येक नागरिक को राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिए। वह जनता के समक्ष निम्नलिखित तर्क देकर काशी पर आक्रमण करने की स्वीकृति भी प्राप्त कर लेता है- "क्या ऐसे सुरम्य और धनी प्रदेश को मगध छोड़ देने के लिए प्रस्तुत है? क्या इसी तरह फिर और प्रदेश भी स्वतंत्र होने की चेष्टा न करेंगे? क्या इसी में राष्ट्र का कल्याण है।" देवदत्त की इस व्यवस्था को भी स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है कि अजातशत्रु सेनापति के रूप में काशी पर आक्रमण करेगा, समुद्रदत्त गुप्त प्रणिधि के रूप में काशी की प्रजा को मगध के अनुकूल करेगा और महारानी छलना राज-काज को संभालेगी। देवदत्त और समुद्रदत्त परिषद से यह भी स्वीकृति ले लेते हैं कि महाराज बिंबसार पर कड़ी निगरानी रखी जाए। इसी के साथ दृश्य की समाप्ति हो जाती है।

द्वितीय दृश्यः मार्ग में जाते हुए कौशल के सेनापति बंधुल के स्वगत कथन के माध्यम से यह सूचना मिलती है कि उसे सामंत बनाकर काशी भेजा जा रहा है ताकि मगध काशी पर अधिकार न कर सके। कौशल राजकुमार विरुद्धक सेनापति बंधुल से अकेले में मिलता है। विरुद्धक अपने आपको तिरस्कृत राज-संतान कहता है लेकिन बंधुल उससे कहता है कि तुम्हारे सम्राट ने राज्य से निर्वासित नहीं किया है। मैं आपको काशी का सिंहासन दिला सकता हूँ। प्रत्युत्तर में विरुद्धक कहता है कि- "मैं दया से दिया हुआ दान नहीं चाहता। मुझे तो अधिकार चाहिए, स्वत्व चाहिए।" वह बंधुल को यह भी समझाने का प्रयास करता है कि कौशल नरेश को तुम्हारी वीरता से संतोष न होकर आतंक ही है। राजशक्ति किसी भी व्यक्ति को ज्यादा उन्नत नहीं देखना चाहती। इस बात से क्रुध होकर वह राजकुमार बंधुल को बंदी बनाने का प्रयत्प करता है।

रात्रि के एकांत वातावरण में मागंधी जो काशी में आकर श्यामा नामक वार-विलासिनी बन गई है, शैलेन्द्र डाकू (विरुद्धक) से मिलने आई है। वह शैलेन्द्र के प्रति आशक्त है इसलिए उससे कहती है- "मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है, उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझायेगा? वह कहता है कि ऐसी रमणियां डाकुओं से भी भयंकर होती हैं लेकिन उसके प्रेम-निवेदन को ठुकरा नहीं पाता।

तृतीय अंक : उपवन के अन्तर्गत बंधुल की पत्नी मल्लिका और विरुद्धक की माता महामाया

परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। मल्लिका उसे अपने पति की अप्रतिम वीरता का एक प्रसंग सुनाती है कि किस प्रकार पाँच सौ मल्लों से रक्षित उस तालाब से मुझे पानी पिलाया था, जिसमें मल्लों से भिन्न जाति की नारियों का पानी ग्रहण निषेध था। वह मल्लिका को कहती है कि महाराज ने शैलेन्द्र डाकू के पास गुप्त पत्र भेज दिया है और कहा है कि- "यदि तुम बंधुल का वध कर सकोगे, तो तुम्हारे पिछले सब अपराध क्षमा कर दिए जाएंगे, और तुम उनके स्थान पर सेनापति बनाए जाओगे।" वह आगे कहती है कि मैं तुझे बहुत प्यार करती हूँ और दूसरे तुम्हें पुत्रवधु बनाने की मेरी बड़ी इच्छा थी लेकिन घमंडी नरेश ने तुम्हें अस्वीकार कर दिया था। मुझे इसका बड़ा दुःख है इसीलिए तुम्हें सचेत करने आई थी। लेकिन मल्लिका स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि मैं अपने पति को उसके कर्त्तव्य से विलग नहीं करना चाहती।

चतुर्थ दृश्यः प्रस्तुत दृश्य में श्यामा के स्वगत कथान से सूचना मिलती है कि शैलेन्द्र डाकू के हाथों सेनापति बंधुल मारा जा चुका है और शैलेन्द्र भी बंधुल के हाथों घायल होकर बंदी बना लिया गया है। उसी क्षण श्यामा के घर देवदत्त का शिष्य समुद्रदत्त (जो काशी में गुप्तचर के रूप में भेजा गया था) आता है और श्यामा से कहता है- "तुम्हारे रूप की ज्वाला ने मुझे पतंगा बना दिया है, अब उसमें जलने के लिए आया हूँ।" तभी दासी श्यामा को सूचना देती है कि श्यामा की आज्ञा ही मेरे लिए सब कुछ है। हजार मोहरों की जगह केवल एक व्यक्ति भेज दीजिए जिसे शैलेन्द्र के स्थान पर फांसी दी जा सके, क्योंकि अभी तक किसी को भी यह पता नहीं है कि शैलेन्द्र नामक डाकू ने सेनापति बंधुल की हत्या की है। श्यामा ऐसी चाल चलती है कि वह समुद्रदत्त को एक हजार मुद्राओं के साथ उसका वेश बदलकर भेजते हुए कहती है- "जाओ बलि के बकरे, जाओ! फिर न आना।" इस प्रकार वह अपने प्रेमी शैलेन्द्र को मौत के मूंह से बचाने में सफल हो जाती है।

पंचम दृश्यः सेनापति बंधुल के गृह में बंधुल की विधवा पत्नी और उसकी दासी के बीच वार्तालाप दिखाया गया है। मल्लिका अपने पति की मृत्यु के घोर कष्ट को सहन करने के लिए भगवान से शांति एवं साहस की याचना करती है। वह गौतक से श्रद्धापरक भाव व्यक्त करते हुए कहती है कि हे भगवान! तुम्हारे उपदेशों से हृदय निर्मल हो जाता है। कुछ दिन पूर्व मल्लिका सारिपुत्र मौद्गल्यायन को भिक्षा देने हेतु आमंत्रित कर चुकी थी, लेकिन पति की अकस्मात् मृत्यु के दुःख से दुःखी होते हुए भी दासी को आतिथ्य-सत्कार का आयोजन करने के लिए कहती है। सारिपुत्र और गौतम मल्लिका के इस अप्रतिम धैर्य से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं- "आनन्द! तो इस मूर्तिमती धर्म-परायणता से कर्त्तव्य की शिक्षा लो।" यह सुनकर आनन्द (गौतम) मल्लिका से कह उठते हैं- "आज मुझे विश्वास हुआ कि केवल काषाय धारण कर लेने से ही धर्म पर एकाधिकार देते हुए पारिपुत्र कहते हैं कि तुम्हारा चरित्र धैर्य और कर्त्तव्य का एक आदर्श है। तुम्हारे हृदय में शांति का वास है। हमें मालूम है कि तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है, लेकिन फिर भी हमें विश्वास है कि तुम किसी के भी साथ द्वेष-भाव नहीं रखोगी। उसी क्षण कौशल नरेश प्रसेनजित अपने अपराध के लिए मल्लिका से क्षमा की चायना करता है तो वह उसे क्षमादान देते हुए कहती है- "आज्ञा दीजिए कि आपके राज्य से निर्विघ्न चली जाऊं, किसी शांतिपूर्ण स्थान में रहूँ।"

षष्ठ दृश्यः महाराज बिंबसार और रानी वासवी अपने गृह में जगत के सत्य एवं गति के विषय में वार्तालाप कर रहे हैं कि तभी वहाँ पर छलना आ जाती है और रानी वासवी पर यह अभियोग लगाती है कि तुमने ही काशी में उपद्रव मचवाया है। वह उन्हें बताती है कि कौशल सेनापति बंधुल की मृत्युपरान्त

नोट्स

घबराई हुई कौशल सेना पर अजातशत्रु ने आक्रमण कर दिया और विजयी होकर काशी पर अधिकार कर लिया। वह वासवी पर आक्षेप लगाती है कि- "तुमने जान-बूझकर यह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे नहीं दबा सकती थी, क्योंकि वह तो तुम्हारे पिता से तुम्हें मिला हुआ प्रांत था।" उसी क्षण जीवक प्रवेश करते हुए वासवी को यह सूचना देता है कि मागंधी का षडयंत्र भी खुल गया है, राजकुमारी पद्मावती का गौरव पूर्ववत् हो गया है और महाराज प्रसेनजित घायल होकर युद्धभूमि से लौट गए। यह सुनकर महाराज बिंबसार जीवक से कहते हैं कि जीवक अब तुम विश्राम कर सकते हो क्योंकि अब और कोई समाचार सुनने की इच्छा नहीं है।

सप्तम दृश्य: काशैल की सीमा पर बनी मल्लिका की कुती के द्वार पर बंधलु का भांजा दीघर्क ारायण मल्लिका के प्रति दुःख व्यक्त करते हुए कहता है कि आपने युद्ध में घायल प्रसेनजित की सेवा करके एक सर्प को जीवन-दान दिया है। मल्लिका के कथनों से स्पष्ट होता है दीर्घकारायण और कुछ अन्य सैनिकों द्वारा प्रसेनजित का साथ न देने के कारण ही वह मगध की सेना से परास्त और घायल हुआ है। कुती से घायल प्रसेनजित बाहर निकलता है और पश्चाताप करते मल्लिका के चरणों में गिर जाता है। वह पश्चातापवश मल्लिका से अनुमति प्राप्त करके दीर्घकारायण को अपना सेनापति नियुक्त कर देता है। मल्लिका प्रसेनजित को समझाते हुए कहती है- "यदि आपकी इच्छा है तो वर्तमान में कुछ रमणीय सुंदर चित्र खींचिये जो भविष्य में उज्ज्वल होकर दर्शकों के हृदय को शांति दें। दूसरों को सुखी बनाकर सुख पाने का अभ्यास कीजिए।"

दीर्घकारायण और प्रसेनजित के जाते ही वहाँ अजातशत्रु प्रवेश करते हुए मल्लिका से प्रसेनजित के विषय में पूछताछ करता है। मल्लिका उसके क्रोध को इन वचनों से शांत कर देती है- "युद्ध में जब यशार्जन कर चुके, तब हत्या करके क्या अब हत्यारे बनोगे? वीरों की विजय की लिप्सा होनी चाहिए, न कि हत्या की।" अजातशत्रु मल्लिका के समक्ष क्षमा मांगते हुए कह जाता है कि अब कौशल पर आक्रमण नहीं करूंगा क्योंकि अब मुझे जीवन के यथार्थ सत्य के दर्शन हो गए हैं।

अष्टम दृश्य: श्रावस्ती के एक उपवन में श्यामा और शैलेन्द्र मद्यपान कर रहे हैं। शैलेन्द्र श्यामा से कहता है कि मैं तुम्हारे रूप-सौन्दर्य को भुला बैठा हूँ लेकिन दूसरे क्षण वह मन ही मन सोचता है कि इस पापिन की गोद में मुंह छिपाकर कितने दिन तक जीवन व्यतीत करूंगा। मेरे भावी कार्यों में अब यह बाधा बनकर खड़ी हुई है, इसलिए इसे रास्ते से हटाना ही होगा। इसने विश्वास के बल पर ही समुद्रदत्त के प्राण लिए हैं। 'यह नागिन पलटते देर नहीं।' रात्रि में सोई हुई श्यामा का वह गला घोंटकर हत्या कर देता है और उसके आभूषण भी उतार ले जाता है। उसी समय गौतम और उनका शिष्य आनन्द भी उसी स्थान से गुजरते हैं और श्यामा के शव में जीवन के कुछ लक्षण शेष देखकर उसे अपने आश्रम में उठा ले जाते हैं। आनन्द इस कृत्य का यह कहकर विरोध भी करता है कि आपके प्रतिद्वन्दी चिंचा माणविका के प्रसंग की भांति आपको कलंकित करने का प्रयास भी करेंगे, किन्तु गौतम यह कहकर उसे निरुत्तर कर देता है कि "क्या करुणा का आदेश कलंक के डर से भूल जाओगे?" संघराम में एकत्रित भीड़ में प्रवेश करने पर शैलेन्द्र को ज्ञात होता है कि गौतम ने किसी मृत स्त्री को जीवित कर दिया है।

विरुद्धक की माता शक्तिमती कौशल के नए सेनापति कारायण से वार्तालाप करते हुए प्रसेनजित के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भड़काती है। वह शक्तिमती को बताता है कि विरुद्धक (शैलेन्द्र) मुझसे

मिला है और कह रहा था "अभी मैंने एक हत्या की है और उससे मुझे यह धन मिला है, सो तुम्हे गुप्त-सेनासंगठन के लिए देता हूँ। ... उस युवक को देखकर मेरी आत्मा कांपती है।" कारायण कहता है कि मैं उस मृत स्त्री को देखने के लिए आया था लेकिन उसे जीवित देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। अगर वह पुनः जीवित नहीं होती "तो अभी भी गौतम का सब महात्मापन भूल जाता।" रानी शक्तिमती उसे यह सूचना देती है कि कौशाम्बी का दूत आया है। हो सकता है कि कौशाम्बी और कौशल की सेना अजातशत्रु पर आक्रमण करेंगी। उस समय तुम क्या करोगे? प्रत्युत्तर में कारायण कहता है कि उस समय मैं मगध पर आक्रमण करके अजातशत्रु को बन्दी बनाऊंगा। अपने घर की बात अपने ही घर में निपट जाएगी।

नवम दृश्यः कौशाम्बी के पथ में जीवक और बसन्तक वार्तालाप कर रहे हैं। बसन्तक विदूषकों की भांति ही हंसने-रोने की बातें करता है। इसी बीच वह इस तथ्य को भी प्रकट कर देता है कि अजातशत्रु पर कौशल और कौशांबी द्वारा जो आक्रमण किया जा रहा है उसमें उसका कोई अनिष्ट नहीं होने पाएगा क्योंकि यह आक्रमण अजात पर केवल शिक्षा देने के उद्देश्य से किया जा रहा है। पद्मावती माता से शीघ्र ही श्रीवस्ती में दर्शन भी करेंगी।

दशम दृश्यः मगध में छलना के प्रकोष्ठ में वह अपने पुत्र अजातशत्रु के साथ वार्तालाप करते हुए उसे युद्ध के लिए उत्तेजित कर रही है। अजातशत्रु अपने युद्ध विरोधी विचार व्यक्त करते हुए कहता है- "युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियां अनाथ हो जाती हैं। युद्ध स्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है।" लेकिन छलना फिर भी अपने पुत्र को युद्ध के लिए उत्तेजित करते हुए कहती है- "कायर! आंख बन्द कर ले। यदि ऐसा ही था, तो क्या बूढ़े बाप को हटाकर सिंहासन पर बैठा?" अजातशत्रु अपनी माँ की इच्छा के विपरीत सिंहासन का त्याग कर पिता की सेवा करना चाहता है। तभी वहाँ देवदत्त प्रवेश करते हुए अजात को कहता है कि अब पीछे हटने का समय नहीं है, अब तुम्हें कौशांबी और कौशल की सेनाओं का सामना करने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। इसी अवसर पर कौशल का राजकुमार विरुद्धक भी वहाँ आ जाता है और अजात की युद्ध में सहायता करने की इच्छा प्रकट करता है। अजातशत्रु द्वारा विरुद्धक को शत्रु का पुत्र बताकर उसके प्रति अविश्वास प्रकट करने पर विरुद्धक कहता है- "केवल एक बात विश्वास करने की है। यही कि तुम कौशल नहीं चाहते और मैं काशी सहित मगध नहीं चाहता।" वह यह भी बताता है कि कौशल का सेनापति कारायण भी मुझसे मिला हुआ है। अतः कौशल की दुर्बल सेना पर तुम और कौशांबी की सेना पर मैं आक्रमण करूंगा, जिससे तुम्हें विश्वास बना रहे। मैं पिता के साथ स्वयं नहीं लड़ूंगा, यही कारण है कि मैं कौशांबी की सेना पर आक्रमण करना चाहता हूँ। अजातशत्रु और विरुद्धक दोनों ही युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं।

तृतीय अंक

प्रथम दृश्यः मगध के राजभवन में छलना और देवदत्त वार्तालाप कर रहे हैं। छलना देवदत्त को धिक्कारते हुए कहती है- "धूर्त! तेरी प्रवंचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई। पुत्र बंदी होकर विदेश को चला गया और पति को मैंने स्वयं बंदी बनाया। पाखंड तूने ही यह कुचक्र रचा है।" देवदत्त छलना के आरोप को अनुचित ठहराते हुए कहता है कि तेरी राज्यलिप्सा और महत्त्वाकांक्षा ने ही तुझसे यह सब कुछ कार्य करवाया है। छलना उसे नर-पिशाच की संज्ञा देते हुए प्रतिहारी को बुलाकर कैद करवा देती है। छलना के

नोट्स

आदेश पर बड़ी रानी वासवी को पकड़कर लाया जाता है। छलना व्यंग्यमयी शब्दावली में वासवी से कहती है कि अजातशत्रु के युद्ध में बंदी बनाए जाने पर तुम्हारे हृदय को बड़ी शांति मिल रही होगी। छलना स्वयं को भूखी सिंहनी बताते हुए वासवी को कहती है- "मीठे मुंह की डायन। आज मैं उसी हृदय को निकाल लूंगी, जिसमें यह सब भरा था।" वासवी कहती है कि पुत्र अजात के प्रति मेरी सोच कभी भी गलत नहीं थी, वह मुझे उतना ही प्रिय है जितना तुम्हें, इस पर भी तुम मुझे मारना चाहती हो तो एक बात विचार कर लो- "क्या कौशल के लोग जब मेरी यह अवस्था सुनेंगे तो अजात को और शीघ्र मुक्त कर देने के बदले कोई दूसरा कांड न उपस्थित करेंगे।" अतः वासवी स्वयं कौशल जाकर अजातशत्रु को मुक्त करा लाने का प्रस्ताव रखती है और देवदत्त को भी बंधनमुक्त करा देती है। मेरे जाने पर मगध पर शासन का कार्यभार तुम संभालोगी और "यदि हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा करके नारी जन्म को सार्थक कर लेना। छलना अपने प्रति वासवी का अगाध स्नेह देखकर रोने लगती है तो वासवी उसे समझाते हुए कहती है, "रो मत बहिन! मैं जाती हूँ, तू यही समझ कि कुणीक (अजातशत्रु) ननिहाल गया है।"

द्वितीय दृश्यः कौशल के राजमहल के समीप बंदीगृह में राजकुमारी बाजिरा का प्रवेश होता है, वहीं पर अजातशत्रु भी कारागार में बंद है। बाजिरा समाज की अव्यवस्था के विषय में सोचती है, "अंधी जनता अंधेरे में दौड़ रही है। इतनी छीना-झपटी, इतना स्वार्थ... भाई भाई से लड़ रहा है, पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है, स्त्रियां प्रतियों से प्रेम नहीं उन पर कुशासन करना चाहती हैं।... राजमंदिर बंदीगृह में बदल गए हैं।" तभी उनकी दृष्टि अजातशत्रु पर जाती है। वह उसके सुंदर, सुडौल शरीर को देखकर मन ही मन कहती है कि इस सुन्दर राजकुमार को देखकर जीवन धन्य हो गया है। एक दिन पिताजी के पैर पकड़कर प्रार्थना करूंगी कि इस बंदी को छोड़ दो क्योंकि मैं इसे प्रेम करने लगी हूँ। अजात भी बाजिरा के प्रति आकृष्ट हो जाता है और उससे उसका परिचय पूछता है लेकिन बाजिरा कहती है कि मेरा परिचय पाकर तुम मुझसे घृणा करने लगोगे। अजातशत्रु का यह उत्तर पाकर कि चाहे तुम प्रसेनजि की पुत्री भी क्यों न हो मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँगा, तब बाजिरा अपना परिचय दे देती है। वह अजातशत्रु को जेल से भागने का अवसर देती है तो अजातशत्रु कहता है कि 'अब यह तुम्हारा चिर-बंदी मुक्त होने की चेष्टा भी न करेगा। बाजिरा अजात को माला पहनाकर उसके साथ गांधर्व विवाह कर लेती है और अजातशत्रु भी उसे अपने प्रेम की सूचक अंगूठी पहना देता है। उसी क्षण सेनापति कारायण प्रवेश करता है और उन दोनों की प्रेम-लीला को देख क्रुद्ध हो उठता है, क्योंकि बाजिरा से वह स्वयं विवाह करना चाहता था। अजातशत्रु सेनापति कारायण को द्वन्द्व युद्ध के लिए आवाहित करता है, किंतु तभी कौशल नरेश प्रसेनजित और वासवी वहाँ पहुँचकर अजातशत्रु को बंधनमुक्त कर देते हैं। वासवी अजातशत्रु को अपनी गोद में ले लेती है तो अजात उससे अपने विगत दुर्व्यवहारों के लिए क्षमा-याचना कर लेता है। वासवी अपने भाई प्रसेनजित से कहती है- "भाई, मैं इसे शीघ्र मगध के सिंहासन पर भेजना चाहती हूँ तुम इसके जाने का प्रबन्ध कर दो।" किन्तु अजातशत्रु वहाँ जाने से इन्कार करते हुए कहता है, नहीं माँ, अब कुछ दिन उस विषैली वायु से अलग रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझसे अभी नहीं छोड़ा जाएगा।"

तृतीय दृश्यः प्रस्तुत दृश्य के आरम्भ में विरुद्धक मल्लिका के प्रति इस बात के लिए आभार व्यक्त करता है कि आपने मेरी अत्यधिक सेवा-सुश्रूषा करके मुझे स्वस्थ कर दिया है जबकि आप यह जानती थी कि तुम्हारे पति का हत्यारा मैं ही हूँ। विरुद्धक को इस सेवा के कारण यह भ्रम हो जाता है कि

कहीं मल्लिका मुझसे प्रेम तो नहीं करती। मल्लिका के मना करने पर वह कहता है- "किंतु मल्लिका! अतीत में तुम्हारे लिए ही मेरा वर्तमान बिगड़ा। पिता ने जब तुमसे मेरा ब्याह करना अस्वीकार किया, उसी समय से मैं पिता के विरुद्ध हुआ और उस विरोध का यह परिणाम हुआ।" उसके इस तर्क से विचलित न होकर मल्लिका कहती है कि तुम्हारा जीवन बचाना तो मेरा धर्म था, जिसमें मैं सफल हुई लेकिन मैं तुम्हारा रक्त-रंजित हाथ स्पर्श भी नहीं कर सकती, क्योंकि, "तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया। एक वीर को छल से मार डाला और अपने देश की जन्मभूमि के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया। तुम्हारे जैसा नीच और कौन होगा।" तब विरुद्धक कहता है कि फिर मुझे रणक्षेत्र से क्यों बचाया? तब मल्लिका आजपूर्ण शैली में उत्तर देती है- "तुम इसलिए नहीं बचाए गए कि फिर भी एक विरक्ता नारी पर बलात्कार और लपटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित करो, अपने को सुधारो।" तभी श्यामा वहाँ पर प्रवेश करके अपनी सम्पूर्ण घटना बता देती है। मल्लिका वस्तुस्थिति जानकर विरुद्धक से कहती है- 'यदि तुम प्रेम का प्रतिदान नहीं जानते हो तो व्यर्थ एक सुकुमार नारी-हृदय को लेकर उसे पैरों से क्यों रौंदते हो? विरुद्धक! क्षमा मांगो। यदि हो सके तो इसे अपनाओ।" विरुद्धक इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है लेकिन श्यामा इसे स्वीकार न करके पिता से उसका क्षमा करा देने का आश्वासन देती है तो विरुद्धक उसे उदारता की मूर्ति कहते हुए उसके पैरों में गिर जाता है। मल्लिका और विरुद्धक को श्रावस्ती की ओर जाता देख श्यामा का अन्तर्मन कह उठता है- "जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं, वही तो संपूर्ण मनुष्यता है।"

चतुर्थ दृश्य: प्रकोष्ठ में सेनापति दीर्घकारायण रानी शक्तिमती से यह पश्चाताप कर रहा है कि एक तरु तो मैं राजकुमार विरुद्धक को मूंह दिखाने लायक नहीं रहा और दूसरी ओर बाजिरा भी प्राप्त न हो सकी। शक्तिमती सेनापति को उपालंभ देती है कि वह अपने मातुल के हत्यारे प्रसेनजित की सेवा कर रहा है। वह नारी अधिकार का प्रश्न उठाते हुए कहती है कि "क्या उनका जन्मसिद्ध कोई अधिकार नहीं? क्या स्त्रियों का सब कुछ – पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिक्षा मात्र है? मुझे इस प्रकार पदच्युत करने का किसी को क्या अधिकार था।" कारायण रानी को स्त्री जाति के करुणा नामक गुण से अवगत कराते हुए क्रूरता से दूर रहने की सलाह देता है और उनके समक्ष मल्लिका का उदाहरण प्रस्तुत करता है। उसी क्षण मल्लिका और विरुद्धक का प्रवेश होता है। मल्लिका रानी शक्तिमती से पूछती है- "बहिन, क्या तुम अब भी राजकुमार को उत्तेजित करके उसे मनुष्यता से गिराने की चेष्टा करोगी? ... क्या क्रूर विरुद्धक को देखकर तुम्हारी अंतरात्मा लज्जित नहीं होती?" शक्तिमती अपनी भूल स्वीकार कर लेती है। मल्लिका रानी को अहंकार एवं क्रोध त्यागने का परामर्श देकर बाजिरा की शादी में सम्मिलित होने के लिए कहती है। कारायण राजकुमार विरुद्धक से इस बात के लिए क्षमा मांगते हैं कि जिस विद्रोह को करने के लिए आप कह गये थे, मैं उसे करने में असमर्थ था क्योंकि मैं अपने ही राष्ट्र के विरुद्ध अस्त नहीं उठा सकता था। दीर्घकारायण की बुद्धिमता और उदारता को देख विरुद्धक उससे क्षमा मांगता है।

पंचम दृश्य: प्रस्तुत दृश्य के प्रारम्भ में कौशल की राजसभा में वर-वधु के वेश में अजातशत्रु और बाजिरा के साथ-साथ प्रसेनजित, शक्तिमती, मल्लिका, विरुद्धक, वासवी और सेनापति दीर्घकारायण भी दिखाई देते हैं। मल्लिका प्रसेनजीत को उनकी पुत्री बाजिरा के विवाह पर बधाई देती है तो प्रसेनजित कहते हैं- "देवि! आपकी असीम अनुकंपा है, जो मुझ जैसे अधम व्यक्ति पर इतना स्नेह! पतितपावनी,

नोट्स

तुम धन्य हो।" प्रसेनजित मल्लिका के कहने पर शक्तिमती को भी क्षमा कर देते हैं। इसके पश्चात वह विरुद्धक को भी राजा से क्षमादान दिलवा देती है और विरुद्धक भी अपने पिता के चरणों में गिरकर कहता है- "पृथ्वी के साक्षात् देवता! मेरे पिता! मुझ अपराधी पुत्र को क्षमा कीजिए।" तभी गौतम बुद्ध प्रवेश करके कौशल नरेश को इस तथ्य के लिए उन्हें कहते हैं कि उन्होंने दोषी को क्षमा करना सीख लिया है। प्रसेनजित ने विरुद्धक को क्षमा तो कर दिया लेकिन दासी-पुत्र होने के कारण विरुद्धक को युवराज बनाना स्वीकार नहीं किया लेकिन जब गौतम ने इस भेदभाव के विरुद्ध तर्क दिए तो उन्होंने विरुद्धक को युवराज बनाना स्वीकार कर लिया। अजातशत्रु उठकर विरुद्धक के गले लगता है तो विरुद्धक कहता है कि मैं वह दिन शीघ्र देखूंगा कि तुम भी इसी प्रकार अपने पिता से क्षमा किए जाओगे। वासवी मन ही मन कहती है- "भाई प्रसेन, तुम अपने जीवन भर में इतने प्रसन्न कभी न हुए होंगे, जितने आज। कुटुंब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा।"

षष्ठ दृश्य: पथ में दो व्यक्ति महात्मा बुद्ध की महानता एवं शक्ति के विषय में वार्तालाप करते हुए चल रहे हैं। दोनों नागरिकों के वार्तालाप से यह भी पता चलता है कि जो देवदत्त स्वतंत्र संघ स्थापित करना चाहता था और गौतम को मारने के लिए आने वाला था वह जल पीने के लिए सरोवर में गया था, लेकिन वापिस नहीं आया, पता नहीं उसे कोई ग्राह पकड़ ले गया या उसने लज्जा से डूबकर आत्महत्या कर ली। वसंतक के कथन से ज्ञात होता है कि विधाता का विधान भी विचित्र है, एक साधारण ग्रामीण बाला से राजरानी बन जाने वाली मागंधी अब पुन: आम की बारी बेचती है और लड़कों के ढेले खाती है। मांगधी की स्थिति उसी कहावत के समान है कि 'रहे मोची-के-मोची'।

सप्तम दृश्य: प्रस्तुत दृश्य के प्रारम्भ में मागंधी अपने जीवन में आए परिवर्तनों के विषय में सोचते हुए कह रही है- "वाह री नियति! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये, कभी बैलों को चारा देते-देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठाकर पीने से संकोच होता था, कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ।" तभी गौतम वहाँ प्रवेश करते हैं तो मागंधी उनके चरणों में गिरकर कहने लगती है कि हे प्रभु! इस प्यासे हृदय की तृष्णा मिटाने के लिए स्वयं अमृत के स्रोत (गौतम) ने अपनी दिशा परिवर्तित करके मरुस्थल में प्रवेश किया है। गौतम ने उनके मन को शांत करते हुए कहा कि "अब तुम तपे हुए हेम की तरह शुद्ध हो गयी हो। विश्व के कल्याण में अग्रसर हो।" तब मागंधी कहती है, हे प्रभु! जन्म भर की असफलता के बाद भी मेरी ही विजय हुई है। "पतितपावन! यह उद्धार आपके लिए भी महत्त्व देने वाला है और मुझे तो सब कुछ।"

अष्टम दृश्य: प्रकोष्ठ में छलना पद्मावती से किए अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमा मांगती है। पद्मावती सूचना देती है कि भाभी (बाजिरा) को पुत्र हुआ है, तभी वासवी भी वहाँ आ जाती है। छलना वासवी से भी अपने किए अपराध के लिए क्षमा-याचना करती है। वासवी उसे क्षमा करके भी उससे सपत्नियोचित नोंक-झोंक करते हुए कहती है- "छलना! तू नहीं जानती, मुझे एक बच्चे की आवश्यकता थी इसलिए तुझे नौकर रख लिया था, अब तो तेरा काम नहीं है।" छलना भी इसी तरह का मजाक करते हुए कहती है-

छलना : बेटी पद्मा! चल! इसी से कहते हैं कि सौत काठ की भी बुरी होती है।"

वासवी : चल, चल, लड़ मत कंगालिन।"

अजातशत्रु भी पिता से क्षमा मांगने के लिए श्रावस्ती चला जाता है।

नवम दृश्यः इसमें महाराज बिंबसार मानव-हृदय की इस रहस्यमयता के संबंध में विचार कर रहे होते हैं कि वह जिस पर क्रोध से भैरव हुंकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिए प्रस्तुत रहता है कि तभी वहाँ अजातशत्रु प्रवेश करते हैं और पिता के चरणों में गिरकर क्षमा मांगते हैं। वह अपने पिता से कहता है, "पुत्र का यही सिंहासन है। आपने सोने का झूठा सिंहासन देकर मुझे इस सत्य-अधिकार से वंचित किया।" मुझे मेरी माँ से अधूरी शिक्षा मिली थी, उसमें पिता की छाया न थी, इसीलिए मुझसे यह अपराध हुआ। तभी वहाँ छलना भी आकर बिंबसार के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना करती है। पद्मावती और बड़ी रानी वासवी के आग्रह करने पर दोनों को क्षमा कर देता है। वह अपनी पुत्रवधु बाजिरा और अपने पौत्र को आशीर्वाद देने और राजमहल जाने के लिए तत्पर हो जाता है। इसी शुभ अवसर पर गौतम आकर उन्हें आशीर्वाद देते हैं और इसी के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

निष्कर्षतः प्रसाद जी ने प्रस्तुत नाटक में वि स्तृत कथानक को समेटने का प्रयास किया है। उनके नाटक के वस्तु-विन्यास पर विचार करते हुए डा. दशरथ ओझा ने कहा है, "प्रसाद ने इस नाटक का वस्तु-विन्यास इस कौशल से किया है कि कथानक को कोई भी अंग असम्बद्ध प्रतीत नहीं होता। कथानक के संगठन में जो नाट्य-कला झलकने लगती है, वह चरित्र और अन्तर्द्वंद्व की ज्योति पाकर चमक उठती है। तात्पर्य यह है कि प्रसाद ने विविध घटनाओं को शृंखलाबद्ध करने का जो प्रथम प्रयास किया, उसमें उन्हें सफलता मिली।" इसी प्रकार उन्होंने आगे चलकर इसी शैली को अपने नाटकों का आधार बनाया।

1.8 अजातशत्रु : नाट्यकला

नाटक के क्षेत्र में प्रसाद का योगदान विशिष्ट है। उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की, जिसमें भारतीय संस्कृति और इतिहास का उत्कृष्ट रूप व्यक्त हुआ है। वस्तुतः उनके नाटक-साहित्य के मूल में सांस्कृतिक पुनर्निमाण की उत्कट प्रेरणा है। अपने समृद्ध परातत्वज्ञान के बल पर उन्होंने बौद्ध कालीन भारतीय संस्कृति के अवयवों को बड़ी सुन्दरता से जोड़कर उनमें प्राण संचार किया। सच्चे अर्थ में पुनर्निर्माण या पुनरोत्थान की प्रवृत्ति प्रसाद में ही थी। उनके नाटकों में उनका कवित्व सर्वत्र मुखर हुआ है। डॉ. नगेन्द्र का मत है- "प्रसाद के नाटक मधु से वेष्टित हैं- प्रसाद मूलरूप से कवि हैं। अतः उनके नाटकों में काव्य की गहराई एवं पृथुल अन्तर्धारा बह रही है। वस्तु चयन, पात्रों के व्यक्तित्व, वातावरण, कथोपकथन और सारभूत प्रभाव - सभी में कविता का रंगीन स्पंदन है। प्रसाद ने अपनी रंगीन कल्पना के सहारे, दूर अतीत के बिखरे हुए प्रस्तुत खण्डों को एकत्रित कर उनमें प्राणों की कविता का रस भर दिया।"

प्रसाद जी के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं। अपनी कृतियों के उद्देश्य के विषय में लेखन ने 'विशाख' की भूमिका में स्वयं लिखा है- "इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है... क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें हमें पूर्ण संदेह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से

नोट्स

उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया।"

'अजातशत्रु' प्रसाद की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नाट्यकृति है। इसमें उन्होंने इतिहास और कल्पना का सुन्दर संयोग किया है। वस्तुतः नाट्यकला की दृष्टि से इसका विवेचन महत्त्वपूर्ण ही नहीं उपादेय भी है।

1. **कथावस्तुः** प्रसाद की नाट्यकला की सबसे बड़ी विशेषता है– नाटक की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय। प्रसाद भारतीय इतिहास के प्रति पूर्ण आस्था रखते हैं।

   इसीलिए उन्होंने इतिहास का गहन चिन्तन-मनन किया था। इसके लिए उन्होंने महाभारत युद्ध के बाद से लेकर हर्षवर्द्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास को अपना लक्ष्य बनाया है, क्योंकि यही भारतीय संस्कृति की उन्नति और प्रसार का स्वर्ण युग कहा जाता है। उनसे जहाँ तक संभव हुआ है, इतिहास की मूल प्रकृति का अनुसरण किया गया है और सुसंबद्धता स्थापित की गई है, परन्तु जहाँ कल्पना का प्रयोग नितान्त आवश्यक हो गया है वहाँ नाटककार को स्वतन्त्रता का भी प्रसाद जी ने उपयुक्त आश्रय लिया है। उनके प्रसिद्ध नाटक 'अजातशत्रु' की कथावस्तु में भी इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

   'अजातशत्रु' नाटक का सम्पूर्ण कथानक तीन अंकों में विभाजित है। पूरे नाटक में विरोध का वर्चस्व स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। इसका विरोध से ही आरम्भ होता है और विरोध का ही विस्तार दिखाया गया है, अंत में विरोध की समाप्ति हो जाती है। इसमें मुख्य घटनास्थल तीन हैं – मगध, कौशल और कौशांबी। जो विरोध की अग्नि मगध में प्रज्जवलित हुई, उसकी प्रचंडता कौशल में दिखाई पड़ी और उसकी लपट कौशांबी तक पहुँची है।

   सम्राट बिंबसार पारिवारिक कलह के अन्तर्गत पुत्र की उद्दंडता देखकर और अपनी छोटी रानी छलना की अधिकार-लोलुपता व कुमंत्रणा का विचार कर जीवन से उदासीन रहते हैं। यह विरक्ति पहले तो अन्तर्मुखी होती है लेकिन जब छलना अधिकारपूर्वक कुणिक (अजातशत्रु) के राज्याभिषेक की घोषणा करवा देती है तो वह उनके अन्तर्द्वन्द्व को व्यवहार क्षेत्र में ला खड़ा करता है। छलना और देवदत्त की मंत्रणा के फलस्वरूप ही अजातशत्रु राज्यभारत संभालने लग जाता है और बिंबसार इस कार्य से तटस्थ हो जाते हैं।

   सुदत्त जब मगध का यह समाचार कौशल-नरेश प्रसेनजित के पास पहुँचाता है तो सारी सभा में इसी घटना को लेकर विवाद खड़ा हो जाता है। युवराज विरुद्धक द्वारा अजातशत्रु के पक्ष का समर्थन करने पर महाराज प्रसेनजित क्रोधावेश में यह घोषणा कर देते हैं कि– "विरुद्धक युवराज पद से तथा उसकी माता शक्तिमती राजमहिषी पद से वंचित की जाती है।" इस प्रकार विरुद्धक पिता से विरोध की भावना लेकर राज्य का त्याग कर देता है और डाकू बन जाता है।

   कौशांबी में राजा उदयन मागंधी के षडयंत्र में पड़कर रानी पद्मावती के विरुद्ध हो जाते हैं। इस षडयंत्र का भेद खुलने पर मागंधी वहाँ से भागकर काशी में आकर वारविलासिनी बन जाती है। निष्कर्षतः सम्पूर्ण प्रथम अंक विरोधात्मक प्रयत्नों से आप्लावित है। इसके उपरांत संपूर्ण द्वितीय अंक में इसी विरोध का विस्तार और चरम सीमा दिखाई देती है। तृतीय अंक में इस व्यापक

विरोध का शमन है। प्रत्येक विरोधी दल अहंकार पाप-पूर्ण तुच्छ मनोवृत्ति पर पश्चाताप प्रकट करता है और अपनी भूल को सुधारने का प्रयास करता है।

आधार या स्रोत की दृष्टि से विद्वानों ने नाटक की कथावस्तु के तीन भेद किए हैं- (1) प्रख्यात (2) उत्पाद्य (3) मिश्रित। प्रख्यात कथावस्तु वह कहलाती है जिसका आधार इतिहास, पुराण और जनश्रुति होती है। 'अजातशत्रु' की कथावस्तु भी 'प्रख्यात' के अन्तर्गत आती है क्योंकि इसके अधिकांश पात्रों और घटनाओं का इतिहास ग्रंथों अथवा बौद्धों की जातक कथाओं में उल्लेख मिल जाता है। इसके अतिरिक्त नाटककार ने यत्र-तत्र अपनी कल्पना शक्ति के प्रयोग द्वारा भी कथावस्तु को रोचक बनाया है। वस्तुतः आलोच्य नाटक की कथावस्तु में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक अच्छे नाटक की कथावस्तु में माने जाते हैं।

2. **पात्र और चरित्र-चित्रण:** पात्र-योजना के संदर्भ में विचार करते हुए यह तथ्य आवश्यक माना जाता है कि किसी भी नाटक में इतने अधिक पात्र नहीं होने चाहिए कि दर्शकों के उनके नाम भी याद न हो सकें, पहचान की तो बात ही दूर रही। अगर आलोच्य नाटक को पात्र-योजना की कसौटी पर कसा जाए तो इसे एक सफल नाटक की श्रेणी में नहीं रख जा सकता। क्योंकि इसमें पुरुष एवं स्त्री पात्रों की संख्या लगभग 30 तक पहुँच गयी है। इतने अधिक पात्र होने के कारण उनके चारित्रिक विकास में भी बाधा उत्पन्न हुई है। इतने अधिक पात्र होने पर भी उन्होंने अपने नाटक में सशक्त पात्रों की सृष्टि कर उन्हें आकर्षक बनाया है। डॉ. गोविन्द चातक के अनुसार, "उनके नाटकीय पात्र जीवन की समस्त ऊष्मा, शक्ति और ईहा के साथ जीते हैं। उनकी चरित्र कल्पना केवल गुण-दोषों की कृत्रिम समष्टि पर आधारित न होकर सर्जन, संवहन और विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया से उद्भूत है।" प्रसाद ने विवेच्य नाटक में सद-असद दोनों प्रकार के पात्रों की सृष्टि की है क्योंकि समाज में दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां मिलती हैं। प्रस्तुत नाटक में सत् पात्र वे हैं जिनके चरित्र में अवगुणों की अपेक्षा सद्गुणों की प्रधानता है जैसे- मल्लिका, वासवी, गौतम, बिंबसार, बंधुल आदि। इसके विपरीत असद् पात्र वे हैं जो निम्न प्रकार के कार्यों में संलिप्त रहते हैं जिनमें श्यामा, छलना, देवदत्त और विरुद्धक सम्मिलित हैं। प्रसाद जी ने कुछ पात्रों के हृदय परिवर्तन को भी दिखाया है, जैसे- अजातशत्रु अपने द्वारा किए हुए दुर्व्यवहार के लिए अपने माता-पिता से क्षमा मांग लेता है, यही कार्य विरुद्धक भी दोहराता है और श्यामा (मागंधी) अन्ततः बौद्ध-भिक्षुओं की शरण में चली जाती है।

नाटक के प्रधान पात्र- नायक या नायिका में विद्यमान हैं। अजातशत्रु हो या अन्य नाटक, प्रसाद का नारी पात्रों के चरित्रांकन में विशेष झुकाव रहा है। इसी तथ्य को स्वीकारते हुए जयनाथ नलिन ने कहा है- "प्रसाद जी ने अपने हृदय की समस्त कोमलता, कल्पना की रंगीनी, भावना की स्निग्धता और कला की सफलता नारी चरित्रों के भव्य निर्माण में प्रस्तुत की है। पुरुष बुद्धि, कठोरता, वीरता और कर्म के प्रतीक हैं तो नारी भावुकता, भावना, सेवा, त्याग, मर्यादा, आस्था और आत्माभिमान की प्रतिमाएं हैं। प्रसाद की कवि-तूलिका ने नारी के अत्यन्त मनोहर चित्र उतारे हैं।" इस प्रकार समग्र विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक पात्र-योजना की दृष्टि से सफल नाटक है।

नोट्स

3. **संवाद या कथोपकथन:** संवाद नाटक का आवश्यक तत्त्व है। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और विविध घटनाओं का बोध संवादों के माध्यम से होता है। संवाद, सरस, संक्षिप्त, रोचक और कौतूहलवर्धक होने चाहिए। इस दृष्टि से प्रसाद का 'अजातशत्रु' नाटक पूर्णरूपेण सफल रहा है। इस नाटक के संवाद सरस, प्रवाहपूर्ण और प्रभावोत्पादक हैं। संवादों में काव्यात्मकता और दार्शनिकता का गुण भी विद्यमान है। यथा-

बिंबसार : "आह, जीवन की क्षणभंगुरता को देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है, और जीवन संग्राम में प्रवृत्त हो अनेक अकांड-तांडव करता है।"

प्रत्येक नाटक की सफलता के लिए इस बात पर बल दिया जाता है कि पात्रों के संवाद छोटे-छोटे तथा पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल होने चाहिए। प्रस्तुत नाटक की संवाद-योजना में ये गुण सर्वत्र विद्यमान हैं, यथा-

मागंधी : (दासी से) - आर्यपुत्र की हस्तिस्कंध-वीणा ले आओ।

उदयन : तब तक तुम्हीं कुछ सुनाओ।

मागंधी : मैं दासी हूँ प्रियतम।

उदयन : नहीं, तुम आज से मेरी स्वामिनी बनो।

(दासी वीणा लेकर आती है और उदयन के सामने रखती है। उदयन के उठाने के साथ ही सांप का बच्चा निकल पड़ता है। मागंधी चिल्ला उठती है।)

मागंधी : पद्मावती! तू यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है। मेरी जो शंका थी, वह प्रत्यक्ष हुई।

उदयन : (क्रोध से उठकर खड़ा हो जाता है) अभी इसका प्रतिशोध लूंगा। ओह! ऐसा पाखंड आचरण! असह्य!

प्रस्तुत संवाद से मागंधी की षडयंत्रकारी प्रवृत्ति का स्पष्ट संकेत मिल जाता है। आलोच्य नाटक में कथोपकथन चार प्रकार देखने को मिलते हैं- (1) पात्र का स्वयं का चरित्र प्रकट करने वाले।

(2) साधारण कथा-प्रसंग चलाने वाले।

(3) दूसरे पात्र का चरित्र चित्रित करने वाले।

(4) नाटककार के मन्तव्य को प्रकट करने वाले।

संवादों का मुख्य प्रयोजन कथानक को अग्रसर करना है एवं चरित्र-चित्रण में पूरा योग देना है। प्रसाद के नाट्य संवादों में दोनों प्रयोजन सर्वत्र सिद्ध होते हैं। नाटक में संवादों के अधिक बड़े हो जाने से व्यावहारिक यथार्थता का ह्रास हो जाता है। यदि प्रसाद के नाटकों में ऐसे स्थलों को विचारपूर्वक देखा जाए तो यह दोष प्रायः मिलेगा। इस दोष के दो कारण दिखाई पड़ते हैं। प्रथम यह जहाँ कहीं विवाद होने लगा है वहाँ अपने समस्त तर्कों को एक साथ प्रयोग करने की प्रवृत्ति

पात्र रोक नहीं सके हैं। यह वितर्क प्रवाह यदि खण्ड-खण्ड होकर आया होता तो वेग भी बढ़ जाता और यह दोष भी न रहता। जहाँ ऐसा हुआ है वहाँ धारावाहिकता का चमत्कार अवश्य उत्पन्न हो गया है परन्तु ऐसे स्थल न्यून हैं। द्वितीय कारण भावुकता से संबंधित है। भाव प्रवण पात्र अपनी बातचीत में कल्पना प्रधान भाव-भंगिमा का प्रयोग करते हैं, वस्तुतः विषय उपस्थित करने की शैली में ही विस्तार हो जाता है। बिंबसार के कथनों में इस प्रकार की भावुकता के दर्शन होते हैं।

4. **देशकाल और वातावरण:** नाटक में वास्तविक, सजीवता और गरिमा लाने के लिए अनुकूल वातावरण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपकरण है। देशकाल की परिस्थितियों, परम्पराओं और जीवन-पद्धतियों की दिग्दर्शिका वेषभूषा आदि का जितना अच्छा चित्रण नाटक में होगा उतनी ही सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता उसमें आ सकेगी। वातावरण के लिए भौगोलिक सीमाओं की भी पर्याप्त उपयोगिता है। ऐतिहासिक नाटक में वातावरण का सर्वाधिक महत्त्व है। इस प्रकार के नाटक वातावरण की रंगमात्र भी उपेक्षा करके नहीं चल सकते। वातावरण में देशकाल बाह्य है और मनोदशा आंतरिक, अतः दोनों ही प्रकारों की पूरी क्षमता नाटककार में आवश्यक है। जहाँ वातावरण पात्रों की मानसिकता एवं शारीरिक तैयारी में एक उष्णता और प्रवाह का संचार करता है, वहाँ दर्शकों एवं पाठकों की भी मानसिक तैयारी में सहायक सिद्ध होता है।

   प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं। अतः तत्कालीन देशकाल का सुन्दर निर्वाह उनके नाटकों में सर्वत्र देखा जा सकता है। प्रसाद जी ने स्वयं भी स्वीकार किया है- "मेरे नाटकों का उद्देश्य भारतीय इतिहास के उन अतीत पृष्ठों को साकार करना है जिनके विषय में हम अब तक अंधकार में पड़े थे।" उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण की सुन्दर एवं सजीव झांकी प्रस्तुत की है। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद ने बौद्धकालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का उत्कृष्ट चित्रण किया है। आलोच्य नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु का संबंध राजकुल से है, अतः प्रसाद जी ने राजघरानों में चलने वाले षडयंत्रों का बड़ा ही सजीव वातावरण प्रस्तुत किया है। इस षडयंत्र में मगध वंश की छोटी रानी छलना (चेल्लना), कौशांबी वंश में उदयन की रानी मागंधी (श्यामा), कौशल वंश में राजा प्रसेनजित की रानी शक्तिमती और देवदत्त का गौतम के प्रति षडयंत्र सम्मिलित है, जो उस समय के राजनीतिक वातावरण को प्रस्तुत करता है।

   पाश्चात्य नाटककारों ने नाटक में संकलनत्रय (स्थान, समय, कथावस्तु की एकता) पर बल दिया है, जिसका आलोच्य नाटक में अभाव परिलक्षित होता है। इसका कारण भी स्पष्ट है कि इसमें कौशल वंश, मगध वंश और कौशांबी वंश की 20.25 वर्ष की घटनाओं का चित्रांकन है। आलोच्य नाटक में संकलनत्रय का अभाव दर्शनों एवं पाठकों को कचोटता है।

   निष्कर्षतः देशकाल अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'अजातशत्रु' बौद्धकालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति को स्पष्ट करने में पूर्णत सफल है।

5. **अभिनेयता:** नाटक केवल मनोरंजनार्थ ही नहीं लिखा जाता बल्कि दर्शक-वर्ग भी उससे जुड़ा होता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि सुपाठ्य नाटक अभिनेय होता ही है। वास्तव में नाटककार

नोट्स

को नाट्य-सृजन करने से पूर्व यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उसे अभिनेय अवश्य होना चाहिए। उसमें कहीं भी ऐसे दृश्यों, घटनाओं और कथाओं का समावेश नहीं होना चाहिए। उसमें कहीं भी ऐसे दृश्यों, घटनाओं और कथाओं का समावेश नहीं होना चाहिए जिससे नाटक का अभिनय न किया जा सके। जहाँ तक प्रसाद के नाटकों का संबंध है तो उसमें अभिनेयता की दृष्टि से अनेक दोष पाए जाते हैं। सर्वप्रथम तो 'अजातशत्रु' के विस्तार की समस्या है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक अंक में क्रमशः 9, 10, 9 दृश्य समाहित हैं, जो दृश्य बदलने में बाधा उत्पन्न करते हैं, लेकिन आधुनिक रंगमंचों पर इतने दृश्यों को भी सरलता से मंचित किया जा सकता है। दूसरे, इस नाटक में गीतों का बाहुल्य है, किन्तु ये गीत कथावस्तु के विकास तथा पात्रों की मनोदशा के उद्घाटन में सहायक होने के कारण अवांछनीय प्रतीत नहीं होते। तीसरे, भाषा-शैली की क्लिष्टता भी अभिनेय में बाधक होती है। आलोच्य नाटक की भाषा-शैली सरल नहीं है लेकिन इतनी भी कठिन नहीं है कि उसे समझा ही न जा सके, यथा-

"अजातशत्रु : माँ क्षमा हो। युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियां विधवा हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्त्वमय चित्र न जाने किस षडयंत्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है। सभ्यता से मानव की जो पाशव-वृत्ति दबी हुई रहती है उसी को उत्तेजना मिलती है। युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है।"

चौथे, आलोच्य नाटक में रंगमंचीय संकेतों का थोड़ा-बहुत अभाव भी खलता है लेकिन इसमें प्रसाद की प्रतिभा का दोष न होकर परम्परा का ही दोष कहा जाएगा। अगर कोई अच्छा मंच-संचालक विवेक से काम ले तो रंग संकेतों के अभावों के बाद भी आलोच्य नाटक का सुन्दर मंचन कर सकता है। फिर भी प्रसाद जी से जहाँ तक बन पड़ा है वहाँ रंगमंचीय संकेत भी दिये हैं, यथा-

प्रसेनजीत : किंतु वह राष्ट्र का द्रोही है, क्यों धर्माधिकारी, उसका क्या दंड है?

धर्माधिकारी: (सिर नीचा करके) महाराज!

अजातशत्रु : जैसी माता की आज्ञा! (छलना तिलक और आरती करती है)

(नेपथ्य में रणवाद्य, विरुद्धक और अजात की युद्ध-यात्रा)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक में अभिनेयता की दृष्टि से भले ही कुछ दोष दिखाई दें लेकिन फिर भी इसे आधुनिक रंगमंच पर बड़े ही सुन्दर ढंग से मंचित किया जा सकता है।

6. **उद्देश्यः** प्रसाद के नाटकों का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय संस्कृति का चित्रण करना है। अतीत की गौरवपूर्ण झाँकी प्रस्तुत करते समय प्रसाद ने वर्तमान को श्रेष्ठ बनाने की प्रेरणा दी है। डॉ. महानन्द वर्मा का मत है- "प्रसाद की समस्त रचनाओं के पीछे एक स्वस्थ दृष्टिपूर्ण परिस्थितियों के बीच सुख प्राप्ति, समाजोत्कर्ष, देश-प्रेम, रुढ़िवाद का नाश, प्राचीन भारतीय संस्कृति का

आदर्श रूप, नारी-गौरव आदि आदर्शपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति प्रसाद जी के साहित्य में यत्र-तत्र देखने को मिलती है।"

उनके 'अजातशत्रु' नाटक में कोई एक उद्देश्य न होकर कई उद्देश्य दिखाई देते हैं। प्रथम तो उन्होंने उस समय के समाज पर बौद्ध संस्कृति के प्रभाव का चित्रण किया है। दूसरे, उन्होंने राजनीतिक सफलता-असफलता, षडयंत्र आदि को दिखाकर वर्तमान के लिए संदेश प्रस्तुत किया है। क्योंकि मानव ने सदैव ही अतीत से प्रेरणा पाकर वर्तमान को संवारा है। अत: उद्देश्य की दृष्टि से यह नाटक आज भी प्रासंगिक है।

7. **भाषा शैली:** प्रसाद की नाटकीय भाषा पर क्लिष्टता का आरोप लगाया जाता है। उसमें दुरूहता का दोषारोपण भी किया जाता है। परन्तु भाषा के संबंध में प्रसाद जी ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है, जिसे डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है- "भिन्न-भिन्न देश और वर्ग वालों से उनके देश और वर्ग के अनुसार भाषा का प्रयोग कराने से नाटक को भाषाओं का अजायबघर बनाना पड़ता है, जो कहीं अधिक अप्राकृतिक हो जाता है और सामाजिकों के लिए भी इतनी भाषाओं से परिचय रखना असंभव है। इसके अतिरिक्त इस विषय की अधिक आवश्यकता भी नहीं दिखाई पड़ती। न जाने कितने विदेशियों को हम अपनी ही तरह हिन्दी बोलते समझते पाते हैं। जहाँ अपनी भावुकता और कल्पना के बल पर हम इतने बड़े अभिनय को नकल और अभिनय न समझकर सच्ची घटना मानते हैं और उसी के साथ हंसते-रोते, सुख भाषा प्रकट करते हैं, वहाँ ऐसी बात व्यर्थ है। अतएव भाषा विविधता के लिए आग्रह न करना ही हितकर है। स्वरूप भिन्नत्व केवल वेषभूषा से ही व्यक्त कर देना चाहिए।"

इस प्रकार वे अपने नाटकों में अनेक भाषाओं का मिश्रण नहीं चाहते थे। यही कारण था कि इन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है, यथा-

मल्लिका : "चंद्र, सूर्य, शीतल, उष्ण, क्रोध, करुण, द्वेष, स्नेह का द्वंद्व संसार का मनोहर दृश्य है।... स्त्रियों का कर्तव्य है कि पाशववृत्ति वाले क्रूरकर्मी पुरुषों को कोमल तथा करुणाप्लुप करें, कठोर पौरुप के अनंतर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है- उस स्नेह, शीलतला, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा।"

शैली की दृष्टि से 'अजातशत्रु' में भावात्मक, आलंकारिक, सूक्ति-प्रधान, भावात्मक और हास्य-व्यंग्य पूर्ण शैली दृष्टिगोचर है। हास्य-व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

छलना : बेटी पद्मा! चल! इसी से कहते हैं कि सौत काठ की भी बुरी होती है - देखी निर्दयता - अजात को यहाँ न आने दिया!

वासवी : चल, चल, लड़ मत कंगालिन।

तात्विक दृष्टि से आलोच्य नाटक का समग्र विवेचन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि नाट्यकला की दृष्टि से 'अजातशत्रु' नाटक अत्यधिक सशक्त एवं सफल सिद्ध हुआ है। इसकी कथावस्तु, भाषा-शैली है तथा उद्देश्य की अनेकता और अभिनेयता की सफलता इसकी महत्ती विशेषता है। वस्तुत: 'अजातशत्रु' नाटक प्रसाद की नाट्यकला की श्रेष्ठ कृति है।

1.9 अजातशत्रु : संवाद योजना

नाटक के स्वरूप-विधान में संवादों को मूल विधायक तत्वों में माना जाता है, क्योंकि नाटक के समस्त कार्य-व्यापार को कथोपकथन ही संपादित करते हैं। यद्यपि प्रत्येक साहित्यिक विधा में संवादों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है लेकिन कथाकार की अपेक्षा नाटककार इस संदर्भ में कुछ अधिक प्रतिबद्ध रहता हैं कथाकार अपने भावों को अपने शब्दों में भी व्यक्त कर सकता है किन्तु नाटककार को इतनी स्वतन्त्रता नहीं होती। नाटककार तो पात्रों और उनके संवादों को ही अपने भाव-संप्रेषण का माध्यम बना सकता है, अपने कथनों से नहीं। इस प्रकार संवादों का सीधा संबंध पात्रों के चरित्र-चित्रण और कथावस्तु के विकास से है। नाटक में प्रयुक्त संवाद अधिक पात्रानुकूल, स्वाभाविक, संक्षिप्त, सरल एवं प्रभावोत्पादक होंगे, नाटकीय घटना और चरित्रों में उतनी ही सजीवता आएगी। नाटककार में चुस्त एवं प्रसंगानुकूल कथोपकथान प्रस्तुत करने की क्षमता होनी चाहिए क्योंकि गठे हुए कथोपकथनों से ही नाटक में चित्रित देशकाल एवं वातावरण को चित्रित किया जा सकता है। नाटक के पात्रों की आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों का साक्षात् चित्र भी संवादों के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक के उद्देश्य एवं समस्या को भी संवादों के माध्यम से ही उजागर किया जा सकता है। अतः संवादों के अभाव में नाटक की कथावस्तु भी निर्जीव हो जाती है। संवादों में भावी घटनाओं की ओर संकेत करने की क्षमता होनी चाहिए।

'अजातशत्रु' नाटक में प्रयुक्त संवादों के गुणों को हम निम्नलिखित उपशीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं, यही वर्गीकरण विवेचन की सुविधा की दृष्टि से ही किया जा रहा है-

1. **स्वाभाविकताः** 'अजातशत्रु' नाटक के संवाद स्वाभाविक तो हैं ही, साथ ही वे अत्यन्त सजीव भी हैं। उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता और अस्वाभाविकता दृष्टिगत नहीं होती। वे पाठक और दर्शक के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

   समुद्रदत्तः देवि! करुणा और स्नेह के लिए तो स्त्रियां जगत में हुई हैं, पुरुष भी क्या वही हो जायें?

   पद्मावतीः चुप रहो समुद्र! तथा क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है ऐसी चाटुक्तियां भावी शासक को अच्छी नहीं बनाती।

   छलनाः यह तुम्हारा अविचार हैं। कुणीक का हृदय छोटी-छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।

   पद्मावतीः माँ यह क्या कह रही हो! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुख की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊं? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फंसते देखूं और कुछ न कहूँ।

   छलनाः तो क्या तुम उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती हो! क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदंड ग्रहण कर सकता है?

2. **संक्षिप्तताः** नाटक में दीर्घ और संक्षप्ति दोनों प्रकार के संवाद प्रयुक्त होते हैं, किन्तु संक्षिप्त संवाद-योजना ही अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है। नाटक में प्रयुक्त लम्बे-लम्बे संवादक कथानक की रोचकता एवं नाटकीयता को समाप्त कर उसे उपदेशात्मक बना देते हैं। दीर्घ संवादों के कारण रंगमंच पर उपस्थित अभिनेताओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि जिस समय

एक पात्र दीर्घ संवादों का उच्चारण कर रहा होगा उस समय मंच पर उपस्थित शेष पात्रों को मूर्तिवत् खड़ा रहना पड़ता है। दूसरे, एक ही पात्र को दीर्घ समय तक बोलते रहने पर, दर्शक या पाठक ऊब जाता है। अतः जो संवाद जितना संक्षिप्त होगा, वह उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। 'अजातशत्रु' नाटक में अधिकतर संवाद संक्षिप्त ही हैं और कथा की गति को तीव्रता से आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं, संक्षिप्त संवादों का यह उदाहरण अवलोकनीय है-

श्यामा: शैलेन्द्र...

शैलेन्द्र: क्यों प्रिये!

श्यामा: प्यास लगी है।

शैलेन्द्र: क्या पियोगी?

श्यामा: जल!

शैलेन्द्र: प्रिये! जल तो नहीं है। यह शीतल पेय है- पी लो।

श्यामा: विष! ओह सिर घूम रहा है। मैं बहुत पी चुकी हूँ। अब...जल... भयानक स्वप्न! क्या तुम मुझे जलते हुए हलाहल की मात्रा पिला दोगे।

शैलेन्द्र: छि:! यह क्या कह रही हो? कोई स्वप्न देख रही हो? लो थोड़ी पी लो।

श्यामा: मैं अपने जीवन भर में तुम्हीं को प्यार किया है। तुम मुझे धोखा तो नहीं दोगे? ओह! कैसा भयानक स्थान। उसी स्वप्न की तरह...

शैलेन्द्र: क्या बक रही हो! सो जाओ, वन विहार से थकी हो।

श्यामा: क्यों यहाँ ले आए। क्या घर में सुख नहीं मिलता था?

शैलेन्द्र: कानन की हरी-भरी शोभा देखकर जी बहलाना चाहिए, क्यों तुम इस प्रकार बिछली जा रही हो।

इस प्रकार की संक्षिप्त संवाद-योजना नाटक में सर्वत्र देखी जा सकती है।

3. **पात्रों के चरित्र विकास में सहायक:** किसी भी नाटक के संवाद उसके पात्रों के चरित्र को विकसित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। संवादों के माध्यम से एक ओर पात्रों के स्वयं के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है तो दूसरी ओर नाटक के अन्य पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करने में सहायता मिलती है। क्योंकि नाटक में नाटककार अपनी ओर से किसी भी पात्र के संबंध में कुछ नहीं कहता। इसलिए वह अपने पात्रों के संवादों के माध्यम से ही उनके चरित्र का चित्रण करता है। नाटकों में प्राय: दो तरह के संवाद देखने को मिलते हैं-एक तो वे जो दो पात्रों के वार्तालाप द्वारा उन्हीं के चरित्र की विशेषताओं को उजागर करते हों और दूसरे वे जो दो पात्रों के वार्तालाप द्वारा किसी तीसरे व्यक्ति की चारित्रिक दुर्बलता-सबलता का परिचय देते हों। प्रसाद जी ने 'अजातशत्रु' में दोनों ही प्रकार के संवादों का प्रयोग किया है। सर्वप्रथम वार्तालाप करने वाले पात्रों के निजी चरित्रांकन में सहायक संवाद-योजना का उदाहरण दृष्टव्य है-

नोट्स

छलना: शैलेन्द्र नाम के डाकू ने द्वंदयुद्ध में आह्वान करके फिर धोखा देकर कौशल के सेनापति को मार डाला। सेनापति के मर जाने से सेना घबरायी थी, उसी समय अजात ने आक्रमण कर दिया और विजयी हुआ-काशी पर अधिकार हो गया।

वासवी: तब इतना घबराती क्यों हो? अजात को रण-दुर्म्मद साहसी बनाने के लिए ही तो तुम्हें इतनी उत्कंठा थी। राजकुमार को तो ऐसी उद्धत शिक्षा तुम्हीं ने दी थी, फिर उलाहना क्यों?

छलना: उलाहना क्यों न दूं-जबकि तुमने जान-बूझकर यह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे नहीं दबा सकती थी, क्योंकि वह तो तुम्हारे पिता से तुम्हें मिला हुआ प्रांत था।

वासवी: जिसने दिया था, यदि वह ले ले, तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसे न लौटा दूं? तुम्हीं बताओ कि मेरा अधिकार छीनकर जब आर्यपुत्र ने तुम्हें दे दिया, तब भी मैंने कोई विरोध नहीं किया था?

छलना: यह ताना सुनने मैं नहीं आयी हूँ! वासवी, तुमको तुम्हारी असफलता सूचित करने आयी हूँ!

बिंबसार: तो राजमाता को कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी? यह तो एक सामान्य अनुचर भी कर सकता था।

छलना: किंतु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेशा भी अच्छी तरह से नहीं कहता। वासवी के मुख की प्रत्येक सिकुड़न पर इस प्रकार लक्ष्य न रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही करता।

उपर्युक्त उदाहरण में वासी के कथनों से उसकी विनम्रता, शालीनता और अहिंसाप्रियता का पता चला है, जबकि छलना के कथनों को सुनकर दर्शकों को यह परिचय मिल जाता है कि वह एक हिंसाप्रिय और कुटिल बुद्धि की नारी है।

अब एक ऐसा उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें वार्तालाप के समय किसी अन्य पात्रों की चारित्रिक दुर्बलता-सबलता का उद्घाटन होता है।

वासवी: यह तुम्हारी उदारता है, किंतु हम लोगों को किस बात की शंका है जो तुम व्यस्त हो?

जीवक: निष्ठुर देवदत्त के कुचक्र से महाराज की जीवन-रक्षा होनी ही चाहिए।

बिंबसार: आश्चर्य! यह मैं नया सुन रहा हूँ! जीवक! मुझे भ्रांति में न डालो, विष का घड़ा मेरे हृदय पर न ढालो। भला अब मेरे प्राण से मगधा-साम्राज्य का क्या संबंधा? देवदत्त, मुझसे क्यों इतना असंतुष्ट है?

जीवक: बुद्धदेव की प्रतिद्वंदिता ने उसे अंधा कर दिया है-महत्त्वाकांक्षा उसे एक गर्त में गिरा रही है। उसकी यह आशा तब तक सफल न होगी, जब तक आप जीवित रहकर गौतम की प्रतिष्ठा बढ़ाते रहेंगे और उनकी सहायता करते रहेंगे।

बिंबसार: मूर्खता, नहीं-नहीं, यह देवदत्त की क्षुद्रता है। भला आत्मबल या प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल से विश्व में खड़ी होती है, अपना अवलंब वह स्वयं है, इसमें मेरी इच्छा या अनिच्छा क्या? वह दिव्य-ज्योति स्वतः सबकी आंखों को आकर्षित कर रही है। देवदत्त का विरोध उसे केवल उन्नति दे सकेगा।

जीवक: देव! फिर जो भी ईर्ष्या की पट्टी आंखों पर चढ़ाये हैं, वे इसे देख नहीं सकते। अब मुझे क्या आज्ञा है, क्योंकि यह जीवन अब आप ही की सेवा के लिए-उत्सर्ग है।

उपर्युक्त उदाहरण में देवदत्त की क्षुद्रता व ईर्ष्या की भावना की अभिव्यक्ति हुई है तथा गौतम के दिव्य व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं।

4. **सरल और स्पष्ट:** 'अजातशत्रु' के संवाद कुछ स्थलों को छोड़कर सरल और स्पष्ट हैं दुरूहता नाटक के कथ्य को प्रभावहीन बना देती है। संवादों की सरलता नाटक की अभिनेयता में भी सहायक है। पद्मावती, अजातशत्रु, वासवी और छलना का यह संवाद उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है-

पद्मावती: माँ! बहुत हुआ, अन्यथा तिरस्कार न करो। मैं आज ही चली जाऊंगी।

वासवी: वत्स कुणीक! कई दिनों से तुमको देखा नहीं! मेरे मन्दिर में इधर क्यों नहीं आए? कुशल तो है?

अजातशत्रु: नहीं माँ, मैं तुम्हारे यहाँ नहीं आऊंगा, जब तक पद्मा घर न जाएगी। वासवी: क्यों! पद्मा तो तुम्हारी बहिन ही है। उसने क्या अपराध किया है? वह तो बड़ी सीधी लड़की है।

छलना: (क्रोध से) वह सीधी और तुम सीधी। आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा, और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।

वासवी: छलना! बहिन! यह क्या कह रही हो? मेरे वत्स कुणीक! प्यारा कुणीक! हां भगवन् मैं उसे देखने न पाऊंगी? मेरा क्या अपराध।

5. **कथानक के विस्तार में सहायक:** कथानक के विस्तार का अभिप्राय है कि कथा के आगे बढ़ने के साथ-साथ उसके पिछले रहस्यों का ज्ञान भी दर्शकों को हो जाए तथा जो कथानक की विशृंखलित कड़ियों को जोड़ने का काम करता है। प्रसाद जी ने भी आलोच्य नाटक में इस प्रकार के संवादों का प्रस्थापन किया है। कथानक के विस्तार से संबंधित एक उदाहरण दृष्टव्य है-

रानी: अच्छा तो प्रबंध ठीक करो। सहायता मैं दूंगी। पर यहाँ भी अच्छा खेल हुआ। कारायण: हम लोग भी तो उसी को देखने आए हैं। आश्चर्य! क्या जाने कैसे वह स्त्री जी उठी। नहीं तो अभी ही गौतम का सब महात्मापन भूल जाता।

रानी: अच्छा हम लोगों को शीघ्र चलना चाहिए, सब जनता नगर की ओर जा रही है। देखो, सावधान रहना। मेरा रथ भी बाहर खड़ा होगा।

कारायण: कुछ सेना अपने निज की प्रस्तुत कर लेता हूँ, जो कि राजसेना से बराबर मिली-जुली रहेगी और काम के समय हमारी आज्ञा मानेगी।

रानी: और भी एक बात कहनी है-कौशांबी का दूत आया है। सम्भवत: कौशांबी और कौशल की सेना मिलकर अजातशत्रु पर आक्रमण करेंगी। उस समय तुम क्या करोगे?

कारायण: उन वीरों की तरह मगध पर आक्रमण करूँगा और संभवत: इस वार अवश्य अजातशत्रु को बंदी बनाऊंगा। अपने घर की बात अपने घर में ही निपटेगी।

नोट्स

इस उदाहरण में किए गए वार्तालाप द्वारा नाटककार ने पात्रों के संबंध में आवश्यक सूचनाएं प्रदान करके कथानक का विकास किया है। प्रथम सूचना तो यही है कि जिस श्यामा नामक स्त्री को मृतप्रायः समझकर उठा लाए थे, उसका जीवित होना। दूसरे, कारायण द्वारा प्रसेनजित पर आक्रमण करने के लिए अपनी गुप्त सेना का संगठन करना तथा अन्य सूचनाएं भी समाहित हैं।

संवादों के माध्यम से ऐसी घटना या तथ्यों की सूचना दिलवा दी जाती है, जिनको रंगमंच पर दिखाना असंभव रहता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

दासीः महाराज भागिए। महादेवी हटिए – वह देखिए आग की लपट इधर ही चली आ रही है, नयी महारानी के महल में आग लग गई है – और उनका पता नहीं है।

नवीना मरती हुई कह रही थी कि मागंधी स्वयं मरी और मुझे भी उसने मार डाला– वह महाराज का सामना नहीं करना चाहती थी।

उदयनः क्या षडयंत्र! अरे क्या मैं पागल हो गया था। देवि! अपराध क्षमा हो– (पद्मावती के सामने घुटने टेकता है।)

पद्मावतीः उठिए, उठिए महाराज! दासी को लज्जित न कीजिए।

वासवदताः यह प्रणय-लीला दूसरी जगह होगी – चलो हटो, यह देखो लपट फैल रही है।

पहलाः जब भगवान् से भिक्षुओं ने कहा कि देवदत्त आपके प्राण लेने आ रहा है, उसे रोकना चाहिए...।

दूसराः तब?

पहलाः तब इन्होंने यही कहा कि घबराओ नहीं, देवदत्त मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। वह स्वयं मेरे पास नहीं आ सकता, उसमें इतनी शक्ति नहीं, क्योंकि उसमें द्वेष है।

दूसराः फिर क्या हुआ?

पहलाः यही कि देवदत्त समीप आने पर प्यास के कारण उस सरोवर में जल पीने उतरा। कहा नहीं जा सकता कि उसे क्या हुआ – कोई ग्राह पकड़ ले गया कि उसने लज्जा में डूबकर आत्महत्या कर ली। वह फिर दिखाई न पड़ा।

उपर्युक्त प्रथम संवाद में नाटककार ने दर्शकों को इस तथ्य की सूचना दे दी कि मागंधी अपने महल में आग लगाकर मर गई है और दूसरे संवाद में देवदत्त भी तालाब में डूबकर मर चुका है। तालाब और आग के दृश्य को मंच पर नहीं दिखाया जा सकता इसीलिए नाटककार को इस प्रकार के संवादों का सहारा लेना पड़ा है।

6. **पात्रानुकूल संवाद :** नाटक के संवाद पात्रों के बौद्धिक स्तर, पद और गरिमा के अनुरूप ही होने चाहिएं। पात्र की प्रकृति, उसके स्वभाव, उसके कृतित्व और पद की अभिव्यक्ति संवादों के माध्यम से ही हो जाती है। यदि किसी ग्रामीण या अशिक्षित पात्र के मुख से शुद्ध परिमार्जित व परिनिष्ठित भाषा से युक्त संवाद का प्रयोग करवाया जाएगा तो उससे पात्र के चरित्र-चित्रण व कथानक के विकास में दोष आ जाता है। अजातशत्रु में वीरोचित महानता है, शक्तिमती

एवं छलना में ईर्ष्या, द्वेष एवं कपट की भावना है, देवदत्त और समुद्रगुप्त में प्रतिहिंसा की भावना है, मल्लिका और गौतम में क्षमा की प्रधानता है- इन पात्रों की प्रवृत्ति के अनुरूप ही नाटककार ने संवादों की योजना की है। निम्नलिखित उद्धरण में मल्लिका की क्षमाशीलता का पता चलता है-

मल्लिका: कारायण! यह तुम्हारे सम्राट हैं - जाओ, इन्हें राजधानी तक सकुशल पहुँचा दो, मुझे तुम्हारे बाहुबल पर भरोसा है, और चरित्र पर भी।

प्रसेनजित: कौन कारायण, सेनापति बंधुल का भागिनेय?

कारायण: हां श्रीमान! वही कारायण अभिवादन करता है।

प्रसेनजित: कारायण! माता ने आज्ञा दी है, तुम मुझे कल पहुँचा दोगे? देखो जननी की यह मूर्ति! विपद में बच्चे की तरह उसने मेरी सेवा की है। क्या तुम इसमें भक्ति करते हो? यदि तुमने इन दिव्य चरणों की भक्ति पायी है, तो तुम्हारा जीवन धान्य है।

(मल्लिका का पैर पकड़ता है।) **मल्लिका:** उठिये सम्राट! उठिये! मर्यादा भंग करने का आपको भी अधिकार नहीं है।

7. **मनोरंजनपूर्णता :** 'अजातशत्रु' नाटक में 'प्रसाद जी' ने छलना और वासवी के प्रसंग को जोड़कर हास्य और मनोरंजन का पुट भी रखा है। यद्यपि इस मनोरंजन के अन्तर्गत व्यंग्यात्मक बहुत ही सुन्दर हास्य की अवतारणा हो गई है। उदाहरण अवलोकनीय है-

पद्मावती: माँ! छोटी माँ पूछती है, क्या मेरा अपराध क्षम्य है?

वासवी: (मुस्करा कर) - कभी नहीं, इसने कुणीक को उत्पन्न करके मुझे बड़ा सुख दिया, जिसका इस छोटे-से हृदय से मैं उपभोग नहीं कर सकती। इसलिए मैं इसे क्षमा नहीं करूंगी।

छलना: (हंसकर) - तब तो बहिन, मैं भी तुमसे लड़ाई करूंगी, क्योंकि मेरा दुःख हरण करके तुमने मुझे खोखली कर दिया। हृदय हल्का होकर बेकाम हो गया। अरे, सपत्नी का काम तो तुम्हीं ने कर दिखाया। पति को तो बस में किया ही था, मेरे पुत्र को भी गोद में ले लिया। मैं...।

वासवी: छलना! तू नहीं जानती, मुझे एक बच्चे की आवश्यकता थी इसलिए तुझे नौकर रख लिया था - अब तो तेरा काम नहीं है।

छलना: बहिन, इतनी कठोर न हो जाओ।

वासवी: (हंसती हुई) - अच्छा जा, मैंने तुझे अपने बच्चे की धात्री बना दिया। देख, अबकी अपना काम ठीक से करना, नहीं तो फिर...।

8. **काव्यात्मक संवाद :** प्रसाद स्वाभावत: कवि थे, इसी से उनके सभी नाटकों में काव्यात्मकता का गुण विद्यमान है। 'अजातशत्रु' में काव्यात्मक शैली के अनेक संवादों की योजना की गई है। **श्यामा के संवादों में काव्यात्मकता देखते ही बनती है-**

श्यामा: (स्वगत) - रात्रि चाहे कितनी भयानक हो - किंतु प्रेममयी मरणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती। वह देखो, पवन मानो किसी डर से धीरे-धीरे सांस ले रहा है -

नोट्स

किसी आतंक से पक्षिवृंद अपने घोंसलों में जाकर छिप गए हैं। आकाश आपस में इंगित कर रहे हैं! संसार किसी भयानक समस्या से निमग्न-सा प्रतीत होता है।

श्यामा: स्वर्ण-पिंजर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा - जो उसे हरी डालों पर कसैले फलों को चखने में मिलता है? मुक्त नील गगन में अपने छोटे-छोटे पंख फैलाकर जब वह उड़ती है, तब जैसी उसकी सुरीली तान होती है उसके सामने तो सोने के पिंजड़े में उसका गान क्रंदन ही है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'अजातशत्रु' के संवाद नाटकीय संवादों की सभी विशेषताओं से युक्त है। ये स्वाभाविक और मार्मिक होने के साथ-साथ सरलता, सशक्तता, वेगपूर्णता और प्रवाहमयता के गुणों से परिपूर्ण भी है। प्रसाद का कवि हृदय भी उनमें स्थल-स्थल पर प्रकट हुआ है। संवादों के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का भी उद्‌घाटन होता है। पात्रों के कथोपकथन से उनके स्वयं के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार 'अजातशत्रु' नाटक में प्रयुक्त संवाद अपने उपर्युक्त गुणों के कारण विशिष्ट बन गए हैं और जयशंकर प्रसाद के उत्कृष्ट संवाद-कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

1.10 अजात शत्रु : देशकाल और वातावरण

साहित्य में - विशेष रूप से कथा साहित्य में - देशकाल एवं वातावरण की संयोजना करना आवश्यक होता है, इसीलिए इसे एक पृथक तत्व के रूप में स्वीकृति मिली है। नाटक के अन्तर्गत तो देशकाल एवं वातावरण का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि बिना उपयुक्त देशकाल का निर्माण किए नाटककार अपने अभिप्रेत अथवा वर्ण्य-विष्य को संप्रेषित करने में असमर्थ रहता है। देशकाल की सृष्टि किए बिना उसका कथानक पंगु-सा हो जाता है। पात्रों का आचार-व्यवहार, उनके कार्य-व्यापार, वस्त्राभूषण विधान और उनकी भाषा आदि के प्रति नाटककार यदि सजग नहीं है तो वह अपने में यथार्थता और सजीवता की सृष्टि कदापि नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि उसे जिस युग के कथानक को प्रस्तुत करना होगा है, बिना उपर्युक्त सतर्कताओं के वह उसे युगानुकूल रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाएगा। यहाँ नाटककार की सूझबूझ, उसका अनुभव और परिवेश-सृष्टि की सामर्थ्य ही उसके नाटक को सफल से सफलतम बनाने में योगदान देती है। ऐतिहासिक नाटकों में तो बिना उचित देशकाल के चित्रण के कथ्य सम्प्रेषित हो ही नहीं सकता। वास्तव में ऐतिहासिक नाटकों का देशकाल चित्रण ऐसे नाटकों का प्राणतत्व होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटक में जिस काल विशेष की कथा प्रस्तुत की जा रही हो तो उसमें उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का भी सफलता के साथ चित्रण होना पहरिहार्य है। इसमें तनिक सी असावधानी ऐतिहासिक नाटक को असफलता की ओर मोड़ देती है।

प्रसाद के नाटक भारतीय इतिहास के उस अध्याय को लेकर चले हैं जो अपनी सर्वतोमुखी सम्पन्नता के कारण 'स्वर्णयुग' कहलाता है। यह काल भारतीयों के राजनीतिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक और धार्मिक उत्कर्ष की चरम सीमा है। अत: उनके नाटकों में उन विषयों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उन्होंने अपने नाटकों में देशकाल की सीमाओं को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है। इसी तथ्य पर बल देते हुए आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने कहा है- "वे इतिहास को केवल कुछ राजाओं एवं कतिपय तिथियों में

ही सीमित नहीं करते। वे तो इतिहास को मानव निर्मित संस्थाओं, उनके सामूहिक उद्योगों, मनोवृत्तियों और रहन-सहन की पद्धतियों के साथ देखना चाहते हैं और मनुष्य की इन सारी प्रगतियों का केन्द्र समसामयिक दर्शन मानते हैं।" इसी प्रकार डॉ. नगेन्द्र ने प्रसाद के देशकाल-वातावरण योजना की प्रशंसा व्यक्त करते हुए कहा है- "उन्होंने वातावरण की सृष्टि इतने सजीव रूप से की है कि मौर्य एवं गुप्तकालीन भारतीय जीवन हमारे सामने चित्रित हो जाता है - फिर से हम आज की पश्चिम-मिश्र- संस्कृति और उससे पहले की मुस्लिम संस्कृति और उससे भी पूर्व की सामंतीय संस्कृति, इन तीनों को लांघकर आर्य-संस्कृति की छाया में पहुँच जाते हैं। यह पुनरुत्थान इतने सहज ढंग से होता है कि दो हजार वर्ष का महान अन्तराल एक साथ तिरोहित हो जाता है। प्रसाद का दृश्य-विधान ही नहीं, उनके पात्रों के नाम, वेशभूषा, चरित्र और बातचीत सभी देशकाल के अनुकूल हैं।

प्रसाद जी के आलोच्य नाटक में बौद्धकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक वातावरण के संबंध में निम्नलिखित स्थितियों का चित्रण हुआ है, अर्थात् 'अजातशत्रु' नाटक में चित्रित देशकाल एवं वातावरण को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. **तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का चित्रण:** 'अजातशत्रु' नाटक में मुख्यत: तीन शासक प्रसेनजित, उदयन और बिंबसार क्रमश: तीन राज्यों से जुड़े हुए हैं- कौशल, कौशांबी और मगध। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि बौद्ध काल की राजनीति में स्थिरता का अभाव था। उस समय के राजकुमारों में राज्य के उत्तराधिकारी की तीव्र इच्छा रहती थी, भले ही इसके लिए उन्हें अपने पिता को ही सिंहासन से क्यों न उतारना पड़े। नाटक में अजातशत्रु ने भी अपने पिता बिंबसार को वानप्रस्थ आश्रम की ओर अग्रसर करके स्वयं सिंहासन की बागडोर संभाली। आलोच्य नाटक के अंत में अजातशत्रु को पिता का हत्यारा सिद्ध किया है। दूसरी ओर कौशल नरेश प्रसेनजित के पुत्र विरुद्धक की भी यही इच्छा थी कि वह अजातशत्रु की भांति सिंहासन पर बैठे। उस समय के शासक ऐसी स्थिति में कठोर नीतियों का आश्रय लेकर विद्रोही राजकुमारों की इच्छाओं का दमन कर देते थे। विरुद्धक और प्रसेनजित के मध्य हुए वार्तालाप से राजनीति का यह रूप स्पष्ट है-

   विरुद्धक : मैंने तो सुना है कि महाराज बिंबसार ने वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किया है और उस अवस्था में युवराज का राज्य संभालना अच्छा ही है।

   प्रसेनजित : विरुद्धक! क्या अजात की ऐसी परिपक्व अवस्था है कि मगध नरेश उसे साम्राज्य का बोझ उठाने की आज्ञा दें?

   विरुद्धक : पिताजी! यदि क्षमा हो तो मैं यह कहने में संकोच न करूंगा कि युवराज को राज्य संचालन की शिक्षा देना महाराज का ही कर्त्तव्य है।

   प्रसेनजित : (उत्तेजित होकर) - और आज तुम दूसरे शब्दों में उसी शिक्षा को पाने का उद्योग कर रहे हो। क्या राज्याधिकार ऐसी प्रलोभन की वस्तु है कि कर्त्तव्य और पितृभक्ति एक बार ही भुला दी जाए।

   विरुद्धक : पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार मांगे, तो उसमें दोष ही क्या है?

नोट्स

प्रसेनजित : अभी से इसका गर्व तोड़ देना चाहिए – (प्रकट) – आज से यह निर्भिक किंतु अशिष्ट-बालक अपने युवराज पद से वंचित किया गया। और, इसकी माता का राजमहिषी का-सा सम्मान नहीं होगा-केवल जीविका-निर्वाह के लिए उसे राजकोष से व्यय मिला करेगा।

इस प्रकार पिता द्वारा अपमानित होकर वह राज्य छोड़कर चला जाता है और अजातशत्रु को अपने राज्य पर युद्ध करने के लिए आमंत्रित करता है। निष्कर्षतः प्रसाद जी आलोच्य नाटक में उस समय की राजनीतिक गतिविधियों को पृष्ठबद्ध करने में सफल रहे हैं।

2. **धार्मिक परिस्थितियों का चित्रणः** 'अजातशत्रु' नाटक में वर्णित तीनों राज्यों में बौद्ध धर्म क छवि स्पष्टतः परिलक्षित होती है। गौतम के उपदेशों का जादू प्रत्येक व्यक्ति के सिर चढ़कर बोल रहा था। रंक से लेकर राजा तक उससे प्रभावित थे, इसीलिए मगध नरेश बिंबसार गौतम के आगमन पर उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

> **करुणामूर्ति हिंसा से रंगी हुई वसुन्धरा आपके चरणों के स्पर्श**
> **से अवश्य ही स्वच्छ हो जाएगी। उसकी कलंक-कालिमा ध**
> **ुल जाएगी।''**
>
> **''भगवान की शांति वाणी की धारा-प्रलय की नरकाग्नि**
> **को भी बुझा देगी- मैं कृतार्थ हुआ।''**

दूसरी ओर कौशांबी नरेश उदयन और उनकी पत्नी पद्मावती एवं वासवदत्ता भी गौतम के उपदेशों को सुनती हैं, इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए स्वयं उदयन कहते हैं–

> **''मगध से गौतम नाम के महात्मा आए हैं, जो अपने को 'बुद्ध'**
> **कहते हैं। देवी पद्मावती के मंदिर में उनका संघ निमंत्रित होता था**
> **और वे उपदेश देते थे। महादेवी वासवदत्ता भी वहाँ नित्य आती थी।''**

मागंधी : (बात काटकर) तब फिर मुझे क्यों पूछा जाए।

उदयन : (आदर से) – नहीं-नहीं, यह तो तुम्हारी भूल थी, बुलवाने पर भी नहीं आयी। वाह! सुनने के योग्य उपदेश होता था। अभी तो कई दिन होगा। हमने अनुरोध किया है कि वे कुछ दिनों तक ठहर कर कौशांबी में धर्म का प्रचार करें।''

गौतम का बिंबसार पर इतना अधिक प्रभाव था कि उसने गौतम का आदेश मानकर अपने राज्य-सिंहासन पर अजातशत्रु को बिठा दिया और स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया–

गौतम : तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो। क्यों राजकुमार, तुम राज्य का कार्य मंत्रिपरिषद की सहायता से चला सकोगे।

इससे स्पष्ट है कि संत और सिद्ध पुरुष अपने-अपने धार्मिक विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से विभिन्न राज्यों की राजनीतिक गतिविधियों में भी हस्तक्षेप करते रहते थे। देवदत्त जैसे धर्म प्रचारक का तो राजनीतिक हस्तक्षेप इस हद तक बढ़ गया था कि निर्मल, शान्त एवं सुप्रवृत्ति के संत गौतम को भी ढोंगी करार दे दिया–

देवदत्त : वत्स मैं तेरी कार्यवाही से प्रसन्न हूँ। हां फिर क्या हुआ – क्या अजात का राजतिलक हो गया?

समुद्रगुप्त : शुभ मुहूर्त में सिंहासन पर बैठना ही शेष है और परिषद का कार्य तो उनकी देख-रेख में होने लगा। कुशलता से राजकुमार ने कार्यारम्भ किया है, किन्तु गौतम यदि न चाहते तो यह कार्य सरलता से न हो सकता।

देवदत्त : फिर उसी ढकोसले वाले ढोंगी की प्रशंसा! अरे समुद्र, यदि मैं इसकी चेष्टा न करता, तो यह सब कुछ न होता – लिच्छिवी कुमारी में इतना मनोबल कहाँ कि वह यों अड़ जाती।

वस्तुतः देवदत्त द्वारा उकसाई जाने पर छलना ने अपने पुत्र अजातशत्रु के लिए राज्य की हठ की थी। वह राज्य की गतिविधियों में हस्तक्षेप करते हुए अपनी दुष्ट चालों से ऐसी स्थिति लाने का प्रयास करता है, जिससे उसके धर्म की शिक्षाओं के प्रचार में कोई बाधा उत्पन्न न हो और उसके विरोधी धर्म प्रचारक राज्य से निष्काषित कर दिए जाएं। देवदत्त की तो यही आकांक्षा थी कि उसे राजदरबार में बुलाया जाए, जिससे वह अजातशत्रु से अपनी इच्छा के अनुकूल व्यवहार करवा सके। जब समुद्रदत्त यह बताता है कि युवराज की इच्छा है कि आपके सदुपदेश से राज्य सुशासित हो तो दिखवटी उत्तर देते हुए देवदत्त कहता है–

"यह झंझट भला मुझ विरक्त से कहाँ होगा। फिर भी
लोकोपकार के लिए तो कुछ करना ही पड़ता है।"

सामान्यतया उस समय भिक्षुओं का सम्मान ही किया जाता था, इस बात का प्रमाण है– गौतम बुद्ध का आलोच्य नाटक में सर्वत्र सम्मान होते चित्रित किया गया है। प्रसाद जी ने गौतम को प्रभावशाली पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। उस युग की वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने अजातशत्रु को इतना प्रभावशाली नहीं बनाया जितना गौतम और मल्लिका को। इस प्रकार अजातशत्रु में जिस वातावरण को चित्रित किया है, वह बौद्ध धर्म के वर्चस्व का काल था और इसका प्रभाव पूरे समाज पर देखा जा सकता है।

3. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का चित्रणः** जहाँ तक सामाजिक स्थिति का प्रश्न है तो हम कह सकते हैं कि उस युग में स्त्रियों को समान महत्त्व प्राप्त था। वे राजनीति में भी भाग लेती थीं। जब वासवी कौशल में कैद अजात को छुड़वाने के लिए जाती है तो छलना को मगध का सिंहान सौंपते हुए कहती है–

"वासवी : देखो, राज्य में आतंक न फैलने पावे। दृढ़ होकर मगध का शासन करना। किसी को भी कष्ट न हो।"

उस समय में वेश्यावृत्ति का भी प्रचलन था। राजा उदयन की रानी मागंधी अपने पति को छोड़कर काशी में श्यामा नामक वेश्या के रूप में जीवन-यापन करते हुए चित्रित की गयी है। छल-छदम् करने में वे डाकुओं से भी खतरनाक होती है, इस तथ्य का पता शैलेन्द्र के कथन से चलता है–

नोट्स

"तुमसे मिलने में मैं इसीलिए डरता था कि तुम रमणी हो और
वह भी वारविलासिनी; मेरा विश्वास है कि ऐसी रमणियां
डाकुओं से भी भयानक हैं।"

शैलेन्द्र के इस कथन की सत्यता तब सिद्ध होती है जब श्यामा अपने पर आशक्त समुद्रदत्त को अपने प्रेमी शैलेन्द्र के जीवन की रक्षा हेतु उसे बलि का बकरा बना देती है-

श्यामा : "जाओ बलि के बकरे, जाओ! फिर न आना। मेरा शैलेन्द्र - प्यारा शैलेन्द्र।"

समुद्रदत्त दण्डनायक के पास मुद्राएं लेकर जाता है, तो पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार ही दण्डनायक शैलेन्द्र को मुक्त करके समुद्रदत्त को शूली पर चढ़ा देता है। इतने पर भी शैलेन्द्र उस पर विश्वास नहीं करता। वह कहता है-

शैलेन्द्र : "(स्वगत) - सो गयी! आह! हृदय में एक वेदना उठती है- ऐसी सुकुमार वस्तु! नहीं-नहीं! किंतु विश्वास के बल पर ही इसने समुद्रदत्त के प्राण लिए! यह नागिन है, पलटते देर नहीं।"

उस समय में राजघरानों के अन्तर्गत बहु-विवाह की प्रथा भी थी, जिससे सौतिया डाह के कारण उनमें विवाद भी चलता रहता था। मागंधी और पद्मावती के मध्य इसीलिए तनाव हो जाता है क्योंकि मागंधी को यह बात अच्छी नहीं लगती कि महाराज उदयन उसके महल की अपेक्षा पद्मावती के महल में अधिक जाते रहते हैं, इसीलिए वह पद्मावती को महाराज की नजरों से गिराने के लिए षडयंत्र रचती है। वह उद्यन से कहती है कि- "स्त्रियों के मन्दिर में उपदेश क्यों हो- उन्हें पतिव्रत छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है? ठीक इसी प्रकार कि सौतिया-डाह राजा बिंबसार की रानी वासवी और छलना के बीच दिखाई देती है। छोटी रानी छलना बात-बात पर बड़ी रानी वासवी को नीचा दिखाने का प्रयास करती रहती है और व्यंग्यमयी शब्दावली में बात करती है। उदाहरणस्वरूप अजातशत्रु और पद्मावती दोनों भाई-बहिन के साधारण से वाद-विवाद में छलना क्रोधपूर्ण वाणी में बात करती है-

अजातशत्रु : "नहीं मां, मैं तुम्हारे यहाँ नहीं आऊंगा, जब तक पद्मा घर न जाएगी। वासवी : क्यों! पद्मा तो तुम्हारी ही बहिन है। उसने क्या अपराध किया है? वह तो बड़ी सीधी लड़की है।

छलना : (क्रोध से) वह सीधी और तुम सीधी! आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा, और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।

उस समय विवाह के अवसर पर पिता की ओर से पुत्री को दहेज देने की प्रथा भी थी। कौशल-नरेश ने अपनी पुत्री वासवी के विवाह के अवसर पर काशी प्रांत को दहेज में प्रदान किया था। जब तक बिंबसार मगध के राजसिंहान पर आसीन रहे तब तक काशी की आय पर उसी का अधिकार रहा। दहेज देने की पुष्टि स्वयं वासवी के कथन से होती है- "काशी का राज्य मुझे, मेरे पिता, आंचल में दिया है, उसकी आय आपके हाथ में आनी चाहिए और मगध-साम्राज्य की एक कौड़ी भी आप न छुएं।

गौतम बुद्ध के समय में प्रेम विवाह भी होते थे। बाजिरा और अजातशत्रु का प्रेम विवाह, मागंधी का गौतम से प्रेम और विवाह न कर पाने की पीड़ा और जीवन में उसका भटकाव इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

इस प्रकार देखने में आता है कि प्रसाद जी ने आलोच्य नाटक में सामाजिक वातावरण का जो चित्र खींचा है उसे देखकर उस युग का सम्पूर्ण वातावरण हमारी आंखों के समक्ष घूम जाता है। आलोच्य नाटक में भारतीय संस्कृति के चित्रण से संबंधित डॉ. बच्चन सिंह का मत है- "मौर्यकालीन कथानक में उनका अपना युग बोलता है, गुप्तकालीन कथानक में उनके समय की प्रतिच्छवियां देखी जा सकती हैं। इन प्रतिच्छवियों में भारतीय संस्कृति का गत्यात्मक और आदर्शात्मक स्वरूप चित्रित हुआ है।" अगर हमें अपने इतिहास और संस्कृति की एक साथ जानकारी चाहिए तो प्रसाद के नाटकों से अच्छा विकल्प कोई दूसरा नहीं हो सकता। अतः प्रसाद के नाटक हमारी संस्कृति के अध्ययन के लिए भी उपयोगी हो गये हैं।

4. **आर्थिक स्थितिः** तत्कालीन यगु में सम्पर्ण उर्वरा भूमि पर राजा का ही अधिकार होता था। प्रजा से धन वसूल करने के लिए सभी नगरों में दण्डनायक नियुक्त किए जाते थे। राजघरानों में रहने वाले व्यक्ति निर्धनों की उपेक्षा ही करते थे। छलना के संवाद से इस कथन की पुष्टि होती है-

> **"पद्मा! तू क्या इसकी मंगल की कामना करती है? इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भद्दी सीख है? जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दंड के आधार पर है। क्या तुझे नहीं कालूम कि वह भी हिंसा मूलक है।**

अतः कहा जा सकता है कि 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद देश-काल की सीमाओं को सुरक्षित रखा है। भारतीय सभ्यता, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक पद्धतियों का सफल चित्रण आलोच्य नाटक के अन्तर्गत हुआ है। इस प्रकार आलोच्य नाटक में प्रसाद जी को देशकाल और वातावरण की दृष्टि से अविश्वसनीय सफलता अर्जित हुई है।

1.11 अजातशत्रु : अभिनेयता

नाटक का सृजन मूलतः अभिनयक के लिए ही होता है किन्तु कुछ नाटक कथानक और शैली के लिए भी लिखे जाते हैं। यद्यपि नाटक की पूर्णता अभिनय में ही है और अभिनय योग्य नाटकों में रंगमंच की आवश्यकताओं और प्रभाव का ध्यान रखा जाता है, लेकिन फिर भी अभिनय के अभाव में हम किसी भी नाटक को हेय नहीं ठहरा सकते। जो नाटक साधारण रंगमंच और दर्शकों के लिए अभिनय योग्य न समझा जाए वह एक विर्दग्ध समाज में अभिनेय हो सकता है।

'प्रसाद' जी के अधिकांश नाटक रंगमंच की दृष्टि से दोषपूर्ण और अव्यावहारिक हैं। कुछ तथ्य ऐसे हैं जो इस कथन के अनुकूल हैं और कुछ प्रतिकूल हैं। किसी भी नाटक के लिए यह कोई बड़े श्रेय की

नोट्स

बात नहीं की उनका अभिनय न हो सके। अठारहवीं शती तक नाटकों का संबंध मात्र रंगमंच से था किन्तु पाश्चात्य नाट्य शास्त्र के सम्पर्क के बाद नाटकों को पाठ्य रूप में भी ग्रहण किया जाने लगा। आलोचक इस तथ्य को विस्मृत करके प्रसाद के नाटकों की गणना अभिनेय की श्रेणी में नहीं करते। इस संबंध में स्वयं प्रसाद का कथन विचारणीय है- "मेरी रचनाएं तुलसीदत्त शैदा या आगा हश्र की व्यावसायिक रचनाओं के साथ नहीं नापी तोली जानी चाहिए। मैंने उन कम्पनियों के लिए नाटक नहीं लिखे हैं जो चार चलते अभिनेताओं को एकत्र कर कुछ पैसा जुटाकर चार परदे मंगनी मांग लेती है और दुअन्नी-अठन्नी के टिकट पर इक्के वाले, खोमचे वाले और दुकानदारों को बटोर कर जगह-जगह प्रहसन करती फिरती है। ... यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरुचि सम्पन्न सामाजिक हो और पर्याप्त कथन से स्पष्ट है कि आधुनिक रंगमंच पर प्रसाद के नाटकों की रंगमंचीय क्षमता पर प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

प्रसाद और रंगमंच: प्रसाद की आलोचना करते हुए आलोचकों की दृष्टि शुद्ध साहित्यिक न होकर पारसी रंगमंच से प्रभावित थी। आधुनिक भारतीय रंगमंच पर उनके सभी नाटक मंचित हो सकते हैं। इस विषय में स्वयं प्रसाद का मत है- "रंगमंच की बाह्य बाधकता पर हम विचार करते हैं तो उसके इतिहास से यह प्रकट हो जाता है कि काव्यों के अनुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमंचों की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाधित नहीं हुए अर्थात् रंगमंच को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा और प्रत्येक काल में माना जाएगा कि काव्यों के अथवा नाटकों के लिए ही रंगमंच होते हैं। काव्य की सुविधा जुटाना ही रंगमंच का काम है। रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक है।"

प्रसाद के इस कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने अभिनय का ध्यान अवश्य रखा था, परन्तु वे तत्कालीन पारसी थियेटरों के कुरुचिपूर्ण अभिनय से असंतुष्ट थे। वे साहित्यिक एवं कलात्मक नाटकों द्वारा अभिनय के स्तर और रंगमंच में सुधार लाने के पक्षपाती थे। उनका विचार था कि "रंगमंच पर सुशिक्षित एवं कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है। देशकाल की प्रवृत्तियों का समुचित अध्ययन भी आवश्यक है। फिर तो पात्र रंगमंच पर अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकेंगे। इन सबके सहयोग से ही हिन्दी रंगमंच अभ्युत्थान संभव है।"

अजातशत्रु और अभिनय शिल्प: कुछ विद्व् ान अभिनय और रंग मंच को एक ही मानते हैं किन्तु वास्तव में दोनों पृथक-पृथक तत्त्व हैं। रंगमंच के अन्तर्गत नाटकीय दृश्य विधान हैं और अभिनय में पात्र तथा उसके कार्य-व्यापार आते हैं। अभिनय को चार भागों में विभक्त किया जाता है-

1. **आंगिक (कायिक) अभिनय:** इसके अन्तर्गत अंगों द्वारा किया गया अभिनय आता है। इस प्रकार के अभिनय के संकेत प्रस्तुत नाटक में स्थान-स्थान पर विद्यमान हैं, यथा-

   श्यामा : (जगकर) - शैलेन्द्र! विश्वास! देखो कहीं... ओह भयानक ... (आँखें बंद कर लेती है)

   शैलेन्द्र : तब देर क्या? कहीं कोई आ जाएगा! फिर - (श्यामा का गला घोंटता है, वह क्रंदन करके शिथिल हो जाती है) बस चलें, पर नहीं, धन भी आवश्क है। (आभूषण उतार कर ले जाता है)

2. **वाचिक अभिनय:** पात्रों द्वारा वाणी से भावों की अभिव्यक्ति को वाचिक अभिनय कहा जाता है। इस अभिनय के उदाहरण तो नाटक में सर्वत्र विद्यमान हैं-

3. **सात्विक अभिनयः** रोमांच, भय, अश्रु, आश्चर्य और उत्सुकता आदि का प्रदर्शन ही इस प्रकार के अभिनय के अन्तर्गत आता है। जैसे-

   शक्तिमती : (क्रोध से) – मल्लिका- सावधान! मैं जाती हूँ!

   मागंधी : आज, आज मुझे बड़ा काम करना है, नवीना! नर्तकियों को शीघ्र बुला। मेरी वेश-भूषा ठीक है न – देख तो-

   उद्यन : (क्रोध से) पापीयसी, देख ले यह तेरे हृदय का विष-तेरी वासना का निष्कर्प जा रहा है। इसीलिए न यह नया झरोखा है।

   पद्मावती : (चौंककर खड़ी हो जाती है हाथ जोड़कर) – प्रभु! स्वामी! क्षमा हो!

4. **आहार्य अभिनयः** वेशभूषा या मेकअप को आहार्य अभिनय कहा जाता है। इस प्रकार के अभिनय का विवेच्य नाटक में अभाव है। इसे नाटककार ने निर्देशक के बुद्धि-कौशल पर छोड़ दिया है, लेकिन फिर भी प्रसाद जी ने कुछ संकेत अवश्य दिये हैं, यथा-

   "वर-वधु के वेश में अजातशत्रु और बाजिरा तथा ... कारायण का प्रवेश।"

   निष्कर्षतः 'अजातशत्रु' नाटक में प्रथम तीन प्रकार के अभिनय के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस दृष्टि से यह एक सफल नाट्य कृति है।

   'अजातशत्रु' में रंगमंचीयता और अभिनेयताः 'प्रसाद' की नाट्यकला पर अनेक प्रकार के आरोप लगाए गए हैं और उन्हें अभिनेयता की दृष्टि से सफल नहीं माना गया किन्तु 'अजातशत्रु' नाटक में रंगमंच और अभिनेयता संबंधी अनेक दोषों का परिहार हुआ है। इसका अभिनय सरलतापूर्वक किया जा सकता है क्योंकि इसमें वे सभी गुण हैं जो एक सफल रंगमंचीय नाटक में होते हैं। आधुनिक युग में नाटक को रंगमंच पर अभिनीत करने के लिए आदर्श-अवधि दो से ढाई घंटे मानी जाती है। पात्रों की संख्या कम हो तथा दर्शकों को ऊबा देने वाले लम्बे संवाद न हों और नाटक की भाषा सरल एवं सहज होनी चाहिए ताकि सामान्य दर्शक भी उसका आनन्द ले सकें। 'अजातशत्रु' नाटक की अभिनेयता को उपर्युक्त गुणों की कसौटी पर परखते समय निम्नलिखित बिन्दुओं में विभाजित कर सकते हैं अर्थात् अभिनय की सफलता की दृष्टि से इसकी कई विशेषताएं हैं-

1. **कथानकः** 'अजातशत्रु' में तीन अंक एवं 28 दृश्य विद्यमान हैं जो कथानक के विस्तार और आदर्श अवधि में रंगमंच पर अभिनीत न होने की सूचना दे रहे हैं। तीनों अंकों में क्रमशः 9ए 10, 9 दृश्य समाहित हैं। प्रसाद जी ने इन दृश्यों का विभाजन दोषपूर्ण किया है क्योंकि सभी दृश्यों की घटना भिन्न-भिन्न स्थलों से संबंधित है जो नाटक के मंचन में समस्या पैदा करती है। किन्तु यह दोष पौराणिक रंगमंचों के आधार पर उजागर हुआ है, अगर आधुनिक रंगमंच पर विवेच्य नाटक का अभिनय किया जाए तो यह समस्या सामने नहीं आएगी क्योंकि दृश्यों को बदलने के लिए घूमने वाले सैटों का प्रयोग किया जा सकता है। इससे प्रस्तुत नाटक का मंच पर सफल अभिनय संभव है।

नोट्स

प्रस्तुत नाटक का कथानक प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है जिसे समझने और कथासूत्र में जोड़ने में दर्शकों को अधिक मनोयोग की आवश्यकता नहीं होती। अत: कथानक की दृष्टि से रंगमंचीय परिवेश में यह एक सफल नाटक है।

2. **पात्रों की दृष्टि से:** 'अजातशत्रु' नाटक में पात्रों की संख्या लगभग तीस तक पहुँच गयी है जिसमें पुरुष और स्त्रियों की लगभग बराबर-बराबर ही है। किसी भी नाट्य-कृति में इतने अधिक पात्रों के कारण उसके मंचन में बाधा उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है। इतने अधिक पात्र अगर एक-साथ रंगमंच उपस्थित कर दिए जाएं तो दर्शकों को इतने अधिक पात्रों का परिचय याद रख पाना संभव नहीं। लेकिन फिर भी नाटक में मुख्य पात्रों के संवाद ही अधिक हैं और दर्शकों के समक्ष कुछ स्थलों को छोड़कर चार या पाँच पात्र ही उपस्थित होते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक में भले ही पात्रों की संख्या अधिक हो लेकिन फिर इसका भली-भांति सफल मंचन संभव है।

3. **कथोपकथन (संवाद) की दृष्टि से:** प्रस्तुत नाटक कथोपकथन या संवादों में तीव्रता और गतिमयता है। इसके कथोपकथन कुछ-एक स्थानों को छोड़कर संक्षिप्त, सुन्दर और सुबोध हैं। वे पात्रानुकूल भी हैं, इसलिए उनमें स्वाभाविकता है। उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में होने के कारण उनमें व्यावहारिकता भी है। संक्षिप्त संवादों का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

श्यामा : शैलैन्द्र ...

शैलेन्द्र : क्यों प्रिये!

श्यामा : प्यास लगी है।

शैलेन्द्र : क्या पियोगी?

श्यामा : जल!

शैलेन्द्र : प्रिये! जल तो नहीं है। यह शीतल पेय है – पी लो।

नाटककार ने आलोच्य नाटक में कुछ स्थानों पर लम्बे-लम्बे स्वगत कथनों को रखा है, जिन्हें नाटक के मंचन में बाधा माना जाता है लेकिन नाटक में आए ऐसे कथन समय और स्थिति की मांग थे- जो उसके मंचन में बाधक नहीं हैं, यथा-

शैलेन्द्र : (स्वगत) – काशी के उस संकीर्ण भवन में छिपकर रहते-रहते चित्त घबरा गया था। समुद्रदत्त के मारे जाने का मैं ही कारण था, इसलिए प्रकाश्य रूप से अजातशत्रु से मिलकर कोई कार्य भी नहीं कर सकता। इस पामरी की गोद में मुंह छिपाकर कितने दिन बिताऊं? हमारे भावी कार्यों में अब यह विघ्नस्वरूप हो रही है। यह प्रेम दिखाकर मेरी स्वतंत्रता हरण कर रही है। अब नहीं, इस गर्त में अब नहीं गिरा रहूँगा। कर्मपथ के कोमल और मनोहर कंटकों को कठोरता से, निर्दयता से- हटाना ही पड़ेगा। तब, आज से अच्छा समय कहाँ।"

4. **गीत-योजना की दृष्टि से:** प्रसाद के नाटकों में गीतों की अधिकता व्यवधान उत्पन्न करती है। आलोच्य नाटक में भी गीतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है जो नाटक के मंचन में बाधा उत्पन्न करते हैं। 'अजातशत्रु' में छोटे-बड़े लगभग 22 गीत गाए गए हैं जो संवादों द्वारा

प्रस्तुत भावों के प्रवाहमयता में बाधा उत्पन्न करते हैं। संवादों में भी दार्शनिकता एवं काव्यत्मकता विद्मान है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं गीत पूर्वापर संबंध जोड़ने और पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वंदन को प्रस्तुत करते हैं लेकिन अल्पावधि के बाद पुनः एक गीत का आ जाना प्रस्तुत रचना की नाटकीयता को भंग करता है। अतः अलोच्य नाटक में गीतों की अधिकता उसके मंचन में बाधक है। कुछ गीतों की भाषा भी बड़ी क्लिष्ट है-

चंचल चंद्र, सूर्य है चंचल, चपल सभी ग्रह तारा हैं।
चंचल अनिल, अनल, जल, थल, सब चंचल जैसे पारा हैं।
जगत प्रगति से अपने चंचल, मन की चंचल लीला है।
प्रतिक्षण प्रकृति चंचला जैसी यह परिवर्तनशीला है।
अणु परमाणु, दुःख-सुख चंचल, क्षणिक सभी सुख-साधन हैं।
दृश्य सकल नश्वर-परिणामी-किसको दुःख, किसको धन है?
क्षणिक सुखों को स्थायी कहना दुःख-भूल यह भूल महा।
चंचल मानव! क्यों भूला तू, इस सीठी में सार कहाँ?

5. **भाषा की दृष्टि से :** प्रसाद के नाटकों पर भाषागत क्लिष्टता का यह आरोप लगाया जाता है कि वे शुद्ध संस्कृनिष्ठ भाषा के कारण पाठक एवं दर्शकों के लिए क्लिष्ट हो गए हैं। वस्तुत नाटक में भाषा का अभिप्राय विभिन्न पात्रों द्वारा अपने भाव व विचारों की अभिव्यक्ति है जो संवादों के माध्यम से होती है। इन संवादों में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों की प्रेषणीयता से उनमें एक ही नवीन चमत्कार उत्पन्न होता है जो नाटक को एक विशिष्ट धरातल पर स्थापित कर देता है। प्रस्तुत नाटक की संवाद-योजना में शब्दों का चयन जनता की योग्यता और नाटक के व्यापार पर आश्रित है। यद्यपि यह माना जाता है कि नाटक की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो राजा-प्रजा, निर्धन-धनी, बालक-वृद्ध और पुरुष-स्त्री सभी की समझ में आ सके। उसमें आम बोल-चाल की भाषा का प्रयोग होना चाहिए, लेकिन प्रसाद जी ने आलोच्य नाटक में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है जो सामान्य जनता की समझ से बाहर है। किन्तु नाटककार अपने जिस संदेश को पाठक वर्ग या दर्शक-वर्ग तक पहुँचाना चाहता है वह वर्ग इसी प्रकार की भाषा की अपेक्षा करता है। प्रसाद के नाटकों के दर्शक या पाठक सामान्य जन न होकर विशिष्ट वर्ग (शिक्षित-वर्ग) ही हैं जिन्हें इस प्रकार की भाषा को समझने में कोई मुश्किल नहीं है। अतः भाषा की क्लिष्टता के उपरान्त भी इसे रंगमंच पर सफलता से मंचित करके इसके संदेश को पाठकों तक सम्प्रेषित किया जा सकता है।

6. **दृश्य योजना की दृष्टि से :** 'अजातशत्रु' नाटक को तीन अंकों और 28 दृश्यों में विभाजित किया गया है। इन दृश्यों में प्रकोष्ठ या महल के दृश्य आठ बार, राजसभा के दृश्य चार बार, पथ के दृश्य पाँच बार, उपवन के दृश्य पाँच बार, श्यामा, बंधुल एवं बिंबसार के गृह के दृश्य तीन बार, कुटी का दृश्य दो बार और एक बंदी गृह का दृश्य आया है। इस प्रकार 28 दृश्यों को 7 दृश्यों के निर्माण द्वारा सम्पूर्ण नाटक को अभिनीत किया जा सकता है। सभी दृश्य लघु हैं, जिसके कारण नाटक के प्रस्तुतीकरण में भी बाधा उपस्थित नहीं होती।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भले प्रसाद जी के इस नाटक पर लम्बे स्वगत कथनों, घटना विस्तार, भाषा की क्लिष्टता, दृश्य बहुलता एवं गीतों की प्रचुरता के कारण इसकी रंगमंचीयता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाया है लेकिन आधुनिक रंगमंच पर इसका सफल मंचन इन आक्षेपों को निराधार कर देता है। वस्तु विधान, संवाद, दृश्य संयोजन, रंग निर्देश आदि सभी बातों से इसकी रंगमंचीयता ही प्रकट होती है। वस्तुतः आधुनिक रंगमंच पर 'अजातशत्रु' का सफल मंचन हो सकता है।

1.12 अजातशत्रु : प्रतिपाद्य/उद्देश्य

रचनाकार अपने प्रतिपाद्य का संप्रेषण अपने पाठकों तक करना चाहता है उसे ही उद्देश्य या संदेश कहते हैं। लेखक के मन में अपने युग और समाज से संबंधित अनेक समस्याएं सन्निहित रहती हैं जो उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए कचोटती रहती हैं। जब रचनाकार इन्हें अपनी किसी रचना में माला के मनकों की तरह पिरोकर प्रस्तुत करता है तब यही लेखकीय दृष्टिकोण कहलाता है। इसी संदर्भ में संस्कृत में एक उक्ति मिलती है- 'प्रजोजनमनुद्दश्य मन्डो*पि न प्रवर्तते' अर्थात् कोई मूर्ख व्यक्ति भी बिना उद्देश्य के किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। इसी प्रकार एक रचनाकार भी अपनी कृति का सृजन करते समय एक या एकाधिक उद्देश्यों को लेकर चलता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार नाटकों में रस को प्रधानता दी गयी हे और पाश्चात्य परम्परा में उद्देश्य को। हमारे यहाँ रस का सर्वप्रथम विवेचन नाटक के संदर्भ में किया गया था। यहाँ रस को काव्य की आत्मा के रूप में मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया है। नाटक के अन्तर्गत एक रस प्रधान होता है और अन्य गौण। रचनाकार का मुख्य कार्य प्रधान रस के उत्कर्ष का वर्धन करना ही होता है। दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों में कोई न कोई उद्देश्य व्यक्त या अव्यक्त रूप में समाहित रहता है। वह किसी प्रकार की जीवन मीमांसा या विचार सामग्री के रूप में आता है। इस उद्देश्य का संबंध जीवन के आंतरिक और बाह्य संघर्षों से होता है। यही संघर्ष पाठकों को उद्देश्य के ग्रहण करने के लिए तत्पर कर देता है।

प्रसाद जी के नाटकों में 'उद्देश्य' नामक तत्त्व का विशिष्ट महत्त्व है। इस संबंध में डॉ. चक्रवर्ती का मत उल्लेखनीय है- "प्रसाद के नाटक केवल रस को ही दृष्टि में रखकर विवेचित करना उचित नहीं है, अपितु महान उद्देश्यों की व्यंजना करना भी उनका ... महत्त्वपूर्ण विषय है। क्योंकि प्रसाद साहि य की अन्तरात्मा के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद केवल युग प्रवर्तक साहित्यकार ही नहीं, अपितु इतिहास के साधारण अन्वेषक, भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक, आर्य ऋषियों के उदात्त और समन्वयवादी धर्म के सबल समर्थक तथा भारतीय परम्परा के मानवतावादी दार्शनिक भी थे। अतः आर्य ऋषियों की सांस्कृतिक उपलब्धियों, धार्मिक चेतनाओं और दार्शनिक उपपत्तियों को साहित्यिक उपादानों में रूपान्तरित कर उन्होंने लोकमंगलमय साहित्य की सृष्टि की।"

प्रसाद जी ने 'अजातशत्रु' में भी अपने महान उद्देश्यों की व्यंजना की है, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है-

1. **अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा:** जयशंकर प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास की घटनाओं के माध्यम से वर्तमान को सुधारने का प्रयास किया है। इस

कथन की पुष्टि उनके 'विशाख' नामक नाटक की भूमिका के दिये गये वक्तव्य से भी हो जाती है- "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।"

प्रसाद जी द्वारा दिये गये उपर्युक्त वक्तव्य के आलोक में कहा जा सकता है कि 'अजातशत्रु' नाटक में नाटककार ने मगध, कौशांबी और कौशल आदि तीनों राज्यों के आंतरिक झगड़ों को दिखाकर इस गृह-कलह से दूर रहने का संदेश दिया है। मगध राज्य का कलह दो प्रकार का दिखाया गया है- सपत्नियों के मध्य चलने वाला ईर्ष्या-द्वेष तथा पुत्र द्वारा बलपूर्वक पिता के सिंहासन को प्राप्त करने का प्रयास। मगध नरेश बिंबसार की दोनों पत्नियों के मध्य यह गृह-कलह वास्तविकता को प्रदर्शित करता है-

छलना : (क्रोध से) वह सीधी और तुम सीधी! आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा, और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।

वासवी : यह मैं क्या देख रही हूँ। छलना! यह गृह विद्रोह की आग तू क्यों जलाना चाहती है? राजपरिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं?

प्रसाद जी ने वासवी के मुख से यह उद्देश्य भी दिलवा दिया है कि हमें आन्तरिक झगड़ों की अपेक्षा सुख-शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए-

> **बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में, कुल-लक्ष्मी**
> **हो मुदित, भरा हो मंगल उसके जीवन में। बंधुवर्ग हो सम्मानित,**
> **हों सवेक सुखी, प्रणत अनुचर, शांतिपूर्ण हो स्वामी का मन,**
> **तो स्पृहणीय न हो क्यों घर?**

नाटककार ने मगध नरेश बिंबसार को राज्य-सिंहान के प्रति मोह में जकड़ा हुआ दिखाया है। प्रसाद जी ने बिंबसार की सिंहासन-लिप्सा प्रवृत्ति के माध्यम से वर्तमान राजनीतिकों के प्रति अमूल्य संदेश संप्रेषित किया है-

> **"आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभावत समझने लगता है, और जीवन संग्राम में प्रवृत्त हो अनेक अकांड-तांडव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अंधकार की गुफा में ले जाकर उसके शांतिमय-रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है, किंतु वह कब मानता है! मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है; अपनी नीची, किंतु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता; नीचे से ऊंचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या?"**

नोट्स

वर्तमान राजनीति में भी इसी तरह ऊंचे से ऊंचा पद प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है और जीवन के अन्तिम क्षणों में वह खाली हाथ ही ऊपर चला जाता है। अतः मानव को पद के प्रति आकर्षण न होकर सभी की भलाई करने की ही इच्छा मन में रहनी चाहिए।

प्रसाद जी के जीवक के माध्यम से यह संदेश संप्रेषित किया है कि मानव को विकट या विषम परिस्थितियों से हार मानकर नहीं बैठना चाहिए-

"नियति की डोरी पकड़कर मैं निभय कर्मकूप में कूद सकता है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा, फिर कायर क्यों बनूं? कर्म से विरत-क्यों रहूँ"

नाटककार ने छलना और बिंबसार के पति-पत्नी के झगड़े को केन्द्र में रखकर गौतम द्वारा वाक्संयम का संदेश दिया है-

"शीतल वाणी- मधुर व्यवहार से- क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते? राजन् संसार-भर के उपद्रवों का मूल व्यंग है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक्सुसंयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है।"

उन्होंने एक और मुख्य संदेश को पाठक एवं दर्शकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है, वह है- युद्ध की भयानकता दिखकर उससे दूर रहने की प्रेरणा दी है। उनका यह संदेश आज के विध्वंसकारी युग में अत्यधिक प्रासंगिक है। अजातशत्रु के माध्यम से नाटककार ने कहा है-

"युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियां विधवा हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्त्वमय चित्र न जाने किस षडयंत्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है। सभ्यता से मानव की जो पाशव-वृत्ति दबी हुई रहती है उसी को उत्तेजना मिलती। युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है।"

इन संदेशों के अतिरिक्त भी प्रसाद जी प्रस्तुत नाटक में अनेकों संदेशों को पाठकों तक पहुँचाया है ताकि वे इन ऐतिहासिक तथ्यों से वर्तमान को उज्ज्वल बना सकें।

2. **संस्कृति उद्देश्यः** प्रसाद ने 'संस्कृति' शब्द को अर्थ व्यापक रूप में गह्ण किया है। वे संस्कृति को सौंदर्य बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा मानते हैं। इसका उपयोग मानव-समाज में व्यक्तियों के सीमित मनोभावों को सदा प्रस्तुत एवं विकासोन्मुख बनाने के लिए होता है। अतः संस्कृति का सामूहिक चेतना से, मानसिक शील और शिष्टाचारों एवं मनोभावों से मौलिक संबंध है।

डॉ. रामसेवक पाण्डेय के अनुसार- "संस्कृति में जहाँ कुछ शाश्वत एवं परंपरागत तत्वों का समावेश है वहीं वह गतिशील है। ... संस्कृति मानव-समूह के उन उदात्त गुणों को सूचित करती है जो सार्वत्रिक और व्यापक कहते हुए भी उस समूह की विशिष्टतता प्रकट करते हैं।" इस प्रकार संस्कृति संस्कारों का वह इतिहास है जिनके द्वारा किसी जाति, वर्ग अथवा देश के संस्कारों को अभिव्यक्ति प्राप्त होती है एवं जिसमें परम्परागत आचार, व्यवहार, विश्वास, अनुभव, रुचि एवं नियमों का समावेश होता है।

डॉ. रामसेवक पाण्डेय के अनुसार- "संस्कृति में जहाँ कुछ शाश्वत एवं परंपरागत तत्वों का समावेश है वहीं वह गतिशील है। ... संस्कृति मानव-समूह के उन उदात्त गुणों को सूचित करती है जो सार्वत्रिक और व्यापक कहते हुए भी उस समूह की विशिष्टता प्रकट करते हैं।" इस प्रकार संस्कृति संस्कारों का वह इतिहास है जिनके द्वारा किसी जाति, वर्ग अथवा देश के संस्कारों को अभिव्यक्ति प्राप्त होती है एवं जिसमें परम्परागत आचार, व्यवहार, विश्वास, अनुभव, रुचि एवं नियमों का समावेश होता है।

जयशंकर प्रसाद भारतीय संस्कृति पर विदेशी शासकों द्वारा आरोपित पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभावों से चिंतित थे। वस्तुतः भारत की विकृतियों का लाभ उठाकर प्रसाद युग में भी विदेशी सत्ता भारत वर्ष को पद दलित कर रही थी। प्रसाद ने अपने नाटकों में इतिहास के प्रायः उन्हीं युगों का चयन किया जिसमें संस्कृति के सद् और असद् रूप में संघर्ष व्याप्त था।

'अजातशत्रु' के असद् पात्र छलना, मागंधी (श्यामा), देवदत्त, विरुद्धक अपने दुष्कृत्यों के लिए खेद का अनुभव करते हैं। मल्लिका भारतीय संस्कृति के उदार भाव का आश्रय लेती हुई अपने पति के हत्यारे प्रसेनजित को सहज भाव से माफ कर देती है:

प्रसेनजित : मुझे धिक्कार दो-मुझे शाप दो-मल्लिका! तुम्हारे सुखमंडल पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिह्न भी नहीं है। जो तुम्हारी इच्छा हो कहो, उसे मैं पूर्ण करूंगा-

मल्लिका : (हाथ जोड़कर) कुछ नहीं महाराज! आज्ञा दीजिए कि आपके राज्य से निर्विघ्न चली जाऊं, किसी शांतिपूर्ण स्थान में रहूँ।"

मल्लिका भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही विधवा होने पर पुनः विवाह नहीं करती। वह विरुद्धक के प्रेम को ठुकरा देती है। विरुद्धक उसे अपनी भावनाओं के माध्यम से पिघलाने का प्रयास करते हुए कहता है-

विरुद्धक : "क्यों नहीं मर जाने दिया? क्यों इस कलंकी जीवन को बचाया और अब .. .।

मल्लिका : तुम इसलिए नहीं बचाये गये कि फिर भी एक विरक्ता नारी पर बलात्कार और लंपटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित करो-अपने को सुधारो।"

इसी प्रकार मगध नरेश की बड़ी रानी भी भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही पति द्वार राज्य त्याग कर जाते समय उसकी सेवा हेतु उसके साथ कुटिया में चली जाती है। वह सांसारिक सुखों का त्याग कर कानन में पति सेवा करके ही सम्पूर्ण सुखों का आनंद लेती है।

इस प्रकार प्रसाद अपने सांस्कृतिक उद्देश्य के प्रस्थापन में पूर्णतः सफल हुए हैं।

3. **सिंहासन के प्रीति आकर्षण:** प्रसाद जी ने 'अजातशत्रु' नाटक में मगध नरेश बिंबसार और कौशल नरेश प्रसेनजित का वृद्धावस्था में भी सिंहासन के प्रति आकर्षण दिखाया है। दोनों ही अपने पुत्रों को ही सिंहान नहीं सौंपना चाहते क्योंकि सिंहासन का नशा मानव को अंधा बना देता है, जो इनके साथ भी हुआ है। इसी सत्ता के आकर्षण में बिंबसार का पुत्र व अजातशत्रु

और प्रसेनजित का पुत्र विरुद्धक पिता के प्रति विद्रोह करके सिंहासन पर कब्जा करना चाहते हैं। इस विद्रोह में अजातशत्रु के सफल होते ही विरुद्धक भी मन्तव्य को प्रकट कर देता है-

> "मगध जैसा परिवर्तन कर चुका है, वही तो कौशल भी चाहता है। हम नहीं समझते कि बुड्ढों को क्या पड़ी है और उन्हें सिंहासन का कितना लाभ है! क्या यह पुरानी और नियंत्रण में बंधी हुई संसार के कीचड़ में निमज्जित राजतंत्र की पद्धति, नवीन उद्योग को असफल कर देगी? तिल भर जी जो अपने पुराने विचारों से हटना नहीं चाहता, उसे अवश्य नष्ट हो जाना चाहिए क्योंकि यह जगह प्रगतिशील है।

विरुद्धक के माध्यम से कहे गये प्रसाद के ये विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उस समय थे। उन्होंने राजनीति के इस विकृत रूप के द्वारा जनसामान्य में राजनीति के प्रति चेतना जागृत करने का कार्य किया है ताकि वर्तमान राजनीति में सुधार हो सके।

4. **गाँधी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत का अनुसरण:** आलोच्य नाटक में गांधी जी के हृदय परिवर्तन सिद्धांत का अनुसरण हुआ है। जब प्रसाद जी नाट्य-सृजन में सलंग्न थे उस समय जन-सामान्य पर गांधी के व्यक्तित्व का प्रभाव भी बढ़ता ही जा रहा था, फिर प्रसाद जी इससे अछूते कैसे रह सकते थे। वस्तुत: गांधी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव आलोच्य नाटक पर भी पड़ा है। डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी भी इस बात को स्वीकारते हुए कहते हैं-

> "वह गाँधी के व्यक्तित्व के प्रसार का युग था और उसका प्रभाव युगधर्म पर क्रमश: बढ़ता ही चला जा रहा था। अजातशत्रु का नायक चाहे कोई हो, इसमें संदेह नहीं कि प्रारम्भ से लेकर अंत तक उसकी समस्त घटनाओं को मोड़ने की कुंजी बुद्ध के स्वयं के व्यक्तित्व में अथवा उसकी मूर्तिमान शिक्षा मल्लिका के व्यक्तित्व में पायी जाती है। यहाँ बुद्ध के सिद्धांत कसौटी पर उतारे गए हैं और प्रत्येक द्वन्द्व के पश्चात् वे खरे उतरे हैं। अंत में विरुद्धक के युवराज्याधिकार की पुन: प्रीतिष्ठा, समस्त धार्मिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध शुद्ध सत्वगुण प्रधान प्राचीन भारतीय विचारों की विजय ही नहीं, बुद्ध के प्रकाशमान व्यक्तित्व की विजय भी है। ... उनका आतंकवादियों की पद्धति के विपरीत अहिंसात्मक असहयोग आंदलोन उनकी राजनीतिक विजय का ही सूचक नहीं, आध्यात्मिक विजय का भी रूपक है।"

आलोच्य नाटक में गांधी जी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत को प्रसाद जी ने सद्पात्रों द्वारा कुटिल पात्रों के हृदय- परिवर्तन के विभिन्न उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

(क) **मल्लिका द्वारा प्रसनजित का हृदय-परिवर्तनः** कौशल नरेश प्रसेनजित को अपने सेनापति बंधुल पर यह संदेह हो जाता है कि कहीं यह पराक्रमी व्यक्ति मेरे लिए खतरा न बन जाए। यही कारण था कि उन्होंने षडयंत्र रचकर बंधुल की हत्या करवा दी।

मल्लिका अपने पति की हत्या के बावजूद भी कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होती। वह हत्यारे को जानते हुए भी घायल प्रसेनजित की आदर भाव से सेवा-शुश्रूषा करती है, जिससे प्रभावित होकर वह पश्चातापवश कह उठता है-

प्रसेनजित : "देवि, तुम्हारे उपकारों का बोझ मुझे असह्य हो रहा है। तुम्हारी शीतलता ने इस जलते हुए लोहे पर विजय प्राप्त कर ली है।

बार-बार क्षमा मांगने पर हृदय को संतोष नहीं होता। अब श्रावस्ती जाने की आज्ञा चाहता हूँ।

मल्लिका : सम्राट! क्या आपको मैंने बंदी कर रखा है? यह कैसा प्रश्न! बड़ी प्रसन्नता से आप जा सकते हैं।

प्रसेनजित : नहीं, देवि! इस दुराचारी के पैरों में तुम्हारे उपकारों की बेड़ी और हाथों में क्षमा की हथकड़ी पड़ी है। जब तक तुम कोई आज्ञा देकर इसे मुक्त नहीं करोगी, यह जाने में असमर्थ है।

उपर्युक्त संवाद से पता चलता है कि मल्लिका निर्मल एवं पवित्र स्वभाव के कारण ही प्रसेनजित का वज्र के समान कठोर हृदय पुष्प के समान हो जाता है। यही कारण है कि वह मल्लिका के चरणों में भी गिर जाता है और अपने अधम आचरण के लिए क्षमा-याचना करता है।

(ख) **मल्लिका द्वारा विरुद्धक का हृदय-परिवर्तनः** नाटककार ने मल्लिका के उदात्त चरित्र के संपर्क में आने पर विरुद्धक का भी हृदय-परिवर्तन होते दिखाया है। विरुद्धक युद्ध में घायल हो जाता है, लेकिन मल्लिका अपने पति के हत्यारे विरुद्धक की भी सेवा करती है। विरुद्धक इस सेवा का अर्थ कुछ और ही लगा बैठता है और मल्लिका से प्रेम का इजहार कर बैठता है लेकिन मल्लिका उसे समझाती है। इसी बीच श्यामा वहाँ प्रवेश करती है अपनी आपबीती सुना देती है। यह सब सुनकर मल्लिका उसे धिक्कारते हुए कहती है-

> **"यदि तुम प्रेम का प्रीतिदान नहीं जानते हो तो व्यर्थ एक सुकुमार नारी-हृदय को लेकर उसे पैरों से रौंदते हो? विरुद्धक! क्षमा मांगो; यदि हो सके तो इसे अपनाओ।"**

इतना कहने पर वह सब कुछ मान लेता है।

जब विरुद्धक अपने पिता के पास जाने से डरता है तो मल्लिका उससे कहती है-

.. मैं तुम्हारी ओर से क्षमा माँगूंगी। मुझे विश्वास है कि महाराज मेरी बात मानेंगे।"

अपने प्रति उस नारी की इतनी दया-भाव देखका विरुद्धक का हृदय वास्तव में परिवर्तित हो जाता है। वह मल्लिका से क्षमा-याचना करते हुए कहता है-

नोट्स

"उदारता की मूर्ति! मैं किस तरह तुमसे, तुम्हारी कृपा से, अपने प्राण बचाऊं! देवि! ऐसे भी जीव इसी संसार में हैं, तभी तो यह भ्रमण-पूर्ण संसार ठहरा है। (पैरों पर गिरता है) देवि! अधम के अपराध क्षमा करो।"

(ग) **वासवी द्वारा छलना का हृदय-परिवर्तन:** नाटक के प्रारंभ में ही छलना और वासवी के संवादों से पता चलता है कि छलना वासवी के प्रति अत्यधिक ईर्ष्या-भाव रखती है-

छलना : (क्रोध से) वह सीधी और तुम सीधी! आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा, और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।"

वासवी उसे समझाने का प्रयास करती है लेकिन फिर भी वह अपने कुकृत्यों से बाज नहीं आती। नाटक में एक स्थान पर वह अपने विषय में कहती है-

मैं बवंडर हूँ- इसीलिए जहाँ चाहती हूँ, असंभावित रूप से चली जाती हूँ और देखना चाहती हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस प्रवाह में कितनी सामर्थ्य है- इसमें आवर्त्त उत्पन्न कर सकती हूँ कि नहीं।"

युद्ध में अजातशत्रु को बंदी बनाया जाता है लेकिन वासवी उसे सकुशल लिवा लाती है। इस सूचना से एवं वासवी के मधुर वचनों से प्रभावित होकर छलना शान्त हो जाती है एवं उसके हृदय का परिवर्तन उसके वचनों से स्पष्टत: दिखाई दे जाता है- "... मैं तो सचमुच एक बवंडर हूँ। बहिन वासवी क्या मेरा अपराध क्षमा कर देंगी?" यही नहीं बाद में वह बिंबसार के समक्ष भी अपनी दीनता प्रकट करके क्षमा-याचना करती है-

"नाथ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उदंडता थी। वह मेरी कूट-चातुर थी, दंभ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वांचित कर दी गयी। ईंट-पत्थर के महल रूपी बंदीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दंडनायक, मेरे शासक! क्यों न उसी समय शील और विनय के नियम-भंग करने के अपराध में मुझे आपने दंड दिया। क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यंत्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये।"

(घ) **मल्लिका एवं गौतम द्वारा मागंधी का हृदय-परिवर्तन:** कौशांबी नरेश की पत्नी मागंधी को आलोच्य नाटक में अन्य दो नामों से भी जाना गया- श्यामा और आम्रपाली। अपनी युवावस्था में वह गौतम से प्रणय-निवेदन करती है लेकिन गौतम द्वारा मना किए जाने पर वह उसकी विरोधिनी बन जाती है। वह उदयन की दूसरी पत्नी अर्थात् अपनी सौत पद्मावती और गौतम के अवैध संबंधों की मिथ्या बात उड़ाकर एक तीर से दो शिकार करने का प्रयास करती है। वह उदयन की वीणा में सांप का बच्चा रखवाकर पद्मावती को बदनाम करने की चेष्टा करती है

लेकिन षडयंत्र का भेद खुल जाने पर वह महल में आग लगाकर अपनी जान बचाते हुए भाग जाती है और काशी में एक वेश्या बन जाती है। वहाँ पर शैलेन्द्र (विरुद्धक) नाम के डाकू से प्रेम करने लग जाती है और उसी के रक्षा हेतु समुद्रदत्त को बलि का बकरा बनवाकर फांसी पर चढ़वा देती है, लेकिन वही शैलेन्द्र उसकी हत्या का प्रयास करता है। गौतम द्वारा उसकी जीवन-रक्षा का प्रयास किए जाने के पश्चात् और मल्लिका के संपर्क में आने के बाद उसका दृष्टिकोण ही बदल जाता है। नाटक के अंत में वह बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लेती है।

मागंधी : "प्रभु! मैं नारी हूँ, जीवन-भर असफल होती आयी हूँ। मुझे उस विचार के सुख से वंचित न कीजिए। नाथ! जन्मभर की पराजय में भी आज मेरी ही विजय हुई। पतितपावन! यह उद्धार आपके लिए भी महत्त्व देने वाला है और मुझे तो सब कुछ!

गौतम : अच्छा आम्रपाली! कुछ खिलाओगी?

मागंधी : (आम की टोकरी रखती हुई) - प्रभु! अब इस आम्रकानन की मुझे आवश्यकता नहीं, यह संघ को समर्पित है।

5. **जन-सामान्य पर बौद्ध-संस्कृति के प्रभाव का चित्रण:** 'अजातशत्रु' नाटक के अन्तर्गत बौद्ध संस्कृति का प्रभाव एवं उसके विरोध को दर्शाया गया है। गौतम की शिक्षाओं से प्रभावित पात्र हैं- पद्मावती, बिंबसार, वासवी, श्यामा आदि और दूसरी ओर इसके विरोधकों में अजातशत्रु, छलना, देवदत्त और उसका शिष्य समुद्रदत्त। पद्मावती अपने भाई को हिंसा के विरोध में तर्क देती हुई कहती है- "मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु-जगत में क्या कम है? दूसरी ओर अजातशत्रु की माँ छलना पद्मावती की अहिंसाप्रियता का विरोध करते हुए कहती है-

> **"पद्मा! तू क्या इसकी मंगल कामना करती है? इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भद्दी सीख है? जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दंड के आधार पर है। क्या तुझे नहीं कालूम कि वह भी हिंसामूलक हैं?**

इसी प्रकार नाटककार ने गौतम के प्रमुख विरोधी देवदत्त को उनसे अत्यधिक ईर्ष्या करते हुए दिखाया गया है। देवदत्त जन-सामान्य में गौतम बुद्ध के वर्चस्व का कम करने के लिए ही बिंबसार को सिंहासन से हटाकर अजातशत्रु को सिंहासन पर बिठाता है। इसी संदर्भ में वह गौतम पर आक्षेप लगाते हुए कहता है-

> **"गौतम का प्रभाव मगध पर से तब तक नहीं हटेगा, जब तक बिंबसार राजगृह से दूर न जाएगा। यह राष्ट्र का शत्रु गौतम समग्र जम्बूद्वीप को भिक्षु बनाना चाहता है और अपने को उनका मुखिया। इस तरह जम्बूद्वीप भर पर एक-दूसरे रूप में शासन करना चाहता है।"**

नोट्स

इस प्रकार के आक्षेपों को साधारण आक्षेप ही कहा जा सकता है क्योंकि उस समय गौतम का प्रभाव चरम सीमा पर था। अनेक राज्यों में गौतम का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। प्रसाद जी ने मगध नरेश बिंबसार के माध्यम से उन व्यक्तियों की धारणाओं का उद्घाटन करवाया है, जो गौतम और उसके धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था रखते थे-

"करुणामूर्ति हिंसा से रंगी हुई वसुन्धरा आपके चरणों के स्पर्श से अवश्य ही स्वच्छ हो जाएगी। उसकी कलंक-कालिका धुल जाएगी।"

XXXXX

"भगवान की शांतिवाणी की धारा प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी, मैं कृतार्थ हुआ।"

नाटककार ने आलोच्य नाटक में विभिन्न पात्रों के माध्यम से बौद्ध-धर्म की विशेषताओं का उद्घाटन करवाया है। प्रसाद जी ने मल्लिका की सृष्टि बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं के अनुपालन के संबंध में ही है और मल्लिका को उन शिक्षाओं के अनुकूल आचरण करते हुए चित्रित किया है। वह बौद्ध-भिक्षुओं को भोज के लिए आमंत्रित करती है, किन्तु उनके आगमन से पूर्व ही उसके पति की हत्या कर दी जाती है। यह अशुभ समाचार सुनने के बाद भी वह अतिथि-धर्म का अनुपालन करने से नहीं चूकती। इसी कारण सारिपुत्र मल्लिका की इन शब्दों में सराहना करता है-

"आनंद! क्या तुमने समझा कि मल्लिका दासी पर रुष्ट होगी? क्या तुमने अभी नहीं पहिचाना? स्वर्ण-पात्र टूटने से इन्हें क्या क्षोभ होगा- स्वामी के मारे जाने का समाचार अभी हम लोगों के आने के थोड़ी ही देर पहले आया है। फिर, यह तो एक धातुपात्र था!- (मल्लिका से) - तुम्हारा धैर्य सराहनीय है। आनंद! तो इस मूर्तिमती धर्म-परायणता से कर्त्तव्य की शिक्षा लो!"

वह बौद्ध-धर्म के प्रति इतनी आस्थावान है कि अपने पति के हत्यारे विरुद्धक और प्रसेनजित की विकट परिस्थिति में सेवा-सुश्रुषा करती है और बाद में दोनों के द्वारा क्षमा मांगने पर उन्हें माफ भी कर देती है।

नाटक के प्रारम्भ में बिंबसार और छलना के आपसी झगड़े का आभास पाकर गौतम उन्हें शीतल वाणी और मधुर व्यवहार के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

"शीतल वाणी-मधुर व्यवहार से-क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते? राजन, संसार-भर के उपद्रवों का मूल व्यंग है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक्संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुमसे एक काम

की बात कहना चाहता हूँ- क्या तुम मानोगे? क्यों महारानी?

गौतम के कहने पर ही बिंबसार अपने पुत्र अजात को सिंहासन पर बिठा देता है।

नाटक के अंत में दो नागरिक गौतम के चरित्र की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहते हैं-

पहला : किसने शक्ति का ऐसा परिचय दिया है। सहनशीलता का ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण-ओह!

दूसरा : आश्चर्य! गौतम की अमोघ शक्ति है। भाई, इतना त्याग तो आज तक देखा नहीं गया। केवल पर-

दुःख-कातरकता ने किस प्राणी से राज्य छुड़वाया है! अहा, वह शांत मुखमंडल, स्निग्ध गंभीर दृष्टि, किसको नहीं आकर्षित करती। कैसा विलक्षण प्रभाव है।"

पहला : तभी तो बड़े-बड़े सम्राट लोग विनत होकर उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। देखो, यह भी कभी भी हो सकता था कि राजकुमार विरुद्धक पुनः युवराज बनाए जाते? भगवान ने समझाकर महाराज को ठीक कर ही दिया- और वे आनंद से युवराज बना दिये गये।"

बौद्ध-धर्म में उंच-नीच और जाति-पांति की भावना का तीव्र विरोध किया गया है। इसी तथ्य को नाटककार ने गौतम के मुख से कहलवाकर आधुनिक समाज के लिए यह संदेश संप्रेषित किया है-

> **"यह दंभ तुम्हारा प्राचीन संस्कार है। क्यों राजन! क्या दास, दासी, मनुष्य नहीं है? क्या कई पीढ़ी ऊपर तक तुम प्रमाण दे सकते हो कि सभी राजकुमारियों की संतान ही इस सिंहासन पर बैठी है या प्रतिज्ञा करोगे कि आने वाली कई पीढ़ी तक दासी पुत्र इस पर न बैठने पावेंगे? यह छोटे-बड़े का भेद क्या अभी इस संकीर्ण हृदय में इस तरह घुसा है कि निकल नहीं सकता? क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देखकर प्राचीन अंधविश्वासों को,, जो न जाने किस कारण होते आए हैं, तुम बदलने के लिए प्रस्तुत नहीं हो? क्या इस क्षणिक भव में तुम अपनी स्वतंत्र सत्ता अनंत काल तक बनाए रक्खोगे?"**

इस प्रकार आलोच्य नाटक के माध्यम से प्रसाद जी ने बौद्धकालीन संस्कृति एवं उसकी शिक्षाओं का जन-सामान्य पर प्रभाव आदि पर प्रमुखता से प्रकाश डाला है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने 'अजातशत्रु' नाटक में ऐसे भव्य संदेशों को सम्प्रेषित करने का प्रयास किया है जिसके द्वारा हम अपने जीवन में उत्कर्ष लाते हुए विश्व के संघर्षपूर्ण वातावरण से जूझने की क्षमता प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने गृह-क्लह के दुष्परिणामों के माध्यम से पाठकों या दर्शकों उससे दूर रहने का संदेश दिया है। बौद्ध-धर्म के उपदेशों द्वारा मानव के अशान्त हृदय को शांत करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने उस समय की राजनीतिक अस्थिरता एवं सिंहासन के प्रति मोह को दिखाकर आधुनिक समाज के लिए एक प्रश्न खड़ा किया है जिससे मानसिक शांति के बल पर ही सुलझाया जा सकता है।

नोट्स

उन्होंने गांधी जी के हृदय-परिवर्तन सिद्धांत को भी बड़े ही सुन्दर ढंग से उद्घाटित किया है। इस प्रकार प्रसाद जी ने प्रस्तुत नाटक में कोई एक संदेश न देकर कई संदेशों को एक-साथ संप्रेषित किया है। वस्तुतः यह एक सोद्देशय रचना है।

1.13 अजातशत्रु : भाषा-शैली

किसी भी कृतिकार के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति तथा उसके उद्देश्य की सिद्धि भाषा और शैली के माध्यम से होती है। नाटककार तो संवादों के माध्यम से ही अपनी धारणाओं और अपने चिन्तन को प्रस्तुत करता है, अतः उसे भाषा का मर्मज्ञ होना ही चाहिए। जिस नाटक की भाषा जितनी पात्रानुकूल, प्रवाहपूर्ण और देश-काल के अनुरूप होगी वह नाटक उतना ही लोकप्रिय होगा। गीतों के बाद प्रसाद के नाटक के काव्य तत्त्व का सर्वाधिक प्रकाशन उनकी भाषा-शैली के माध्यम से हुआ है। प्रसाद के नाटकों की सबसे बड़ी शक्ति यही भाषा-शैली है। प्रसाद के नाटकों में कवि, प्रेमी, दार्शनिक, व्यवहारिक पुरुष, वीर एवं देश के नेता आदि सभी सम्मिलित होते हैं। उनकी भाषा-शैली में तत्सम शब्दों की बराबर प्रधानता है। उनकी शैली के अन्तर्गत उनकी अपनी विशेषताओं का समावेश तो अवश्य ही होता है।

अजातशत्रु की भाषा: प्रसाद जी ने अपने नाटकों में प्रायः संस्कृतनिष्ठ और परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। उनके पात्र चाहे किसी भी श्रेणी अथवा वर्ग के क्यों न हों, एक जैसी ही भाषा का प्रयोग करते हैं। 'अजातशत्रु' नाटक का नायक 'अजातशत्रु' और उसका अनुचर 'लुब्धक' एक समान भाषा का प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि मागंधी, नवीना, विजया, सरला, कंचुकी, दासी, नर्तकी आदि परिमार्जित भाषा में अपनी अभिव्यक्ति करती हैं। बिंबसार, अजातशत्रु, जीवक, वासवी, छलना, उदयन, पद्मावती, मागंधी, प्रसेनजित, विरुद्धक, मल्लिका, दीर्घकारायण, बाजिरा, शक्तिमती संस्कृतनिष्ठ भाषा बोलते ही हैं, वसंतक एवं पथ में वार्तालाप करते हुए दो नागरिक भी तत्सम प्रधान भाषा में अपनी बात कहते हैं। इस प्रकार वे पात्रों की स्थिति के अनुकूल भाषा में बदलाव नहीं लाते अपितु उनके प्रायः सभी पात्र एक जैसी ही भाषा का प्रयोग करते मिलते हैं। यही कारण है कि प्रसाद जी पर संस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट भाषा प्रयोग करने का दोष लगाया जाता है। लेकिन इस धारणा के प्रत्युत्तर में प्रसाद जी के मत को डॉ. जगन्नाथ शर्मा ने इस प्रकार व्यक्त किया है- "भिन्न-भिन्न देश और वर्ग वालों से उनके देश और वर्ग के अनुसार भाषा का प्रयोग कराने से नाटक को भाषाओं का अजायबघर बनाना पड़ता है जो कहीं अधिक अप्राकृतिक हो जाता है और सामाजिकों के लिए भी इतनी भाषाओं से परिचय रखना असंभव है। इसके अतिरिक्त इस विषय की अधिक आवश्यकता भी नहीं दिखाई पड़ती। न जाने कितने विदेशियों को हम अपनी ही तरह हिन्दी बोलते समझते पाते हैं। जहाँ अपनी भावुकता और कल्पना के बल पर हम इतने अभिनय को अभिनय और नकल न समझकर सच्ची घटना मानते हैं और उसी के साथ हंसते-रोते, सुख-दुःख प्रकट करते हैं वहाँ ऐसी बात यथार्थ है अथवा अयथार्थ, इसके विचार का अवसर कहाँ रह जाता है। जब हम सिल्युकस और कार्नेलिया को अपने सम्मुख खड़ा देखते हैं तब ये यथार्थ मालूम पड़ते हैं और जब वे परिष्कृत भाषा का प्रयोग करने लगते हैं तब अयथार्थ हो जाते हैं- यह भी कोई तर्क है। अतएव भाषा विविधता के लिए आग्रह न करना ही हितकर है। स्वरूप भिन्नत्व केवल वेष-भूषा में ही व्यक्त कर देना चाहिए।" प्रस्तुत

नोट्स

अभिमत से स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ही विभिनन पात्रों के लिए क्यों एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। वे नाटक में सम्मिलित विभिन्न पात्रों के अनुकूल भाषा-परिवर्तन को अस्वाभाविक मानते थे। 'अजातशत्रु' नाटक में भाषा-शैली की अनेक विशेषताएं विद्यमान हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. **पात्रानुकुल भाषा:** प्रसाद जी का मानना है- "पात्रों के भावों और विचारों के आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए किंतु इसके लिए भाषा की एकतन्त्रता नष्ट करके कई तरह की खिचड़ी भाषाओं का प्रयोग हिन्दी नाटकों के लिए ठीक नहीं। पात्रों की संस्कृति के अनुसार उनके भावों और विचारों में तारतम्य होना भाषाओं के परिवर्तन के अधिक उपयुक्त है।" इसका तात्पर्य यह है कि भिन्न-भिन्न पात्र भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा बोलें, इसके स्थान पर उनके विचारों और भावों के अनुसार भाषा में अन्तर होना चाहिए।

   आलोच्य नाटक में प्रसाद जी ने भाषा को पात्रों की मनोदशा के अनुकूल बनाने का भरसक प्रयास किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कथन में विरुद्धक के हृदय में नारी-आकर्षण और मल्लिका के कथनों में उसकी तटस्थता एवं आक्रोश का परिचय मिलता है-

   मल्लिका : अच्छा किया। तुम्हें स्वस्थ देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुई। अब तुम अपनी राजधानी को लौट जा सकते हैं।

   विरुद्धक : मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है। मेरे हृदय में बड़ी खलबली है। यह तो तुम्हें विदित था कि सेनापति बंधुल को मैंने ही मारा था; और उसी की तुमने इतनी सेवा की। इससे मैं क्या समझूं। क्या मेरी शंका निर्मूल नहीं है? इससे मैं क्या समझूं। क्या मेरी शंका निर्मूल नहीं है? कह दो मल्लिका।

   मल्लिका : विरुद्धक! तुम उसका मनमाना अर्थ लगाने का भ्रम मत करो। तुमने समझा होगा कि मल्लिका का हृदय कुछ विचलित है, छि: तुम राजकुमार हो न, इसीलिए। अच्छी बात क्या तुम्हारे मस्तिष्क में कभी आयी ही नहीं। मल्लिका उस मिट्टी की नहीं है, जिसकी तुम समझते हो।

   विरुद्धक : किंतु मल्लिका! अतीत में तुम्हारे ही लिए मेरा वर्तमान बिगड़ा। पिता ने जब तुमसे मेरा ब्याह करना अस्वीकार किया, उसी समय से मैं पिता के विरुद्ध हुआ और उस विरोध का यह परिणाम हुआ।

   मल्लिका : इसके लिए मैं कृतज्ञ नहीं हो सकती। राजकुमार। तुम्हारा कलंकी जीवन भी बचाना मैंने अपना धर्म समझा। और यह मेरी विश्वमैत्री की परीक्षा थी। इसमें जब मैं उत्तीर्ण हो गयी तब मुझे अपने पर विश्वास नहीं हुआ। विरुद्धक, तुम्हारा रक्तकलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने कपिलवस्तु के निरीह प्राणियों का, किसी की भूल पर, निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया। एक वीर को छल से मार डाला और अपने देश की जन्मभूमि के विरुद्ध - अस्त्र ग्रहण किया। तुम्हारे जैसा नीच और कौन होगा। किंतु यह सब जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिए उठा लायी।

विरुद्धक : तब क्यों नहीं मर जाने दिया? क्यों इस कलंकी जीवन को बचाया और अब ...।

मल्लिका : तुम इसलिए नहीं बचाये गये कि फिर भी एक विरक्ता नारी पर बलात्कार और लंपटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित करो - अपने को सुधारो।

2. **भाषा की समसामयिकता:** प्रसाद जी ने अपने सभी नाटकों में समसामयिक भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने महाभारत काल से लेकर हर्ष के शासनकाल तक के समय का चित्रण अपने नाटकों में किया है। उस युग में संस्कृत भाषा का ही प्रधान्य रहा था, अत: उनके नाटकों के कलेवर का निर्माण उसी भाषा की नींव पर टिका हुआ है।

उनका मानना था कि नाटक की कथावस्तु जिस देश और काल की है उसी की संस्कृति के अनुसार भाषा का स्वरूप गठित होना चाहिए। अनेक प्रकार के विरोध होते हुए भी उन्होंने अपने नाटकों में इस सिद्धांत का पूर्ण रूप से फलन किया है। प्राय: उनके सभी पात्र संस्कृतनिष्ठ व काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। कुछ उदाहरण अवलोकनीय है-

"बिंबसार : तब तो देवि! प्रत्येक असंभावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व-भर में स्थान-स्थान पर गत्याचक्र है, जल में उसे भंवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं, राज्य में विप्लव, समाज में उच्छृंखलता और धर्म में पाप कहते हैं।"

विस्फोटक : "... हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है। जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न, विश्व-भर की मदिरा बनकर मेरे उन्माद की सहकारिणी-कोमल कल्पनाओं का भंडार हो गया। मल्लिका! तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्ध-रात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्र-लोक से कोमल हीरक-कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कंठों की रसीली तानें पुकार बनकर तुम्हारा अभिनंदन करने, तुम्हें संभालकर उतारने के लिए, नक्षत्र-लोक गई थीं। शिशिरकणों से सिक्त पवन तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था, उषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचायक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृंत का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उसने खेलेत-खेलते तुम्हें उस आसन से भी उठाया और गिराया।

तुम्हारे धरणीं पर आते ही जटिल जगत् की कुटिल गृहस्थी के आल-बाल में आश्चर्यपूर्ण सौंदर्यमयी रमणी के रूप में सबने देखा। वह कैसा इंद्रजाल था-

प्रभात का वह मनोह स्वप्न था- सेनापति बंधुल, एक हृदयहीन क्रूर सैनिक ने तुम्हें अपने उष्णीष का फूल बनाया। और, हम तुम्हें अपने घेरे में रखने के लिए कंटीली झाड़ी बनकर पड़े ही रह गये! आज कौशल के हम कंटक स्वरूप हैं ...।"

3. **सरलता, रोचकता एवं प्रवाहमयता:** प्रसाद जी सभी नाटकों की भाषा-शैली के संबंध में यही आरोप लगाया जाता रहा है कि उनकी भाषा-शैली क्लिष्ट है। भाषा की यही क्लिष्टता एवं दुर्बोधता पाठक या दर्शक को भाव ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न करती है। यह सत्य है कि 'अजातशत्रु' नाटक में भी क्लिष्ट भाषा-शैली का यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है लेकिन वह

इतनी भी क्लिष्ट नहीं है कि उसे सामान्य व्यक्ति समझ ही न सके। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

अजातशत्रु : भाई विरुद्धक, मैं तुमसे ईर्ष्या कर रहा हूँ।

विरुद्धक : और मैं वह दिन शीघ्र देखूंगा कि तुम भी इसी प्रकार अपने पिता से क्षमा किए गये।

अजातशत्रु : तुम्हारी वाणी सत्य हो।

बाजिरा : भाई विरुद्धक! मुझे क्या तुम भूल गये? क्या मेरा कोई अपराध है, जो मुझसे नहीं बोलते थे?

विरुद्धक : नहीं, नहीं, मैं तुमसे लज्जित हूँ। मैं तुम्हें सदैव द्वेष की दृष्टि से देखा करता था, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करो।

कबीरदास जी ने भाषा को बहता नीर कहा है, अर्थात् जिस प्रकार एक नदी में पानी सहज गति से प्रवाहित रहता है उसी प्रकार भाषा भी ऐसी ही होनी चाहिए जो भावों को सहज गति से वहन करने में सक्षम हो। आलोच्य नाटक की भाषा के अन्तर्गत प्रवाहमयता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। उदाहरणार्थ-

"वासवी : काशी का राज्य मुझे, मेरे पिता ने, आँचल में दिया है, उसकी आय आपके हाथ में आनी चाहिए और मगध-साम्राज्य की एक कौड़ी भी आप न छुएँ। नाथ! मैं ऐसा द्वेष से नहीं कहती हूँ; किंतु केवल आपका मान बचाने के लिए।"

इस प्रकार विवेच्य नाटक भाषा में सहजता और सरलता होते हुए उसमें प्रवाहमयता का गुण भी विद्यमान है, जिससे पाठक या दर्शकों को संवाद सुनते हुए रसानुभूति होती है।

4. **रसानुरूप भाषा:** 'अजातशत्रु' नाटक में वीर, शृंगार एवं शांत-रसों की योजना हुए हैं लेकिन कोई भी रस इतना प्रमुख स्थान प्राप्त नहीं कर सका कि उसे नाटक का अंगीरस कहा जा सके। वीर रस की पुष्टि के लिए ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया जाता है जबकि शृंगार रस के प्रसंगों में माधुर्य प्रधान रहता है। अग्रलिखित उदाहरण में कोशल वंश के राजा प्रसेनजित की रानी शक्तिमती अपने पुत्र विरुद्धक को युद्ध के लिए प्रेरित करती है, जिसका प्रभाव विरुद्धक के कथन में भी स्पष्टत: दिखाई पड़ता है-

शक्तिमती : ... महत्त्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुंड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वे ही भाग जायेंगी। मल्लिका तो क्या, राजलक्ष्मी तुम्हारे पैसें पर लौटेगी। पुरुषार्थ करो! इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो, नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें अधिकार नहीं।

विरुद्धक : बस माँ अब कुछ न कहो। आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्त्तव्य और मेरे जीवन का लक्ष्य होगा। माँ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूंगा और उनके रक्त में नहाकर इस कोसल के सिंहासन पर बैठकर, तेरी वंदना करूंगा। आशीर्वाद दो कि इस क्रूर परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँ।

इसी प्रकार नाटककार ने शृंगार रस के प्रसंगों में माधुर्य गुण से परिपूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया है। शृंगार रस का सुष्ठु उदाहरण श्यामा और विरुद्धक के कथनों में मिलता है, यथा-

श्यामा : (स्वगत) - ... मैं शैलेंद्र से मिलने आयी हूँ - वह डाकू है तो क्या, मेरी वासना भी अतृप्त है। मागंधी! चुप, वह नाम क्यों लेती है। मागंधी कौशांबी के महल में आग लगाकर जल मरी - अब तो मैं श्यामा, काशी की प्रसिद्ध वार-विलासिनी हूँ। बड़े-बड़े राजपुरुष और श्रेष्ठि इसी चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं।

विरुद्धक : रमणी! तुम इस घोर कानन में क्यों आई हो?

श्यामा : शैलेन्द्र, क्या तुम्हें यह बताना होगा! मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है, उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझायेगा? तुम स्नेह की परीक्षा चाहते थे- बोलो, तुम कैसी परीक्षा चाहते हो?

जहाँ तक शांत रस की अभिव्यक्ति का प्रश्न है तो प्रस्तुत नाटक में प्रसाद जी ने मल्लिका और गौतम के संवादों में इसी रस को घोल दिया है।

शैली संबंधी विशेषताएँ

'अजातशत्रु' नाटक में भावों की प्रस्तुति हेतु प्राय: पाँच प्रकार की शैलियों का प्रयोग हुआ है, जिसका विवरण इस प्रकार है-

1. **आलंकंकंकारिक शैली:** कवि होने के कारण प्रसाद के प्रस्तुत नाटक में आलंकारिक शैली का सौन्दर्य स्थल-स्थल पर विद्यमान है। नाटक के अधिकांश स्थल आलंकारिकता से परिपूर्ण हैं, यथा-
   (क) "मुझे प्रतिशोध लेना है - दावाग्नि-सा बढ़कर फैलना है। - (उपमा अलंकार)
   (ख) "संघभेद करके आपने नियम तोड़ा है, उसी तरह राष्ट्रभेद करके क्या देश का नाश करना चाहते हैं।" - (दृष्टांत अलकार)
   (ग) "नियति की डोर पकड़कर मैं निर्भय कर्मकूप में कूद सकता हूँ, क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह होगा ही...।" - (दृष्टांत अलंकार)
   (घ) "पर मैं देखता हूँ कि मदिरा के पहले तुमने हलाहल मेरे हृदय में डाल दिया।" - (रूपकातिशयोक्ति)
   (ड.) "राजन संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कतार नहीं।" - (व्यतिरेक अलंकार)
2. **हास्य-व्यंग्य प्रधान शैली:** 'अजातशत्रु' नाटक में वसंतक एवं वासवी के कुछ संवादों में हास्य और छलना एवं मांगधी के संवादों में व्यंग्य प्रधान शैली का प्रयोग हुआ है। जीवक और वसंतक के मिलन के अवसर पर प्रसाद ने हास्य शैली का प्रयोग करके नाटक की गंभीरता में जीवंतता लाने का प्रयास किया है। वसंतक वैद्यराज जीवक से कहता है-

   "केवल खलबद्ध चलाते रहे और मूर्खता का पुटपाक करते
   रहे महाराज ने एक नयी दरिद्र कन्या से विवाह कर लिया

है, मिथ्या विहार करते-करते उन्हें बुद्धि का उजीर्ण हो गया है। महादेवी वासवदत्ता और पद्मावती जीर्ण हो गयी हैं तब कैसे मेल हो? क्या तुम अपनी औषधि से उन्हें विवाह के समय की अवस्था का नहीं बना सकते जिससे महाराज इस अजीर्ण से बच जायँ?"

छलना अपने पुत्र अजातशत्रु की विजय का समाचार वासवी को देने के लिए स्वयं आती तो वासवी उससे कहती है कि यह सूचना तो एक सामान्य अनुचर भी दे सकता था। यह सुनकर छलना व्यंग्यात्मक शैली में कहती है-

"किंतु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश भी अच्छी तरह से नहीं कहता। वासवी के मुख की प्रत्येक सिकुड़न पर इस प्रकार लक्ष्य न रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता।"

3. **काव्यात्मक शैली:** प्रसाद जी मूल रूप से कवि थे। अत: उनका कवि रूप उनके नाटकों में भी उभरकर सामने आया है। भावात्मक एवं काव्यात्मक शैली में कविता जैसा आनंद विद्यमान है। इस शैली की भाषा सरल और साहित्यिक दोनों ही प्रकार की है, यथा-

"... स्वर्ण-पिंजर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा-जो उसे हरी डालों पर कसैले फलों को चखने में मिलता है? मुक्त नील गगन में अपने छोटे-छोटे पंख फैलाकर जब वह उड़ती है, तब जैसी उसकी सुरीली तान होती है उसके सामने तो पिंजड़े में उसका गान क्रंदन ही है। मैं उसी श्यामा की तरह जो स्वतंत्र है, राजमहल की परतंत्रता से बाहर आयी हूँ। हँसूगी और हँसाऊंगी, रोऊंगी और रुलाऊँगी! फूल की तरह आयी हूँ-- परिमल की तरह चली जाऊँगी, चाहे उसमें जितनी ही कलियाँ क्यों न कुचलनी पड़े। चाहे कितनों के प्राण जाएँ, मुझे कुछ चिंता नहीं! कुम्हलाकर, फूलों को कुचल देने में ही सुख है।"

4. **चित्रात्मक शैली:** प्रसाद जी भाषा के अद्वितीय शिल्पी हैं। पात्रों के सामान्य कथन में वे शब्दों का चयन इस प्रकार करते हैं कि उसे एक सम्पूर्ण चित्र साकार हो उठता है। भाषा का यह गुण उन्हें एक विशिष्ट लेखक की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। अजातशत्रु नाटक के अन्तर्गत उनकी चित्रात्मक शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

मागंधी : (आप-ही-आप) - वाह री नियति! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये- कभी बैलों को चारा देते-देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठा कर पीने से संकोच होता था, कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ। इस बुद्धिमता का क्या ठिकाना है।"

नोट्स

5. **सूक्ति प्रधान शैली:** 'अजातशत्रु' नाटक के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर सुक्ति शैली का प्रयोग हुआ है। ये सूक्तियाँ अत्यधिक प्रभावशाली हैं। इनमें प्रसाद जी का गहन चिन्तन और जीवन का अनुभव समाहित है। इनसे पात्रों के जीवन-रहस्यों का भी उद्‌घाटन हुआ है, यथा-

"मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन पशु-जगत में क्या कम हैं।"

"विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो करुणा ही है, जो प्राणि मात्र में समदृष्टि रखती है।"

"राजन! संसार-भर के उपद्रवों का मूल व्यंग है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कतार नहीं। वाक्‌संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है।"

"अधिकार, चाहे वे कैसे भी जर्जर और हल्की नींव के हों, अथवा अन्याय से ही क्यों न संगठित हो, सजह में नहीं छोड़े जा सकते।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'अजातशत्रु' नाटक की भाषा सर्वत्र भाषाभिव्यंजक है। इसमें भाषा प्रसंग और रस के अनुकूल होकर कहीं सरस, कहीं ओज प्रधान और कहीं व्यावहारिकता की ओढ़नी ओढ़े हुए है। यत्र-तत्र मुहावरों के प्रयोग से भाषा जीवंत हो उठी है। नाटक में भाषा के साथ-साथ शैलीगत विशेषताओं का भी यथास्थान नियोजन किया गया। अतः भाषा और शैली की दृष्टि से यह एक सफल नाटक कहा जा सकता है।

1.14 अजातशत्रु : रस-योजना

प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्रियों ने कहा कि भाँति नाटक को भी रसात्मक माना हैं और रस को उसकी आत्मा स्वीकार किया है। लेकिन पाश्चात्य आलोचकों ने सक्रियता एवं समप्टिप्रभाव को ही नाटक का प्राण तत्त्व माना है। आचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रस की जो परिभाषा निर्धरित की है (विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः) वह अब तक 'रस' का आधार बनी हुई है। इस परिभाषा का तात्पर्य है- विभाव, अनुभाव और संचारी भागों के योग से रस रूप में निष्पत्ति होती है।

विविध भावों के आस्वाद से सामान्यजन के हृदय में रसनिष्पत्ति कराना ही नाट्याचार्यों का उद्‌देय रहा है। नाटककार किसी आलंबन को लाकर आश्रय के हृदय में रस की उत्पत्ति करता है। डॉ. नगेन्द्र ने प्रसाद के नाटकों में रस तत्त्व पर विचार करते हुए लिखा है- "प्रसाद के नाटक सुखान्त अथवा दुखान्त न होकर प्रसादान्त हैं। इसका एक प्रमाण है रस का परिपाक। इनके नाटकों में मुख्य रस दो हैं- श्रृगांर और वीर। श्रृंगार में एक ओर अपने को लय कर देने की तीखी चाह मिलती है तो दूसरी ओर विलास की उष्ण गंध और रूप-यौवन के चटकीले चित्र, जो प्रसाद की तूलिका की विशेष विभूति है। इसी प्रकार वीरता की अभिव्यक्ति भी अन्तरतम की पुकार है। ... इन दोनों के साथ तीसरा रस शान्त भी अनिवार्य रूप से मिलता है जो इन दोनों पर शासन करता है। जब आवेश, चाहे वह मधुर हो पुरुष, उबलकर सीमा तोड़ना चाहता है, तभी शांत रस के शीतल छींटे उसे शांत और संयत कर देते हैं। स्वभावतः यहाँ रस का प्रवाह आवेग से परे शांत की ओर बहता हुआ मिलता है और यही प्रसाद के नाटकों का 'प्रसादान्त' है।"

'अजातशत्रु' नाटक में अनेक रसों की सुंदर योजना हुई है और जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने इसमें वीर रस को मुख्य रूप से स्वीकार किया है। आचार्य भरत के अनुसार नाटक में अनेक रसों में जो प्रधान-रूप

से विद्यमान रहता है वह रस स्थायी और शेष संचारी होते हैं। आलोच्य नाटक में पाठक या दर्शक जिन रसों का आस्वाद लेते हैं उनका वर्णन इस प्रकार है-

1. **वीर रसः** भारतीय नाट्यशास्त्र में वीर, शृंगार एवं शांत रस में से किसी एक रस की योजना किए जाने का विधान है। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रायः इन तीनों रसों की ही व्यंजना हुई है। प्रस्तुत नाटक की वीर योजना पर विचार किया जाए तो इस संघर्ष, विरोध और युद्ध-प्रधान नाटक का आश्रय अजातशत्रु है और इसके द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य में उत्साह है। इसके द्वारा किए गए सभी कार्य उत्साहपूर्ण हैं, यथा-

   "अजातशत्रु : आप लोग राष्ट्र के शुभचिंतक हैं। जब पिताजी ने यह प्रकांड बोझ मेरे सिर पर रख दिया और मैंने इसे ग्रहण किया, तब इसे भी मैंने कियोर-जीवन का एक कौतुक ही समझा था। किंतु बात वैसी नहीं थी। मान्य महोदया, राष्ट्र में एक ऐसी गुप्त शक्ति का कार्य खुले हाथों चल रहा है जो इस शक्तिशाली मगध-राष्ट्र को उन्नत नहीं देखना चाहती। और मैंने इस बोझ को केवल आप लोगों की शुभेच्छा का सहारा पाकर लिया था; आप लोग बताइये कि उस शक्ति का दमन आप लोगों को अभीष्ट है कि नहीं? या अपने राष्ट्र को आप लोग अपमानित करना चाहते हैं?

   दूसरा सभ्य : कभी नहीं। मगध का राष्ट्र सदैव गर्व से उन्नत रहेगा और विरोधी शक्तियाँ पददलित होंगी।

   अजातशत्रु : तब- आप लोग मेरा साथ देने के लिए पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं? देश को अपमान से बचाना चाहते हैं?"

   अजातशत्रु के उपुर्युक्त कथनों में वीर रस का ही संकेत मिल रहा है। प्रस्तुत नाटक के वीर रस पर विचार करते हुए जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने लिखा है- "लेखक के निर्णय के अनुसार नाटक का नायक अजातशत्रु है और उसका लक्ष्य है- राज्यप्राप्ति। वह राज्यप्राप्ति तब तक निरापद नहीं समझी जा सकती जब तक शुद्ध अंतःकरण से बिंबसार आशीर्वाद नहीं देता। अतएव अजातशत्रु की फलप्राप्ति का विरोधी बिंबसार है, भले ही वह विरक्त होकर उसे राज्याधिकार सौंप चुका है। अजात उस फल को प्राप्त करने का उद्योग बड़े उत्साह के साथ करता है। नाटक का अधिकांश इसी उत्साह के प्रचार में लग गया है और सामाजिक उस उत्साह का रसास्वादन करते हैं। अतएव नाटक में वीर रस की ही प्रधानता दिखाई पड़ती है।" तृतीय अंक के विस्तार के कारण इस अंक में वीर रस की निष्पत्ति में विरोध आ जाता है। इस प्रकार वीर रस निष्पत्ति प्रथम दो अंकों में ही प्रभावी दिखाई देती है।

2. **शृंगार रसः** शृंगार रस मानव जीवन का प्रधान रस है। प्राणि मात्र के मन को उद्वेलित करने वाला रस जीवन की मूल प्रेरणा के रूप में विद्यमान है। मानव में संपूर्ण कार्य-व्यवहार इसी से प्रेरित हैं। प्रस्तुत नाटक में विरु(क (शैलेन्द्र) और मागंधी (श्यामा) के संवादों में शृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है, यथा-

   श्यामा : मैं शैलेन्द्र से मिलने आयी हूँ - वह डाकू है तो क्या, मेरी वासना भी अतृप्त है।

   विरुद्धक : रमणी! तुम इस घोर कानन में क्यों आई हो?

नोट्स

श्यामा : शैलेन्द्र क्या तुम्हें यह बताना होगा! मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है, उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझाएगा? तुम स्नेह की परीक्षा चाहते थे- बोलो, तुम कैसे परीक्षा चाहते हो?

विरुद्धक : ... तुमसे मिलने में इसलिए मैं डरता था कि तुम रमणी हो और वह भी वार-विलासिनी। मेरा विश्वास है कि ऐसी रमणियाँ डाकुओं से भी भयानक हैं।

श्यामा : ... आतंरिक प्रेम की शीतलता ने - तुम्हें कभी स्पर्श नहीं किया? क्या प्रणय-भिक्षा असफल होगी? जीवन की कृत्रिमता में दिन-रात प्रेम का बनिज करते-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है? क्या वार-विलासिनी प्रेम करना नहीं चाहती? क्या कठोर और क्रूर कर्म करते-करते तुम्हारे हृदय में चेतनलोक की गुदगुदी और कोमलता के स्पंदन नाम को भी अवशिष्ट नहीं है?"

यह श्रृंगारिका उस समय भी दिखाई देती है जब समुद्रगुप्त श्यामा के रूप-सौन्दर्य के आकर्षण में भँवरे की भाँति खिंचा चला आता है।

> **"अहा! श्यामा का सा कंठ भी है। सुंदरी, तुम्हारी जैसी प्रशंसा**
> **सुनी थी, वैसी ही तुम हो! एक बार इस तीव्र मादकता को**
> **और पिला दो - पागल हो जाने के लिए इंद्रियाँ प्रस्तुत हैं।**

श्यामा (मागंधी) राजा उदयन के समक्ष भी अपने रूप की चमक को दिखाकर उसे मदहोश बना देती है और संभोग की उस चरम-परिणति को प्राप्त करने के लिए आतुर है जो स्वर्ग का सा सुख प्रदान करती है। प्रस्तुत गीत की इन पंक्तियों में उसके श्रृंगारिक दृष्टिकोण को ही वाणी मिली है-

> **"आओ हिए में अहो प्राण प्यारे! नैन भये निमाही, नहीं अब**
> **देखे बिना रहते हैं तुम्हारे। सबको छोड़ तुम्हें पाया है, देखूं**
> **कि तुम होते हो हमारे। तपन बुझे तन की और मन की, हों**
> **हम-तुम पल एक न न्यारे।**

वस्तुतः श्रृंगार रस अजातशत्रु नाटक का पोषक रस कहा जा सकता है। वीर रस के साथ-साथ इसकी प्रधानता भी नाटक में स्पष्टतः दिखाई देती है।

3. **शांत रसः** शांत रस वहाँ होता है जहाँ आवेश, चाहे वह मधुर हो या पुरुष, उबलकर सीमा तोड़ना चाहता है, तभी शांत रस के शीतल छींटे उसे शांत और संयत कर देते हैं। प्रस्तुत नाटक में मल्लिका, गौतम और बिंबसार के संवादों में शांत रस होने की पुष्टि की है। इस संबंध में उनके विचार हैं-

> **"तृतीय अंक में शांत रस की प्रधानता दिखाई पड़ती है**
> **जिसका संबंध बिंबसार के जीवन से है। निर्वेद स्थायी भाव**
> **का धारणकर्ता- आश्रय बिंबसार ही हो सकता है, अजातशत्रु,**
> **जो सांसारिक कुचक्रों और हीनता की प्रीतिनिधि है इस निर्वेद**

का आलंबन है; विरुद्धक और प्रसेनजित का प्रसंग और छलना की कटुक्तियाँ उद्दीपन का काम करती है; बिंबसार के विरक्ति-सूचक संवाद का अनुभाव हैं: दुःख, कुतूहल, निर्वेद इत्यादि संचारी हैं।"

बिंबसार के इस विरक्ति-सूचक संवाद से स्पष्टतः शांत रस की अभिव्यक्ति हो रही है-

"आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभावत समझने लगता है, और जीवन संग्राम में प्रवृत्त हो अनेक अकांड-तांडव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अंधकार की गुफा में ले जाकर उसके शांतिमय-रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है, किंतु वह कब मानता है! मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में करता है; अपनी नीची, किंतु सुदृढ़ स्थिति से उसे संतोष नहीं होता; नीचे से ऊँचें चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या?"

प्रस्तुत नाटक में उपदेश-भावना एवं वैराग्य प्रवृत्ति मुखर होने के कारण शांत रस का वर्चस्व दिखाई देता है।

4. **हास्य रसः** प्रस्तुत नाटक में जीवक और वसंतक के प्रसंग के माध्यम से नाटककार ने हास्य रस की उत्पत्ति की है। वसंतक जीवक से कहता है-

'क्या आप निदान कर रहे हैं अजी अजीर्ण है- अजीर्ण। पाचक देना हो दो, नहीं तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वैद्य लोग अपने मतलब से रेचन तो अवश्य देंगे। अच्छा, हाँ कहो तो, बुद्धि के अजीर्ण में भी रेचन ही गुणकारी होगा? सुना जी, मिथ्या आहार से पेट का अजीर्ण होता है और मिथ्या विहार से बुद्धि का!" किंतु महर्षि अग्निवेश ने कहा है कि इसमें रेचन ही गुणकारी होता है। (हंसता है)

जीवक : तुम दूसरे की तो कुछ सुनोगे नहीं?

वसंतक : सुना है कि धन्वन्तरि के पास ऐसी पुड़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाए और दरिद्रता का केचुल छोड़कर मणिमयी बन जाए। क्या तुम्हारे पास भी - उहूँ नहीं है? तुम क्या जानो।

XXXX

केवल खलबट्टा चलाते रहे और मूर्खता का पुटपाक करते रहे।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आलोच्य नाटक में शांत, वीर एवं शृंगार रस का सुन्दर

नोट्स

परिपाक हुआ है लेकिन कोई भी इतना प्रमुख स्थान का अधिकारी नहीं हो सका कि उसे मुख्य रस की श्रेणी में रखा जा सके।

1.15 अजातशत्रु : गीति-योजना

भारत के प्राचीन नाटकों में गान-वाद्य के प्रसंग अवश्य आए हैं परन्तु आधुनिक नाटकों की भाँति उनमें अधिक गानों का प्रयोग नहीं किया गया है। वस्तुतः रोमांटिक नाटकों का प्राण उनका संगीत ही रहा है। संस्कृत के नाटकों में भी गीतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। संगीत ही ऐसा तत्त्व है जिससे नाटक की कथावस्तु को सामान्य जीवन से बहुत ऊपर उठाया जा सकता है। भावुकता एवं रसात्मकता की सृष्टि गीतों के माध्यम से ही संभव है। जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के नाटक में गीतों के संबंध में अभिमत है- "यदि इनका (गीतों का) स्थल-विशेष पर उचित व्यवहार किया जाए तो उतना भद्दा न लगे।"

प्रसाद जी सौंदर्य और प्रेम के सफल शिल्पी हैं। उनके नाटकों में सौंदर्य और प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है, इसी कारण उनके सभी नाटकों में संगीत का झरना कल-कल की ध्वनि करता हुआ बहता दिखाई देता है। इसी तथ्य को अगर दूसरे शब्दों में कहें तो हम कह सकते हैं कि वे मूलतः एक कवि थे और उनकी काव्य-प्रतिभा उनकी समस्त विधाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। अगर उनकी गद्यपरक रचनाओं की भाषा-शैली का अनुशीलन किया जाए तो उनमें काव्यात्मक की छवि मुखरित होती हुई दिखाई देती है। आज के आधुनिक गीतों का जन्म प्रसाद के उन्हीं गीतों से हुआ है जो उन्होंने अपने नाटकों के लिखे हैं। इन गीतों में कल्पना और भावुकता का सर्वश्रेष्ठ सामंजस्य है। प्रसाद जी ने अपनी गीत विषयक अवधारणा को 'स्कन्दगुप्त' नाटक की नायिका देवसेना के द्वारा स्पष्ट करवाया है- "बिना गान के कोई कार्य नहीं। विश्व के प्रत्येक कम्प में ताल है, प्रत्येक परमाणु के मिलन में सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है।"

साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत नाटकों में नृत्य-गीत आदि की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है, लेकिन प्रसाद का नाटकों में गीत संबंधी दृष्टिकोण उस समय की गीत प्रधान पारसी नाटक पद्धति के कारण है क्योंकि पारसी कंपनियों का नाटक खेलना एक व्यवसाय था। ये कंपनियाँ संगीत-योजना के द्वारा सामान्य पाठक का मनोरंजन करती थीं और सामान्यजन भी नाटक के मध्य में प्रयुक्त इन गीतों के प्रति विशेष आकृष्ट थे। प्रसाद मूल रूप से कवि थे अतः उन्होंने नाटकों को गीतों से सजाया-संवारा है। उनके संगीत के स्वर इतने व्यापक रहे कि नर्तकियों आदि तक ही सीमित न रहकर नाटक के प्रायः सभी पात्रों तक विस्तृत हैं। डॉ. विजय कुमार वेदालंकार ने भी प्रसाद की गीति-योजना के संबंध में कहा है-

> **"प्रसाद को प्रकृति, नियति, अन्तर्द्वन्द्व, रहस्यावादी भावना,**
> **प्रेम और करुणा तथा प्रकृति के कार्यों में झलकती हृदय की**
> **छाया आदि सभी ने विवश कर दिया कि वे मधुर गीतों का**
> **सृजन कर नाटकों में सरस प्राणों का संचार करें।"**

'अजातशत्रु' नाटक में कुल 21 गीतों की योजना की गयी है। ये गीत विविध विषयों से संबंधित हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है-

1. **प्रार्थना विषयक गीत** – प्रार्थना-विषयक गीत का प्रारंभ दूसरे अंक के षष्ठ दृश्य में वासवी द्वारा होता है। बिंबसार की छोटी रानी छलना अपने पुत्र अजातशत्रु की काशी पर विजय का समाचार देने वासवी और बिंबसार के पास आती है। वह वासवी को उसकी असफलता सूचित करवाने के लिए स्वयं आई है। उसके व्यंग्य-बाण न सहने की स्थिति में बिंबसार उसे कहता है- 'चली जा तुझे लज्जा नहीं – बर्बर लिच्छिवि-रक्त।' उसके जाने के बाद वासवी ईश्वर से प्रार्थना करती है-

   "दाता सुमति दीजिए! मानव-हृदय-भूमि करुणा से सींचकर
   बोधन-विवेक-बीज अंकुरित कीजिए। दाता सुमति दीजिए।"

   दूसरा प्रार्थनापरक गीत मल्लिका द्वारा गाया गया है। इस गीत की भाव-भूमि बौद्धमत के चिन्तन के अनुकूल है और नाटक में मल्लिका की विचारधारा पर बौद्ध-शिक्षाओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रसेनजित मल्लिका का आशीर्वाद लेकर कारायण को सेनापति नियुक्त कर देता है, तब मल्लिका ईश्वर से यह प्रार्थना करती है-

   "अधीर न हो चित विश्व-मोह-जाल में।
   यह वेदना-विलोल-वीचि-मय समुद्र है॥
   है दुःख का भवर चला कराल चाल में।
   वह भी क्षणिक, इसे कहीं टिकाव है नहीं॥
   सब लौट जायेंगे उसी अनंत काल में॥ अधीर।"

   ईश्वर की यह प्रार्थना नाटकीय परिस्थितियों में अलपती नहीं लगती। प्रसंग के अनुकूल होने के कारण प्रार्थना गीत का अपना सौंदर्य है और इसके माध्यम से वासवी एवं मल्लिका की उज्ज्वल भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

2. **प्रेम, यौवन और सौंदर्य-विषयक गीतः** आलोच्य नाटक में प्रेम, यौवन एवं सौंदर्य से संबंधित सभी गीत श्यामा (मागधी) ने गाए हैं केवल एक गीत ऐसा है जो बाजिरा ने गाया है। इन गीतों को श्यामा ने अपने मत के भावों के प्रकाशन तथा दूसरों की प्रेरणा से उनके मनोरंजन के लिए गाया है। 'प्रेम' और 'सौंदर्य' नामक तत्त्व के अभाव में मानव जीवन निस्सार है। ये दोनों तत्त्व ही प्रकृति एवं मानव का मानव के प्रति अनुराग एवं लगाव उत्पन्न करते हैं। दर्शकों एवं पाठकों का नाटक के प्रति अनुराग एवं लगाव उत्पन्न करने के लिए प्रसाद जी ने श्यामा एवं बाजिरा नामक पात्रों की स्थापना की है।

   प्रथम अंक के पंचम दृश्य में उद्यन मागंधी से आग्रह करता है कि जब तक दासी मेरी वीणा लेकर आती है तुम्हीं कुछ सुनाओ। अपने पति के आदेश का अनुपालन करते हुए मागंधी जिस गीत को गाती है वह उसकी आंतरिक अभिलाषाओं का ही मूर्त रूप है-

   आओ हिये में अहो प्राण प्यारे! नैन भये निर्मोहि, नहीं अब
   देखे बिना रहते हैं तुम्हारे। सबको छोड़ तुम्हें पाया है, देखूँ
   कि तुम होते हो हमारे। तपन बुझे तन की और मन की, हों
   हम-तुम पल एक न न्यारे। आओ हिये में अहो प्राण प्यारे!

नोट्स

मागंधी अपने मन की इच्छा प्रकट करते हुए अपने पति से कहती है कि मैं तुम्हें एक पल के लिए भी अपने से दूर नहीं करना चाहती। उदयन उसकी एक अभिलाषा को समझते हुए उसे आश्वासन देते हुए कहता है-

हमारे वक्ष में बनकर हृदय, यह छवि समायेगी।
स्वयं निज माधुरी छवि का रसीला गान गायेगी॥
अलग तब चेतना ही चित्त में कुछ रह न जायेगी।
अकेले विश्व-मंदिर में तुम्हीं को पूज पायेगी॥

द्वितीय अंक में दूसरे दृश्य में श्यामा अपने प्रेमी विरुद्धक (शैलेन्द्र डाकू) से रात्रि को एकांत में मिलकर जो प्रणव-निवेदन करती है, अपने उस प्रेम-निवेदन को प्रभावशाली बनाने के लिए ही निम्नलिखित गीत के माध्यम से अपनी मन की अभिलाषाओं को व्यक्त करती है-

बहुत छिपाया, ऊन पड़ा अब, संभालने का समय नहीं है।
अखिल विश्व में सतेज फैला, अनल हुआ यह प्रणय नहीं है॥
कहीं तड़पकर गिरे न बिजली, कहीं न वर्षा हो कालिमा
की। तुम्हें न पाकर शंक मेरे बना शून्य यह, हृदय नहीं है॥
पलक-पांवड़े बिछा चुकी हूँ, न दूसरा और, भय नहीं है॥
चपल निकलकर कहाँ चले अब, इसे कुचल दो मृदुल
चरण से। कि आह निकले दबे हृदय से, भला कहा, यह
विजय नहीं है?

द्वितीय अंक के अष्टम दृश्य में श्यामा मदिरा का अत्यधिक सेवन करने से मदहोश सी हो जाती है और इसी दशा में शैलेन्द्र के समक्ष यह गीत गाती है-

अमृत हो जायेगा, विष भी पिला दो हाथ से अपने।
पलक ये छक चुके चेतना उसमें लगी कंपने।
विकल है इंद्रियाँ, हाँ देखते इस रूप के सामने।
जगत विस्मृत हृदय पुलकित लगा वह नाम है जपने।

यह गीत श्यामा और शैलेन्द्र के चारित्रिक गुण-दोषों को उजागर करने वाला है। इसमें श्यामा का शैलेन्द्र के प्रति अगाध विश्वास और शैलेन्द्र का श्यामा के प्रति विश्वासघात आदि विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है।

इसी अंक में श्यामा द्वारा गाया गया कामोत्तेजक गीत मदिरा-पान करते हुए शैलेन्द्र और श्यामा की मनोभावनाओं और वातावरण के सर्वथा अनुकूल है -

"निर्जन गोली प्रांतर में खोले पर्णकुटी के द्वार, दीप जलाए
बैठे थे तुम किए प्रतीक्षा पर अधिकार। बटमारों से ठगे हुए
की ठुकराए की लाखों से,

XXXX

यह विश्राम संभल जायेगा सहज व्यथा के सोने में। बीती
बेला, नील गगन-तम, छिन्न विपची, भूला प्यार, छपा-सदृश
छिपना है फिर, तो परिचय देंगे आँसू-हार॥"

प्रथम अंक के पंचम दृश्य में श्यामा और उदयन सुरापान करते हैं तथा नर्तकियाँ गीत गाती हैं जो परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल हैं। इस गीत में मागंधी के मन की यह इच्छा झलक रही है कि महाराज उदयन उसे कभी न भूल पायें-

प्यारे निर्मोही होकर मत हमको भुलाना रे। बरसों सदा
दया-जल शीतल सिंचंचे हमारा हृदय-मरुस्थल कंटीले फूल
इसी में फूलना रे।

इसी प्रकार तृतीय अंक के दूसरे दृश्य में बाजिरा विरुद्धक के प्रति आसक्त होकर गीत गाती है, जो उसकी मनोभावनाओं का अभिव्यंजक होने के कारण पूर्णतः अवसरानुकूल है-

"हमारे जीवन का उल्लास, हमारे जीवन धन का रोष। हमारी
करुणा के दो बूँद मिले एकत्र, हुआ संतोष॥

X X X X X

नहीं तो निष्ठुरता का अंत, चला दो चपल नयन के बाण।
हृदय छिद जाय विकल, वेदना से हो उसका त्राण॥

इस प्रकार उपर्युक्त अधिकांश गीतों में श्यामा अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करती नजर आती है। उसके एवं बाजिरा के हृदयगत भावों की प्रसंगानुकूल अभिव्यक्ति के कारण नाटक कथा में रोचकता एवं रोमांटिकता का समावेश हो गया है।

3. **कल्याण की कामना से संबंधितः** प्रस्तुत नाटक का प्रथम गीत वासवी द्वारा गाया गया है, जो नाट्य शास्त्र के अनुसार भरत वाक्य में दर्शकों की कल्याण कामना के लिए आशीर्वाद दिया जाता है। जब छलना अजातशत्रु और पद्मावती को लेकर झगड़ा करती है तो वासवी उन्हें समझाती हुई यह गीत गाती है, जो सर्वथा अवसरानुकूल है-

बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नहे बढ़ा उनके मन में, कुल-लक्ष्मी
हो मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में। बंधुवर्ग हो सम्मानित,
हों सवेक सुखी, प्रणत अनुचर, शांतिपूर्ण हो स्वामी का मन,
तो स्पृहणीय न हो क्यों घर?

इसके माध्यम से प्रसाद जी कहना चाहते हैं कि यदि प्रेम, दया, परस्पर मेल-जोल की भावना का प्रचार-प्रसार होगा तो प्रत्येक व्यक्ति सुखी हो जाएगा।

4. **आन्तरिक मनोदशा को चित्रित करने वालेः** संसार-सागर में रहते हुए मानव सुख-दुःख दोनों अवस्थाओं से गुजरता है। सुख की अवधि ही लंबी होती है लेकिन दुःख ज्यादा समय तक न सट पाने के कारण जीवन दुःखमय ही दिखाई देने लगता है। इन्हीं दुःखों से निजात पाने के कारण जीवन सुखावस्था के सुनहरी क्षणों का आनंद लेने के लिए मानव संगीत के माध्यम से

नोट्स

अपने मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार की अभिव्यक्ति आलोच्य नाटक में भी हुई है। प्रथम अंक के पाँचवे दृश्य के आरम्भ में मागंधी इस बात से दुःखी है कि उसके पति महाराज उद्यन उसकी उपेक्षा करते हुए अन्य दोनों रानियों से मिलने के लिए जाते हैं। अपनी इस खीझ को ही वह निम्नलिखित गीत के माध्यम से उजागर करती है-

अली ने क्यों भला अवहेलना की। चंपक-कली खिली सौरभ
से उषा मनोहर बेला की विरस दिवस, मन बहलाने को
मलयज से फिर हेले की। अली ने क्यों अवहेलना की।"

इसी प्रकार की स्थिति पद्मावती के साथ भी है। वह वीणा बजाने का प्रयास करती है लेकिन वह बज नहीं पाती, क्योंकि वह मन से बहुत दुःखी है। उसके पति उसके प्रति उदासीन हैं इसीलिए वह दुःखी है। ऐसी स्थिति में गाया गया यह गीत पद्मावती के हृदय की निराशा और व्याकुलता को अभिव्यक्त करता है। गीत-योजना की दृष्टि से यह गीत सर्वथा उचित है-

मींड मत खिंचे बीत के तार! निर्दय उँगली। अरी ठहर जा,
पल-भर अनुकंपा से भरे जा, यह मूर्च्छत मूर्च्छना आह-सी
निकलेगी निस्सार। छेड़-छेड़कर मूक तंत्र को विचलित कर
मधुमौन मंत्र को बिखरा दे मत, शून्य पवन में लय हो
स्वर-संसार मसल उठेगी सकरुण वीणा, किसी हृदय को
होगी पीड़ा, नृत्य करगे नग्न विकलता, परदे के उस पार!"

प्रथम अंक के अष्टम दृश्य में पद्मावती अपने मन को यह सांत्वना दे रही है कि मेरे पति अगर मेरे पास नहीं आते तो इसमें मुझे घबराना नहीं चाहिए क्योंकि मैं तो अपनी तरु से उनकी वफादार हूँ। इसी संदर्भ में वह दो पद्यात्मक पंक्तियाँ प्रयोग करती है-

"हमारा प्रेमनिधि सुंदर सरल है,
अमृतमय है, नहीं इसमें गरल है।"

द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में समुद्रगुप्त श्यामा से कुछ गाने के लिए कहता है। वह अपने कोमल कंठ से उसकी इच्छापूर्ति करती हुई गाने लगती है-

"चला है मंथर गति में पवन रसीला नंदन कानन का। नंदन
कानन का रसीला नंदन कानन का ॥ च० ॥

XXXXX

उषा सुनहला मद्य पिलाती, प्रकृति बरसाती फूल, मतवाले
होकर देखो तो विधि-निषेध को भूल; आज कर लो अपने
मन का। नंदन कान का, रसीला नंदन कानन का ॥ च० ॥

उपर्युक्त गीत में श्यामा की भी यही इच्छा झलकती है कि समुद्रदत्त उसके प्रति इतना अधिक आकृष्ट हो जाए कि वह उसकी बातों का अंधानुकरण करने लगे। इस प्रकार यह गीत परिस्थितियों के अनुकूल है।

तृतीय अंक के तीसरे दृश्य में विरुद्धक जिस गीत को गाता है, उसमें विरुद्धक का वाजिरा के प्रति प्रेम-भाव अभिव्यक्त हुआ है। यह उसकी कल्पनाओं के माध्यम से उपजा एक-तरफा प्रेम है –

"अलक की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले
अवलंब सुखी सो रहे थे इतने दिन, कैसे हे नीरद निकुरंब।
बरस पड़े क्यों आज अचानक सरसिज कानन का संकोच,
अरे जलद में भी यह ज्वाला! झुके हुए क्यों किसका सोचा,
थके प्रवासी बनजारों-से लौटे हो मंथर गति से; किस अतीत
की प्रणय-पिसा जगती चपला-सी स्मृति से?

यह गीत पूर्णतः प्रसंगानुकूल है। इसमें विरुद्धक अपने ही मन से प्रश्न करता है कि मुझमें यह प्रेम-भाव कैसे अंकुरित हुआ।

तृतीय अंक में सप्तम दृश्य में यह दिखाया गया है कि श्यामा का जीवन पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। वह अपनी मनोदशा के अनुकूल यह गीत गाती है। इस गीत की योजना श्यामा की मनोदशा की सूचना देने के लिए की गई है-

"स्वप्न दीखता न विश्व में अब, न बात मन में समाय कोई।
पड़ी अकेले विकल रो रही, न दुःख में है सहाय कोई। पलट
गए दिन सनेह वाले, नहीं नशा, अब रही न गर्मी। न नींद
सुख की, न रंगलिया, न सेज उजला बिछाय सोई।

XXXXX

क्षणिक वेदना अनंत सुख बस, समझ लिया शून्य में बसेरा।
पवन पकड़कर पता बताने न लौट आया न जाय कोई।

5. **उपदेशात्मक गीतः** मानव हृदय को संयमित एवं सन्मार्ग पर चलाने के लिए साधु-संतों एवं विद्वानों द्वारा समय-समय दिए उपदेश कारगर सिद्ध हुए हैं। सच्चे उपदेश मानव-व्यवहार को भी नियंत्रित करते हैं। आलोच्य नाटक में भी गौतम बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश सभी के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में बिंबसार गौतम बुद्ध के प्रति आदर भावना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भगवन आपने यहाँ पधारकर मुझे अनुगृहीत किया है। यह सुनकर गौतम उन्हें समझाते हैं कि राजन! कोई किसी को अनुगृहीत नहीं करता। विश्वभर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो सभी प्राणियों में समानता बनाए रखती है। गौतम इसी 'कारुणा' के विषय में बताते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त करते हैं-

"गोधुली के राम पटल में स्नेहांचल फहराती है।
स्निग्ध उषा के शुभ्र गगन में हास-विलास दिखाती है॥
मुग्ध मधुर बालक के मुख पर चंद्रकांति बरसाती है।
निमेष ताराओं से वह ओस-बूंद भर लाती है॥

नोट्स

निष्ठुर आदि-सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से।
मानव का महत्त्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से।"

प्रथम अंक के षष्ठ दृश्य में भी गौतम ने एक उपदेशपरक गीत गाया है। यह गीत उस समय गाया है जब जीवक गौतम से यह कहता है कि "मगध-राजकुल में बड़ी अशांति है। वानप्रस्थ-आश्रम में भी महाराज को चैन नहीं है।" यह सुनकर गौतम मानव की चंचल प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहता है-

"चंचल चंद्र, सूर्य है चंचल, चपल सभी ग्रह तारा हैं। चंचल
अनिल, अनल, जल, थल सब चंचल जैसे पारा है। जगत
प्रगति से अपने चंचल, मन की चंचल लीला है।

XXXXX

क्षणिक सुखों को स्थायी कहना, दुःख-मूल यह भूल महा।
चंचल मानव! क्यों भूला तू, इस सीठी में सार कहाँ।

6. **संदेशपरक गीतः** किसी भी नाट्यकृति का सृजन करते समय नाटककार के मन में कोई न कोई संदेश अवश्य ही निहित होता है। वह अपने संदेश को किसी एक पंक्ति या गीत के माध्यम से भी संप्रेषित कर सकता है। प्रस्तुत नाटक में भी प्रसाद जी ने बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से दर्शकों एवं पाठकों को अवगत कराया है। उन्होंने गौतम के माध्यम से संदेश लिया है कि मानव को संसार के मोह-जाल में नहीं फँसना चाहिए, क्योंकि संसार का अस्तित्त्व तो बरसाती नाले के समान अल्पकालिक है। मानव को दीन-दुखियों की सेवा करनी चाहिए। इस गीत को प्रसाद जी ने बौद्ध-भिक्षुओं द्वारा गाते हुए दिखाया है-

"न धरो कहकर इसको 'अपना' यह दो दिन का है सपना॥
न धरो॥ वैभव का बरसाती नाला, भरा पहाड़ी झरना। बहो,
बहाओ नहीं अन्य को, जिससे पड़े कलपना॥ न धरो॥
दुखियों का कुछ आसूँ पोंछें लो, पड़े न आहें भरना। लोभ
छोड़कर हो उदार, बस, एक 'उसी' को अपना॥ न धरो॥"

उपर्युक्त गीत का महत्त्व इसलिए भी है कि विक्षुब्ध मनोदशा वाले बिंबसार को इसी गीत के माध्यम से आश्वासन दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'अजातशत्रु' की गीति-योजना पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने तथा परिस्थितियों के अंकन में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई है।

प्रसाद के नाटकों के गीतों के संबंध में डॉ. नगेन्द्र का मत है- "प्रसाद के नाटक मधु से वेटित हैं- प्रसाद मूल रूप से कवि हैं। अतः उनके नाटकों में काव्य की गहराई एवं पृथुल अन्तर्धारा बह रही है। उनके सुन्दरतम गीतों का एक बहुत बड़ा अंश इन नाटकों में बिखरा मिलेगा। इसके अतिरिक्त वस्तुचयन, पात्रों के व्यक्तित्व, वातावरण, कथोपकथन और सारभूत प्रभाव-सभी में कविता का रंगीन स्पंदन है। ... उनके नाटक गद्य-गीतों के अक्षय भंडार हैं।" इस प्रकार प्रसाद के गद्य गीतों का महत्त्व सर्वविदित है।

1.16 अजातशत्रु : पात्र-योजना

(i) अजातशत्रु

अजातशत्रु मगध नरेश बिंबसार का पुत्र और आलोच्य नाटक का नायक है। उसकी माँ का नाम छलना (चेल्लना) है। वह देवदत्त के कहने पर अपने पिता को सिंहासन से हटाकर स्वयं शासन कार्य संभालता है। नाटक के अंत में उसमें सद्बुद्धि आ जाती है, वह अपनी विमाता वासवी और पिता बिंबसार से अपने अभद्र व्यवहार के लिए क्षमा-याचना भी करता है। उसके चरित्र के कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं-

1. **कठोर स्वभाव:** नाटक के प्रारंभ में ही अजातशत्रु के कठोर स्वभाव के दर्शन हो जाते है नाटक के प्रथम वाक्य में ही उसकी क्रूरता एवं उग्र स्वभाव की झलक दिखाई देती है- "क्यों रे लुब्धक! आज तू मृगशावक नहीं लाया। मेरा चित्रक अब किससे खेलेगा?" प्रत्युत्तर में लुब्धक ने बताया कि मैंने एक मृगशावक पकड़ा तो था लेकिन जब उसकी माँ ने मेरी तरु करुणा भरी दृष्टि से देखा तो मैंने उसे छोड़ दिया। यह सुनकर अज्ञात उसे कोड़े मारने के लिए समुद्रदत्त से कोड़ा मंगवाने का आदेश देता है- "हाँ, तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ। समुद्र! ला तो कोड़ा।" इस कथन में उसकी हिंसा की प्रवृत्ति तो दिखाई देती है, साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि उसे अपनी आज्ञा का उल्लंघन पसंद नहीं है। इन दोनों मध्य जब पद्मावती हस्तक्षेप करती है तो वह कहता है- "यह तुम्हारी बढ़ाबढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता।" इतना ही नहीं वह अपनी विमाता से यहाँ तक कह देता है- "माँ, मैं तुम्हारे यहाँ नहीं आऊंगा, जब तक पद्मा घर न जाएगी।" क्योंकि- "यह पद्मा बार-बार मुझे अपदस्त किया चाहती है, और जिस बात को मैं कहता हूँ, उसे ही रोक देती है।" जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अनुसार- "इन उद्धरणों से उसमें अधिकार-दर्प, शासन की क्रूरता, पदसम्मान को लेकर उच्छृंखलता और दुःशीलता प्रकट हो रही है। यही दुर्गुण उसके चरित्र-विकास की मूल भित्ति है।"
2. **शासक रूप:** गौतम के कहने पर अजातशत्रु को युवराज बना दिया जाता है। सिंहासन पर बैठकर वह शासन कार्य को सुचारू रूप से चलाता है। समुद्र द्वारा उसे ज्ञात होता है कि काशी ने राज्य कर देने से मना कर दिया है तो वह एक कठोर शासक के समान व्यवहार करते हुए कहता है-

> **"क्या यह सच है समुद्र! मैं यह क्या सुन रहा हूँ। प्रजा भी ऐसा कहने का साहस कर सकती है? चींटी के पंख लगाकर बाज के साथ उड़ना चाहती है। 'राज-कर मैं न दूँगा'- यह बात जिस जिह्वा से निकली- बात के साथ वह भी क्यों न निकाल ली गयी? काशी का दंडनायक- कौन मूर्ख है? तुमने उसी उसे बंदी क्यों नहीं किया?"**

उसमें एक अच्छे शासक के गुण उस समय भी देखने को मिलते हैं जब वह अपनी बात को मंत्रि-परिषद में इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि सभी पार्षद उससे सहमति व्यक्त करते हैं-

"अजातशत्रु : तब-आप लोग मेरा साथ देने के लिए पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं? देश को अपमान से बचाना चाहते हैं?

कुछ सभ्य : अवश्य! राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राणों तक का विसर्जन किया जा सकता है- और हम सब ऐसी प्रतिक्षा करते हैं।"

अजातशत्रु : फिर आप लोग आज की इस मंत्रणा से सहमत हैं?

सब : हम सबको स्वीकार हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि उसका यह शासक रूप उग्रता और आक्रोश से मंडित है, ये तत्व एक अच्छे शासक के विकास-मार्ग में बाधक होते हैं।

3. **कुशल वक्ता:** देवे दत्त के साथ अजातशत्रु महामान्य परिषद के सभ्यगण से जिस युक्तिपर्ण ढगं से बातचीत करता है और उन्हें अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है उससे उसकी व्यवहार-पटुता का पूरा बोध हो जाता है। परिषद को वह जिस प्रकार उत्तेजित करके अपने पक्ष में लाता है और देवदत्त को परिषद का प्रधान बनाता है उससे उसमें सभा-चातुरी और मन की स्थिति को परखने की पूरी-पूरी शक्ति प्रकट होती है। उसके कुशल वक्ता होने का एक उद्धरण दृष्टव्य है-

> **"आप लोग राष्ट्र के शुभचिंतक हैं। जब पिताजी ने यह प्रकांड बोझ मेरे सिर पर रख दिया और मैंने इसे ग्रहण किया, तब इसे भी मैंने किशोर-जीवन का एक कौतुक ही समझा था। किंतु बात वैसी नहीं थी। मान्य महोदयो,, राष्ट्र में एक ऐसी गुप्त शक्ति का कार्य खुले हाथों चल रहा है जो इस शक्तिशाली मगध-सम्राट को उन्नत नहीं देखना चाहती। और मैंने इस बोझ को केवल आप लोगों की शुभेच्छा का सहारा पाकर लिया था; आप लोग बताइये कि उस शक्ति का दमन आप लोगों को अभीष्ट है कि नहीं? या अपने राष्ट्र और सम्राट को आप लोग अपमानित कराना चाहते है?"**

उसके इस प्रश्न के उत्तर में सभासद कह उठते हैं- "मगध का राष्ट्र सदैव गर्व से उन्नत रहेगा और विरोधी शक्तियाँ पददलित होंगी।" सभी सभासद अजात का साथ देने के लिए तत्पर हो जाते हैं और उसकी मंत्रणा को भी बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लेते हैं। यह सब कार्य उसकी वाक्-पटुता के कारण ही संभव हो सका।

4. **पद लिप्सा:** अजातशत्रु की माँ छलना एवं देवदत्त के प्रयासों के परिणामस्वरूप उसे युवराज बना दिया जाता है। उसकी माँ अपने पति बिंबसार पर दबाव डालकर उन्हें अजात के युवराज्याभिषेक की घोषणा शीघ्रताशीघ्र करवा देती है। गौतम भी बिंबसार को यही परामर्श देते हैं कि अजातशत्रु को युवराज बना देना चाहिए लेकिन इससे पहले वे अजात से एक प्रश्न करते हैं- "क्यों कुमार, तुम राजा का कार्य मंत्रि-परिषद की सहायता से चला सकोगे?" प्रश्न सुनकर अजातशत्रु जो

उत्तर देता है उसमें उसकी शासन करने की लालसा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है- "क्यों नहीं, पिता जी यदि आज्ञा दें।"

अजातशत्रु को विरुद्धक का यह पत्र मिलता है कि वह अपने पिता प्रसेनजित के विरुद्ध विद्रोह करके सिंहासन पर बैठना चाहता है। इसमें वह अजातशत्रु की सहायता चाहता है। अजात भी इस बात का समर्थन करते हुए कहता है-

> **"गुरुदेव, बड़ी अनुकुल घटना है। मगध जैसा परिवर्तन कर चुका है - वही तो कोसल भी चाहता है। हम नहीं समझते कि बुड्ढों को क्या पड़ी है और उन्हें सिंहासन का कितना लोभ है। क्या यह पुरानी और नियंत्रण में बंधी हुई, संसार के कीचड़ में निमज्जित राजतंत्र की पद्धति - नवीन उद्योग को असफल कर देगी? तिल-भर भी जो अपने पुराने विचारों से हटना नहीं चाहता उसे अवश्य नष्ट हो जाना चाहिए, क्योंकि यह जगत ही गतिशील है।"**

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अजात में पद-लिप्सा की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से विद्यमान थी। उसकी यही पद-लिप्सा नाटक में अनेक घटनाओं को जन्म देती है, लेनिक अन्त में उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है।

5. **प्रेमी रूपः** युद्ध करते हुए अजातशत्रु को बन्दी बनाकर कोशल ले जाया जाता है। वहाँ प्रसेनजित की पुत्री बाजिरा को अपने प्रति आकृष्ट देखकर उसके हृदय में विचित्र-सी अनुभूति होती है और वह भी उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है-

> **"इस श्यामा रजनी में चंद्रमा की सुकुमार किरण-सी तुम कौन हो-सुंदरि, कई दिन मैंने देखा, मुझे भ्रमण हुआ कि यह स्वप्न है। किंतु नहीं, अब मुझे विश्वास हुआ है कि भगवान ने करुणा की मूर्ति मेरे लिए भेजी है और इस बंदी गृह में भी उसकी कोई अप्रकट इच्छा कौशल कर रही है।"**

बाजिरा उससे अपना परिचय छिपाना चाहती है और कहती है कि मेरा परिचय जानकर तुम संतुष्ट नहीं होंगे। यह सुनकर अजात अपने प्रेमपूर्ण उद्‌गारों को व्यक्त करता हुआ कहता है-

> **"तुम चाहे प्रसेनजित की ही कन्या क्यों न हो; किंतु मैं तुमसे असंतुष्ट न हूँगा; मेरी समस्त श्रद्धा अकारण तुम्हारे चरणों पर लोटने लगी है, सुदरि।"**

बाजिरा का वास्तविक परिचय जानने पर भी वह उससे घृणा नहीं करता। बाजिरा के प्रेम की कोमल प्रवृत्ति उसकी हिंसा और प्रतिक्रिया को शांत करती है और उसकी उद्‌दण्डता एवं उच्छृंखलता का शमन भी कर देती है। अजात स्वयं कहता भी है- "सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है। आज विश्वास भी हो गया। तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को

विजित कर लिया। अब यदि कोशल-नरेश मुझे बंदीगृह से छोड़ दें तब भी मैं कैसे जा सकूँगा।" उसका क्रोध, घृणा, विद्रोह आदि बाजिरा का प्रेम पाकर समाप्त हो जाता है। वह सामाजिक नियमों का उल्लंघन भी नहीं करना चाहता। जब बाजिरा उसके कैदखाने का जंगला खोलकर उसे मुक्त कर देती है, तब भी वह कायर की भाँति वहाँ से नहीं भागता और सामाजिक मर्यादा का ध्यान करते हुए बाजिरा से कहता है-

> **"यह तो नहीं हो सकता। इस प्रकार के प्रतिफल में तुम्हें अपने पिता से तिरस्कार और भर्त्सना ही मिलेगे। शुभे! अब यह तुम्हारा चिर-बंदी मुक्त होने की चेष्टा भी न करेगा।"**

निष्कर्ष रूप में डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है- "प्रेम के क्षेत्र में वह सच्चे प्रेमी के रूप में दिखाई पड़ता है। बाजिरा से कारायण का प्रेम निवेदन सुनकर आत्मविश्वास और गर्व से भरे वीर की भाँति वह ललकार उठता है- "कारायण! यदि तुम्हें अपने बाहुबल पर भरोसा है तो मैं तुमको द्वंद्व युद्ध के लिए आह्वान करता हूँ।" वस्तुतः बाजिरा के प्रेम के स्पर्श के कारण ही उसकी सोच नकारात्मक से सकारात्मक बन जाती है।

6. **मातृ एवं पितृ भक्त रूपः** बाजिरा से विवाह के पश्चात् वह एक बच्चे का पिता बनता है। पिता बनने के उपरान्त ही उसे पिता और पुत्र के संबंधों की अनुभूति होती है। उसकी यही अनुभूति उसके पिता के पास ले जाकर अपनी अद्दण्डता के लिए क्षमा-याचना करने को प्रेरित करती है। वह अपने पिता के पैर पकड़ लेता और उसकी सेवा करना चाहता है। तब बिंबसार यह कहकर पैर छुड़ाने का प्रयास करता है कि, "मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्यादा नहीं भंग करनी चाहिए।' प्रत्युत्तर में अजात अपने पिता से कहता है- "नहीं पिता, पुत्र का यही सिंहासन है। आपने सोने का झूठा सिंहान देकर मुझे इस सत्य-अधिकार से वंचित किया अबाध्य पुत्र को भी कौन क्षमा कर सकता है?" वह अपनी माँ छलना द्वारा दी गई शिक्षा को अपूर्ण बताकर अपने पिता से क्षमा माँगने में सफल हो जाता है-

> **"नहीं पिता, मुझे भ्रमण हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था तो केवल जंगलीपन की स्वतंत्रता का अभिमान-अपने को विश्व-भर से स्वतंत्र जीव समझने का झूठा - आत्सम्मान।"**

इतना ही नहीं वह अपनी विमाता वासवी के प्रति भी उस समय श्रद्धानत हो जाता है जब वह उसे जेल से मुक्त कराती है। वह कह उठता है-

> **"कौन! विमाता? नहीं, तुम मेरी माँ! इतनी ठंडी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया। मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया है, माँ! क्या तुम मुझे क्षमा करोगी?"**

वासवी उसे लेकर मगध के सिंहासन पर बिठाने के लिए आतुर है इसलिए उसे शीघ्रातिशीघ्र मगध भेजना चाहती है तो अजात कहता है-

"नहीं माँ, अब कुछ दिन उस विषैली वायु से अलग रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझे अभी नहीं छोड़ा जाएगा।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने आलोच्य नाटक में अजातशत्रु के जीवन के एक क्रमिक-विकास को प्रस्तुत किया है। उसके चरित्र की गतिशीलता उसे असद् प्रवृत्तियों से सद् प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर करती है। बाजिरा का प्रेम उसके क्रोध, घृणा, प्रतिहिंसा, उच्छृंखलता आदि नकारात्मक प्रवृत्तियों का शमन कर देता है। इस प्रकार अजातशत्रु नामक पात्र नाटक के अन्त में दर्शकों एवं पाठकों के हृदय में स्थान बना लेता है और उनकी सहानुभूति का पात्र भी बन जाता है।

(ii) बिंबसार

प्रस्तुत नाटक में बिंबसार के दर्शन मगध के वृद्ध सम्राट के रूप में होते हैं। पुत्र द्वारा विद्रोह करके सिंहासन का कार्य-भार स्वयं लेने पर वह तटस्थ रहकर वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर लेता है। नाटक का समापन उनकी मृत्यु से ही हुआ है। आलोच्य नाटक में प्रसाद जी ने उनके चरित्र-विकास को इतना अधिक विस्तार नहीं दिया है लेकिन फिर भी वह प्रस्तुत नाटक का एक प्रमुख पात्र है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. **राज्याधिकार की लिप्सा:** आलोच्य नाटक में बिंबसार का राज्य-सिंहासन के प्रति विशेष मोह दिखाई देता है। वह वृद्ध होने पर भी अपने पुत्र अजातशत्रु को राज्य सिंहासन नहीं सौंपना चाहता। उनकी रानी छलना अपने पुत्र को सिंहासन दिलवाने के लिए जी-तोड़ प्रयास करती है और इस विषय पर वासवी से भी झगड़ा कर बैठती है। गौतम बुद्ध के आने के कारण वार्तालाप रुक जाता है। छलना वहाँ से जाने की आज्ञा माँगती है तो बिंबसार व्यंग्यात्मक स्वर में कहता है- "हाँ छलने! तुम जा सकती हो, किंतु कुणीक को न ले जाना क्योंकि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है। उनका यह कथन प्रकारान्तर में राज्य के प्रति मोह-भाव व्यक्त करता है। गौतम बुद्ध पहले ही सचेत कर देता है कि तुम्हें इस समय राज-कार्य छोड़कर उचित व्यक्ति को दे देना चाहिए-

   "यह बोझ, जहाँ तक शीघ्र हो, यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाए, तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिए, क्योंकि राजन्, इससे कभी-न-कभी तुम हटाये जाओ; जैसा कि विश्व भर का नियम है। फिर, यदि तुम उसे उदारता से भोगकर छोड़ दो, तो इसमें क्या दुख?"

   लेकिन विंबसार इसे छोड़ना नहीं चाहता, वह अपनी राज्य-सिंहासन संबंधी आसक्ति को प्रकट करते हुए कहता हैं-

   "योग्यता होनी चाहिए महारा! यह बड़ा गुरूत्तर कार्य है। नवीन रक्त राजश्री को सदैव तलवार के दर्पण में देखना चाहता है।"

बिंबसार द्वारा इस प्रकार के तर्क देते हुए देखकर गौतम उनकी राज्य-लिप्सा की प्रवृत्ति को उजागर करते हुए कहता है-

> **"ठीक है। किंतु काम करने के लिए किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। यह तुम्हारा बहाना राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन् समझ लो- इस गृह-विवाद और आंतरिक झगड़े से विश्राम लो।"**

बिंबसार गृह-कलह की चेतावनी से भयभीत होकर राज्यसिंहासन अजातशत्रु को सौंप देता है। सिंहासन को त्यागकर भी वह संतुष्ट नहीं है क्योंकि राज्याधिकार की लिप्सा उसे बार-बार सताती है। वासवी द्वारा यह प्रस्ताव रखने पर कि काशी का राज्य उसके पिता ने उसे दहेज में दिया था, अतः आप अपना सम्मान बचाने के लिए अपने पास रख सकते हैं। इस प्रस्ताव का बिंबसार विरोध नहीं करता, जिसके कारण प्रकारान्तर में युद्ध भी होता है। अर्थात् बिंबसार में सत्ता के प्रति मोह बना रहता है।

2. **बौद्ध-धर्म का अनुयायी:** प्रसाद जी ने 'अजातशत्रु' के विभिन्न उद्देश्यों में से एक उद्देश्य 'बौद्ध धर्म का प्रभाव' को प्रमुखता से स्थान दिया है। बिंबसार को भी इसी धर्म का अनुसरण करते हुए दिखाया है। वे गौतम के बहुत बड़े प्रशंसक हैं। जिस समय बिंबसार अपनी रानी छलना के झगड़े में उलझे हुए थे कि तभी कंचुकी आकर यह सूचना देती है कि भगवान गौतम बुद्ध आ रहे हैं तो वे छलना से कहते हैं-

> **"छलना! हृदय का आवेग कम करो, महाश्रमणों के सामने दुर्बुलता न प्रकट होने पावे।" गौतम के आगमन करते ही बिंबसार उनसे विनयपूर्वक कहने लगे- "भगवन, आपने पधारकर मुझे अनुगृहीत किया है।" तथा "करुणमूर्ती! हिंसा से रंगी हुई वसुंरा आपके चरणों के स्पर्श से अवश्य ही स्वच्छ हो जाएगी। उसकी कलंक-कालिमा धुल जाएगी।"**
>
> X X X X X X
>
> **"भगवान की शांतिवाणी की धारा-प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी - मैं कृतार्थ हुआ।"**

बिंबसार सिंहासन त्यागकर अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठाने के पक्षपाती नहीं थे लेकिन जब गौतम बुद्ध उन्हें यह परामर्श देते हैं कि-

> **"तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो॥"**

यह आदेश सुनकर बिंबसार थोड़े से विरोध के बाद उसे स्वीकार कर लेते हैं और अजात को युवराज बनाकर स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लेते हैं।

इसी प्रकार जब बिंबसार को यह पता चलता है कि देवदत्त उसे गौतम का प्रबल समर्थक समझकर उसके प्राणों का हरण करना चाहता है तो वह गौतम के संबंध में कहता है-

> "मूर्खता-नहीं नहीं, वह देवदत्त की क्षुद्रता है। भला आत्मबल या प्रीतिभा किसी की प्रशंसा के बल से विश्व में खड़ी होती है? अपना अवलंब वह स्वयं है, इसमें मेरी इच्छा या अनिच्छा क्या? वह दिव्य-ज्योति स्वतः सबकी आँखों को आकर्षित कर रही है। देवदत्त का विरोध केवल उसे विरोध दे सकेगा।"

इस प्रकार प्रसाद जी ने बिंबसार को सम्पूर्ण नाटक में गौतम के उपदेशों एवं शिक्षाओं का अनुपालन करते हुए दियाया है।

3. **दार्शनिक विचारधाराः** आलोच्य नाटक में बिंबसार की विचार-धारा को दार्शनिक चिंतन के रूप में अभिव्यक्ति मिली है। संपूर्ण जीवन जी लेने के बाद ही उसमें इस दार्शनिकता ने जन्म लिया है। प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में मानव-जीवन की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

> "आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्जवल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है, और जीवन संग्राम में प्रवृत्त हो अनेक अकांड-तांडव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अंधकार की गुफा में ले जाकर उसके शांतिमय-रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है, किंतु वह कब मानता है! मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है; अपनी नीची, किंतु सुढ़ परिस्थिति से उसे संतोष नहीं होता; नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर वह गिरे तो भी क्या?"

वे प्रकृति और सामाजिक जीवन में आए बवंडरों के माध्यम से अपनी दार्शनिक विचारधार को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

> "प्रत्येक संभावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व-भर में स्थान-स्थान पर वात्याचक है, जल में उसे भँवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं, राज्य विप्लव, समाज में उच्छृंखलता और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो, चाहे बवंडर-यही न?"

नोट्स

प्रस्तुत नाटक के अंतिम में उनका स्वगत कथन दार्शनिक विचारधारा की चरम परिणति है-

> "संध्या का समीर ऐसा चला रहा है जैसे दिन भर का तपा हुआ अद्विग्न संसार एक शीतल विश्वास छोड़कर अपने प्राण धारण कर रहा हो। प्रकृति की शांतिमयी मूर्ति निश्छल होकर भी मधुर झोके से हिल जाती है। मनुष्य-हृदय भी एक रहस्य है, एक पहेली है। जिस पर क्रोध से भख-हुंकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिए प्रस्तुत रहता है। उन्माद! और क्या? इस पागल विश्व के शासन से अलग होकर मनुष्य कभी निश्चेष्टता नहीं कर सकता-क्या? हाय रे मानव! इतनी दुरभिलाषायें बिजली की तरह तू अपने हृदय में क्यों आलोकित करता है? क्या निर्मल-ज्योति तारागण की मधुर किरणों के सदृश सद्वृत्तियों का विकास तुझे नहीं रुचता! भयानक भावुकता और उद्वेगजनक अंतःकरण लेकर तू क्यों व्यग्र हो रहा है? जीवन की शांतिमयी सच्ची परिस्थिति को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक खड़ा रहेगा? यदि मैं सम्राट न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती - पवन के किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता - तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता। उस अस्तित्व को अनस्तित्व के साथ मिलाकर कितना सुखी होता! भगवान् - असंख्य ठोकरें खाकर लुढ़कते हुएए जड़ ग्रहपिंडों से भी तो इस चेतन मानव की बुरी गति है। धक्के-पर-धक्के खाकर भी यह निर्लज्ज, सभा से नहीं निकलना चाहता। कैसी विचित्रता है। अहा! वासवी भी नहीं है।"

4. **पिता की भूमिका में:** ऐतिहासिक साक्ष्य के अनसुार बिबंसार को उसके पुत्र अजात ने कारागार में डाल दिया था। लेकिन नाटककार अजातशत्रु ने इस घटना में कुछ परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है। नाटक के प्रथम अंक में बिंबसार और वासवी के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि वे अपने पुत्र के प्रति थोड़े से दुःखी अवश्य हैं लेकिन उसे कहते कुछ नहीं-

बिंबसार : देवि, तुम कुछ समझती हो कि मनुष्य के लिए एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है?

वासवी : नाथ! मैं तो समझती हूँ कि वात्सल्य नाम का जो पुनीत स्नेह है, उसी के पोषण के लिए।

बिंबसार : स्नेहमयी! वह भी हो सकता है, किंतु मेरे विचार में कोई और ही बात है।

वासवी : वह क्या, नाथ?

बिंबसार : संसारी को त्याग, तितिक्षा या विराग का पथिक होने के लिए पहला और सहज साधन है। पुत्र को समस्त अधिकार देकर वीतराग है। जाने से असंतोष नहीं होता, क्योंकि मनुष्य को अपनी ही आत्मा का भोग उसे समझता है।

वासवी : मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपको अधिकार से वंचित होने का दुःख नहीं।

उपर्युक्त संवादों से स्पष्ट है कि महाराज बिंबसार अपने पुत्र के प्रति रुष्ट न होकर उनसे संतुष्ट ही है। लेकिन वे अजातशत्रु के व्यवहार से थोड़े-बहुत चिंतित अवश्य हैं।

महाराज बिंबसार और वासवी को अज्ञात अपनी निगरानी में रखता है, इसीलिए उसका अपने पुत्र के प्रति रुष्ट होना भी स्वाभाविक है। इसी कारण अजात को पुत्र रत्न की प्राप्ति होने पर वह अपने पिता से मिलने के लिए आता है तो बिंबसार कहता है- "कुणीक कौन! मेरा पुत्र या मगध का सम्राट अजातशत्रु?" इसी प्रकार जब कुणीक अपने पिता के पैरों में गिरकर माफी मांगता है तो बिंबसार व्यंग्यमयी वाणी में कहता है-

> **"नहीं, नहीं, मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्यादा**
> **नहीं भंग करनी चाहिए। मेरे दुर्बल चरण- आह, छोड़ दो।"**

लेकिन अजातशत्रु अपने पिता से हृदय से माफी माँगता है। वह अपना पक्ष रखते हुए कहता है-

> **"नहीं पिता, पुत्र का यही सिंहासन है। आपने सोने का झूठा**
> **सिंहासन देकर मुझे इस सत्य-अधिकार से वांचित किया**
> **अबाध्य पुत्र को भी कौन क्षमा कर सकता है?"**

अन्ततः बिंबसार अपने पुत्र को क्षमा कर देते हैं? जब संपूर्ण परिवार उसके पास इकट्ठा हो जाता है तो वे हर्षातिरेक के कारण स्वर्गवासी हो जाते हैं।

5. **पति के रूप में:** महाराज बिंबसार का बड़ी रानी वासवी के प्रति विशेष स्नेह है लेकिन छोटी रानी छलना के प्रति उसके हृदय में कटुता और वाणी में व्यंग्य है। यह व्यवहार-भिन्नता दोनों पत्नियों के व्यवहार में अन्तर के कारण है। उनकी बड़ी रानी अपने पति की सेवा करना ही अपने जीवन का उद्देश्य मानती है जबकि छलना उनसे झगड़ा करने पर तैयार रहती है। जब छलना बिंबसार से वासवी की शिकायत करती है कि वह उसे राजमाता के पद से अपदस्थ करना चाहती है, तो वे छलना को समझाते हुए कहते हैं-

> **"छलना! यह क्या! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के**
> **लिए थोडे-सा भी सम्मान कर लेना तुम्हें विशेष लघु नहीं**
> **बना देगा - उन्होंने तुम्हारी कभी अवहेलना तो नहीं की।**
>
> XXXXXX
>
> **ठहरो! तुम्हारा यह अभियोग अन्यायपूर्ण है। क्या इसी कारण**
> **तो बेटी पद्मावती नहीं चली गयी? क्या इसी कारण तो**

कुणीक मेरी भी आज्ञा सुनने में आनाकानी नहीं करने लगा है? कैसा उत्पाद मचाना चाहती हो?"

एक अन्य स्थान पर छलना वासवी का अत्यधिक अपमान करती है, यह सब देखकर बिंबसार क्रोध में आकर छलना को चेतावनी देते हुए कहते हैं-

"छलना! मैंने राजदण्ड छोड़ दिया है; किन्तु मनुष्यता ने अभी मुझे नहीं परित्याग किया है। सहन की भी सीमा होती है। अधम नारी-चली जा। तुझे लज्जा नहीं-बर्बर लिच्छिवि रक्त।"

नाटक के अन्त में वासवी के कहने पर वह छलना को माफ कर देता है- "मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हूँ... उठो वत्स अजात! ... उठो छलना, तुम भी।" निष्कर्षतः कह सकते हैं कि बिंबसार छलना और वासवी द्वारा किए गए षडयंत्र को माफ कर देता है। ऐसी स्थिति में उनके जीवन में दार्शनिक विचारधारा का पनपना स्वाभाविक ही है। वस्तुतः उन्होंने अपने संपूर्ण कर्तव्यों को निष्ठापूर्वक निभाया है।

(iii) विरुद्धक

विरुद्धक राजा प्रसेनजित का पुत्र और कौशल का राजकुमार है। वह राज्य-सिंहासन प्राप्त करने के लिए अपने पिता से विद्रोह करता है। उसका पिता उसे राज्य से निष्काषित कर देता है इसीलिए वह काशी में जाकर शैलेन्द्र नामक डाकू बन जाता है। वह श्यामा और बंधुल की हत्या भी करता है लेकिन भाग्यवश श्यामा तो बच जाती है। इस प्रकार आलोच्य नाटक में वह खलनायक की भूमिका निभाता है। उसके चरित्र के महत्त्वपूर्ण तथ्य अवलोकनीय हैं-

1. **सिंहासन-लिप्साः** विरुद्धक की राज्य-लोलुपता का पता प्रथम अंक के सप्तम दृश्य में श्रावस्ती में प्रसेनजित की राजसभा आए विरुद्धक और उनके पिता प्रसेनजित के संवादों से चलता है। राजसभा में सुदत्त द्वारा सूचना मिलती है कि मगध नरेश बिंबसार से एक षडयंत्र द्वारा उनके पुत्र अजातशत्रु ने राज्य-सिंहासन पर अधिकार कर लिया है। यह सुनकर विरुद्धक इस घटना को उचित ठहराते हुए कहता है-

   "मैंने तो सुना है कि महाराज बिंबसार ने वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किया है और उस अवस्था में युवराज का राज्य संभालना अच्छा ही है।" विरुद्धक के कथन को सुनकर प्रसेनजित आश्चर्यचकित हो जाते हैं और उससे पूछते हैं- "विरुद्धक! क्या अजात की ऐसी परिपक्व अवस्था है कि मगध नरेश उसे साम्राज्य का बोझ उठाने की आज्ञा दें।" लेकिन विरुद्धक अजातशत्रु के माध्यम से अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहता है- "पिताजी! यदि क्षमा हो तो मैं

यह कहने में संकोच करूँगा कि युवराज को राज्य संचालन
की शिक्षा देना महाराज का ही कर्त्तव्य है।"

प्रसेनजित अपने पुत्र के वास्तविक मन्तव्य को समझकर उत्तेजित होते हुए कहते हैं-

"और आज तुम दूसरे शब्दों में उसी शिक्षा को पाने का
उद्योग कर रहे हो। क्या राज्याधिकार ऐसी प्रलोभन की वस्तु
है कि कर्त्तव्य और पितृभक्ति एक बार ही भुला दी जाय!"
विरुद्धक : पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार माँगे, तो
उसमें दोष ही क्या?

विरुद्धक के इस स्पष्ट को सुनकर प्रसेनजित अत्यधिक क्रोधित हो जाते हैं और उसकी माँ को दासी पुत्री एवं उसकी नसों में मिश्रित रक्त प्रवाहित होने का आरोप लगाते हुए, विरुद्धक को युवराज पद से निष्काषित करते हुए कहते हैं-

"तब तू अवश्य ही नीच रक्त का मिश्रण है। उस दिन,
जब तेरी ननिहाल में तेरे अपमानित होने की बात मैंने सुनी
थी, मुझे विश्वास नहीं हुआ, अब मुझे विश्वास हो गया -
शाक्यों के कथानुसार तेरी माता अवश्य ही दासी-पुत्री है।
नहीं तो तू इस पवित्र कोसल की विश्व-विश्रुत गाथा पर
पानी फेरकर अपने पिता के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर न करता।
क्या इसी कोसल में रामचंद्र और दशरथ के सदृश पुत्र और
पिता अपना उदाहरण नहीं छोड़ गये हैं।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विरुद्धक अजातशत्रु की तरह ही राजा बनने की इच्छा मन में संजाए हुए हैं।

2. आज्ञाकारी पुत्रः विरुद्धक को माता और पिता का आज्ञाकारी पुत्र कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं। जब विरुद्धक अपने पिता के समक्ष अजातशत्रु के राजा बनने के पक्ष में अपना मत प्रकट करता है तो प्रसेनजित उसके तर्क को सुनकर उत्तेजित हो जाता है। वह उसे भला-बुरा कहता है लेकिन वह कुछ नहीं बोलता और अपने युवराज होने की मर्यादा को बनाए रखता है। वह उसे यहाँ तक कह देता है कि "तू अवश्य ही नीच रक्त का मिश्रण है", यह सुनकर भी विरुद्धक चुप ही रहता है लेकिन बीच में सुदत्त कहता है- "दयानिधे! बालक का अपराध मार्जनीय है।" पिता-पुत्र के इस विवाद में सुदत्त द्वारा यह संवाद बोलने पर वह उसे यह कहकर डाँट देता है-

"चुप रहो सुदत्त! पिता कहे और पुत्र उसे सुने! तुम
चाटुकारिता करके मुझे अपमानित न करो।"

क्रोध में आकर प्रसेनजित यह घोषणा कर देते हैं- "आज से यह निर्भीक किंतु अशिष्ट बालक अपने युवराज पद से वंचित किया गया। और, इसकी माता का राजमहिषी का-सा सम्मान नहीं होगा ...।" यह सब सुनकर भी वह विरोध न करके केवल न्याय की ही माँग करता है-

नोट्स

"पिताजी, मैं न्याय चाहता हूँ। विरुद्धक की न्याय की माँग ठुकराए जाने तथा सभा से चले जाने के आदेश के बावजूद वह पिता के विरुद्ध वह कुछ नहीं बोलता और एक आज्ञाकारी पुत्र की भाँति सभा से सिर झुकाकर बाहर चला जाता है।

इतना अपमान सहने के बाद उसकी आँखों से अश्रु धारा बह निकलती है, इसे देखकर उसकी माता शक्तिमती उसे कहती है- "स्त्रियों की-सी रोदरशीला प्रकृति लेकर तुम कोसल सम्राट बनोगे?"

उसकी माँ उसे उत्तेजित करते हुए समझाती है कि जब वह दासी-पुत्री होकर भी राजरानी बन सकी है तो फिर तुम राजा के पुत्र होते हुए भी राजा क्यों नहीं बन सकते?-

> **"तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक हो - मैंने यह स्वप्न में भी न सोचा था। बालक! मानव अपनी इच्छा-शक्ति से और पौरुष से ही कुछ होते हैं। ... महत्त्वाकांक्षी के प्रदीप्त अग्निकुंड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरो या वे ही भाग जायेंगी। मल्लिका तो क्या, राजलक्ष्मी तुम्हारे पैरों पर लोटेगी! पुरुषार्थ करो! इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो, नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें अधिकार नहीं।"**

विरुद्धक का आज्ञाकारी रूप यहाँ भी प्रकट होता है जब वह अपनी माता द्वारा कहे गये कथनों से उत्तेजित होकर प्रतिज्ञा करता है-

> **"बस माँ अब कुछ न कहा। आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्त्तव्य और मेरे जीवन का लक्ष्य होगा। माँ! मैं प्रीतिज्ञा करता हूँ तेरे अपमान के कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूँगा और उनके रक्त में नहाकर इस कोसल के सिंहासन पर बैकर, तेरी वंदना करूँगा। आशीर्वाद दो कि इस क्रूर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊँ॥"**

निष्कर्षतः वह अपने माता और पिता के ही आदेशों का अनुपालन करते हुए की कुमार्ग का पथगामी हो जाता है। वस्तुतः आलोच्य नाटक में विरुद्धक एक आज्ञाकारी पुत्र की भूमिका का सफल निर्वाह करता है।

3. स्वाभिमानी युवकः विरुद्धक एक स्वाभिमानी प्रकृति का राजकुमार है। उसे अपनी शक्ति पर अत्यधिक भरोसा है। जब उसके पिता का उसे यह संदेश मिलता है कि यदि वह गुप्त रूप से सेनापति बंधुल की हत्या कर दे तो उसका अपराध क्षमा कर दिया जाएगा तो बंधुल से मिलकर

कोशल के सिंहासन पर अधिकार जमाने की योजना बनाता है। उस समय इन दोनों के मध्य जो वार्तालाप होता है उससे विरुद्धक के स्वाभिमानी रूप का पता चलता है, यथा-

विरुद्धक : सेनापते! कुशल तो है?

बंधुल : कुमार की जय हो! क्या आज्ञा है? आप अकेले क्यों हैं?

विरुद्धक : मित्र बंधुल! मैं तो तिरस्कृत राज-संतान हूँ। फिर अपमान सहकर, चाहे वह पिता का सिंहासन ही क्यों न हो, मुझे रूचिकर नहीं।

बंधुल : राजकुमार! आपको सम्राट ने निर्वासित तो किया नहीं, फिर आप क्यों इस तरह अकेले घूमते हैं? चलिए- काशी का सिंहासन आपको मैं दिला सकता हूँ।

विरुद्धक : नहीं बंधुल! मैं दया से दिया हुआ दान नहीं चाहता। मुझे तो अधिकार चाहिए, स्वत्त्व चाहिए।

बंधुल : फिर आप क्या करेंगे?

विरुद्धक : मैं बाहुबल से उपार्जन करूँगा। मृगया करूँगा। क्षत्रिय-कुमार हूँ। चिंता क्या है? स्पष्ट करता हूँ बंधुल, मैं साहसिक हो गया हूँ। अब वही मेरी वृत्ति।

राज-स्थापन के पहले-मगध के भूपाल भी तो यही किया करते थे।"

स्पष्ट है कि विरुद्धक बिना किसी श्रम के कुछ भी प्राप्त नहीं करना चाहता, चाहे वह राज-सिंहासन ही क्यों न हो। अतः वह एक ताकतवर और स्वाभिमानी राजकुमार है।

4. **प्रेमी रूपः** विरुद्धक का प्रेमी रूप पाठकों एवं दर्शकों के समक्ष दो रूपों में आता है- (1) मल्लिका के प्रति सच्चा प्रेम (2) श्यामा के प्रति धूर्तपूर्ण प्रेम। वह अपने अन्तर्मन से मल्लिका को प्रेम करता है। इसका प्रमाण हमें विरुद्धक के अग्रलिखित संवाद में मिलता है-

> **"मेरे जीवन का विकास-सूत्र एक बड़े कोमल कुसम के साथ बँध गया है। हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है। जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न, विश्व-भर की मदिरा बनकर मेरे उन्माद की सहकारिणी - कोमल कल्पनाओं का भंडार हो गया। मल्लिका! तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्ध-रात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्र-लोक से कोमल हीरक-कुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कंठों की रसीली तानें पुकार बनकर तुम्हारा अभिनंदन करने, तुम्हें संभालकर उतारने के लिए, नक्षत्र-लोक गई थीं।**

शिशिरकणों से सिक्त पवन तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था, उषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृंत का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा।"

लेकिन विरुद्धक का यह प्रेम उस समय विकृति का रूप धारण कर लेता है जब मल्लिका का

विवाह बंधुल के साथ हो जाता है।

राजा उद्यन की रानी मागंधी (श्यामा) विरुद्धक पर जी-जान से फिदा हो जाती है। वह अपने इसी प्रेमी की जान बचाने के लिए समुद्रगुप्त को भी बलिक का बकरा बना देती है, लेकिन इसका वही प्रेमी इसके साथ धोखा करता है। पहले तो वह श्यामा के साथ बड़ी प्रेमपूर्ण बातें करता है-

"नहीं श्यामा! तुम्हारे सौंदर्य ने तो मुझे भूला दिया है कि
मैं डाकू था। मैं स्वयं भूल गया हूँ कि मैं कौन था, मेरा
उद्देश्य क्या था; और तुम! एक विचित्र पहेली हो! हिंस्र पशु
को पालतू बना लिया, आलसपूर्ण सौंदर्य की तृष्णा मुझे
किस लोक में ले जा रही है! तुम क्या सुंदरी?

परन्तु बाद में उसका वही प्रेमी रूप बदलता हुआ नजर आता है, यथा-

"काशी के उस संकीर्ण भवन में छिपकर रहते-रहते चित्त
घबरा गया था। समुद्र के मारे जाने का मैं ही कारण था,

इसीलिए प्रकाश्य रूप से अजातशत्रु से मिलकर कोई कार्य भी नहीं कर सकता था। इस पामरी की गोद में मूँह छिपाकर कितने दिन बिताऊँ? हमारे भावी कार्यों में अब यह विघ्नस्वरूप हो रही है। यह प्रेम दिखाकर मेरी स्वतंत्रता हरण कर रही है। अब नहीं, इस गर्त्त में अब नहीं गिरा रहूँगा। कर्मपथ के कोमल और मनोहर कंटकों को कठोरता से, निर्दयता से- हटाना ही पड़ेगा। तब, आज से अच्छा समय कहाँ।।"

एक बार तो उसकी अन्तरात्मा उसे इस कार्य के लिए धिक्कारती है कि- "हृदय में एक करुण वेदना उठती है- ऐसी सुकुमार वस्तु! नहीं-नहीं!" लेकिन दूसरे ही पल वह यह सोचकर उसकी हत्या कर देता है कि-

"किंतु विश्वास के बल पर ही इसने समुद्रदत्त के प्राण लिए! यह नागिन है, पलते देर नहीं।"

वह उसके शिथिल हो जाने पर आभूषण भी उतार लेता है और उसके घर में भी जो कुछ है उसे उठा ले जाता है क्योंकि उसे धन की आवश्यकता है। जगन्नाथ प्रसाद शर्मा विरुद्धक द्वारा ऐसा कार्य किए जाने का कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "उसके इस क्रूर आचरण से इष्ट-साधन की दृढ़ता ही प्रकट होती है।

5. **विवेकशीलः** विरुद्धक युद्ध क्षेत्र में अजातशत्रु की सहायता करना चाहता है लेकिन आजतशत्रु को विश्वास नहीं होता। वह उसे विश्वास दिलाकर अपने पक्ष में कर लेता है लेकिन छलना उससे प्रश्न करती है- "कुमार विरुद्धक! क्या तुम अपने पिता के विरुद्ध खड़े होंगे, और किस विश्वास पर ...!" यह सुनकर विरुद्धक उत्तर देता है-

"जब मैं पदच्युत और अपमानित व्यक्ति हूँ, तब मुझे
अधिकार है कि सैनिक कार्य में किसी का भी पक्ष ग्रहण

कर सकूँ, क्योंकि यही क्षत्रिय की सर्वसम्मत आजीविका है।
हाँ, पिता से मैं स्वयं नहीं लड़ूँगा। इसीलिए कौशांबी की सेना
पर मैं आक्रमण करना चाहता हूँ।"

इस प्रकार वह अजातशत्रु को अपने पक्ष में युद्ध करने के लिए प्रसन्न कर लेता है, यह उसकी विवेकशीलता का ही परिणाम था।

6. **परिवतर्नशील व्यक्तित्व:** नाटक के अतं में विरुद्धक अपनी पूर्व र्भू मका के सद परिवर्तित हो जाता है। मल्लिका युद्ध में घायल विरुद्धक की यह जानते हुए भी सेवा करती है कि उसी ने उसके पति की हत्या की है। इस सेवा का विरुद्धक कुछ गलत अर्थ लगा बैठता है और मल्लिका से कहता है-

"मुझे तुमसे कुछ कहना है। मेरे हृदय में बड़ी खलबली है। यह तो तुम्हें विदित था कि सेनापति बंधुल को मैंने ही मारा है, और उसी की तुमने इतनी सेवा की। इससे क्या मैं समझूं? क्या मेरी शंका निर्मूल नहीं है? कह दो मल्लिका।"

मल्लिका उसके भ्रम का निवारण तुरन्त कर देती है और उसे लताड़ते हुए कहती है- "विरुद्धक! तुम उसका मनमाना अर्थ लगाने का भ्रम मत करो। ... तुम्हारा रक्तकलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने कपिलवस्तु के निरीह प्राणियों का, किसी की भूल पर, निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया; एक वीर को छल से मार डाला और अपने देश की जन्मभूमि के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया। तुम्हारे जैसा नीच और कौन होगा!

किंतु यह जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिए उठा लायी। ... तुम इसलिए नहीं बचाये गये कि फिर भी एक विरक्ता नारी पर बलात्कार और लंपटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुर्मों का प्रायश्चित करो- अपने को सुधारो।"

इतना सब सुनकर वह अपने आपको सुधारने का प्रयास करता है और श्यामा के साथ किए गए अनैतिक कार्य के प्रति भी क्षमा माँगता है- "श्यामा, अब मैं सब तरह से प्रस्तुत हूँ और क्षमा भी माँगता हूँ।" इतना ही नहीं वह मल्लिका के भी पैरों में गिरकर उससे क्षमा-याचना करता है -

"उदारता की मूर्ति! मैं किस तरह तुमसे, तुम्हारी कृपा से,
अपने प्राण बचाऊँ! देवि! ऐसे भी जीव इसी संसार में हैं,
तभी तो यह भ्रमण-पूर्ण संसार ठहरा है। देवि! अधम के
अपराध क्षमा करो"

नाटकांत में वह अपने द्वारा किए हुए कुकृत्यों पर पिता से क्षमा माँग लेता है- "पिता, मेरा अपराध कौन क्षमा करेगा? पितृद्रोही को कौन ठिकाना होगा? मेरी आँखें लज्जा से ऊपर नहीं उठतीं। मुझे राज्य नहीं चाहिए; चाहिए केवल आपकी क्षमा। पृथ्वी के साक्षात् देवता! मेरे पिता। मुझ अपराधी पुत्र को क्षमा कीजिए (चरण पकड़ता है)।"

इस प्रकार प्रसाद जी ने विरुद्धक को एक शक्तिशाली पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है जो मार्गदर्शन के अभाव में कुमार्ग का पथगामी बन जाता है। लेकिन बाद में मल्लिका मधुर वचनों के परिणामस्वरूप वह अपनी भूल को स्वीकारते हुए सभी से क्षमा-याचना कर लेता है और दर्शकों एवं पाठकों के हृदय में स्थान बनाते में सफल हो जाता है। इस प्रकार उसमें स्वावलंबन, दृढ़ता, उद्योग, वीरता, विवेक, मातृ-पितृ भक्ति आदि अनेक पुरुषोचित गुण और धर्म दिखाई पड़ते हैं।

1.17 प्रमुख नारी पात्र

(i) मल्लिका

पुरुष पात्रों में जो स्थान गौतम का है वही स्थान स्त्री पात्रों में मल्लिका का है। वह कोशल नरेश प्रसेनजित के सेनापति बंधुल की पत्नी है। वह एक सामान्य स्त्री पात्र न होकर विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न स्त्री है। दुर्बलताओं और मानवीय गुणों से वह बहुत दूर। उसके पति की हत्या के बाद भी वह एक भारतीय नारी की तरह जीवन व्यतीत करती है, लोभवश पथभ्रष्ट नहीं होती। इसीलिए उसका व्यक्तित्व सबके लिए अनुसरण करने योग्य है। इसके चरित्र के उदात्त तथ्य इस प्रकार हैं-

1. **पति परायण स्त्री:** मल्लिका अपने जीवन में पूर्णत: संतुष्ट, पतिपरायण और आदर्श रमणी है। वह अपने पति बंधुल के प्रति पूर्णत: समर्पित है तथा किसी के मुँह से उसकी निंदा नहीं सुन सकती। वह अपने पति प्रशंसा और अपने कर्त्तव्य दोनों को एक साथ व्यक्त करते हुए कहती है-

> **"वीर हृदय युद्ध का नाम ही सुनकर नाच उठता है। शक्तिशाली भुजदंड फड़कने लगते हैं। भला मेरे रोकने से वे रुक सकते थे। कठोर कर्मपथ में अपने स्वामी के पैर तले कंटक भी मैं नहीं होना चाहती। वह मेरे अनुराग, सुहाग की वस्तु है फिर भी उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी है, जो हमारी शृंगार-मजुंषा में बंद करके नहीं रखा जा सकता। महान हृदय को केवल विलास की मदिरा पिलाकर मोह लेना ही कर्त्तव्य नहीं है।"**

विरुद्धक की माता शक्तिमती बंधुल को काशी से वापिस बुलाना चाहती है लेकिन अपने पति की वीरता पर मुग्ध मल्लिका उन्हें बुलाने से इन्कार कर देती है-

> **"... वे तलवार की धार हैं, अग्नि की भयानक ज्वाला हैं, और वीरता के वरेण्य दूत हैं। मुझे विश्वास है कि सम्मुख युद्ध में शक्र भी उनके प्रचंड आघातों को रोकने में असमर्थ**

है। रानी! एक दिन मैंने कहा कि "मैं पावा के अमृतसर का
जल पीकर स्वस्थ होना चाहती हूँ, पर वह सरोवर पाँच
मल्लों से सदैव रक्षित रहता है। दूसरी जाति का कोई भी
उसमें जल नहीं पीने पाता।" उसी दिन स्वामी ने कहा कि
"तभी तो तुम्हें वह जल पिला सकूँगा।"

शक्तिमती उसे बताती है कि शैलेन्द्र डाकू के नाम आज्ञा-पत्र जा चुका है कि यदि तुम बंधुल की हत्या कर दोगे तो तुम्हारे पिछले अपराधों को क्षमा कर सेनापति बना दिया जाएगा। अतःतुम उसे वापिस बुला लो, लेकिन मल्लिका अपने पति के कर्त्तव्य मार्ग में रुकावट नहीं बनना चाहती-

"... मैं प्राणनाथ को अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं करा सकती,
और उनसे लौट आने का अनुरोध नहीं कर सकती। सेनापति
का राजभक्त कुटुंब कभी विद्रोही नहीं होगा और राजा की
आज्ञा से प्राण दे देना वह अपना धर्म समझेगा- जब तक
कि स्वयं राजा राष्ट्र का द्रोही न प्रमाणित हो जाय।"

यही कारण है कि बंधुल की हत्या के बाद वह विरुद्धक के प्रेम-प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है क्यों उसके मन-मस्तिष्क में केवल बंधुल के लिए ही स्थान था। उसने अपने पतिव्रता धर्म का निष्ठापूर्वक पालन किया।

2. **निर्लोभी:** मल्लिका को किसी भी प्रकार का लोभ नहीं है, बल्कि वह अपने साधनों से संतुष्ट है। शक्तिमती जब मल्लिका से यह कहती है कि मैं तुम्हारे भले के हेतु इसलिए आई हूँ क्योंकि तुम्हें पुत्रवधु बनाने की मेरी बड़ी इच्छा थी। पुत्रवधु बनाने का यह प्रलोभन मल्लिका को अपने पथ से डिगा नहीं पाता। वह शक्तिमती को प्रत्युत्तर में कहती है-

"बस, रानी बस! मेरे लिए मेरी स्थिति अच्छी है और तुम्हारे
लिए तुम्हारी। तुम्हारे दुर्विनीत राजकुमार से न ब्याही जाने
में मैं अपना सौभाग्य ही समझती हूँ। दूसरे की क्यों, अपनी
ही दशा देखो, कोसल की महिषी बनी थी, अब-। ... गर्वीली
स्त्री, तुझे राजपद की बड़ी अभिलाषा थी किंतु मुझे कुछ
नहीं, केवल स्त्री-सुलभ सौजन्य और समवेदना तथा कर्त्तव्य
और धैर्य की शिक्षा मिली है। भाग्य जो कुछ दिखावे।"

3. **धैर्यशील नारी:** जब विरुद्धक अपने पिता के कहने पर बंधलु की हत्या कर देता है तो मल्लिका को वैधव्यपूर्ण जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। जब उसे अपने पति की हत्या का समाचार मिलता है तो वह उस स्थिति को भी धैर्यपूर्वक सहन करने का प्रयास करती है-

"संसार में स्त्रियों के लिए पति ही सब कुछ है, किंतु हाय!

नोट्स

आज मैं उसी सोहाग से वांचित हो गयी हूँ। हृदय थरथरा रहा है, कंठ भरा आता है- एक निर्दय चेतना सब इंद्रियों को अचेतन और शिथिल बनाए दे रही है। आह! (ठहरकर और निःश्वास लेकर) हे प्रभु! मुझे बल दो-- विपत्तियों को सहन करने के लिए - बल दो! मुझे विश्वास दो कि तुम्हारी शरण जाने पर कोई भय नहीं रहता, विपत्ति और दुःख उस आनंद के दास बन जाते हैं, फिर सांसारिक आतंक उसे नहीं डरा सकते। मैं जानती हूँ कि मानव-हृदय अपनी दुर्बलताओं में ही सबल होने का स्वांग रचता है- किंतु मुझे उस बनावट से, उस दंभ से बचा लो। शांति के लिए साहस दो-बल दो।"

इस प्रकार के संवाद कोई साधारण नहीं कह सकती; मल्लिका जैसी दृढ़ निश्चयी एवं धैर्यशील नारी ही उन उद्‌गारों को अभिव्यक्त कर सकती है। मल्लिका की दासी सरला जब उसे धैर्य धारण करने के लिए कहती है तो मल्लिका ही इतने बड़े दुःख सहज भावों में ही अभिव्यक्त कर देती है-

"सरला! धैर्य न होता, तो अब तक यह हृदय फट जाता-

यह शरीर निस्पंद हो जाता। यह वैधत्य-दुख नारी-जाति के लिए कैसा कठोर अभिशाप है, किसी भी स्त्री को इसका अनुभव न करना पड़े।"

इस प्रकार पति की हत्या होने के कारण व्यथित होते हुए भी वह धैर्य को बनाए रखती है। ऐसे दुःखत अवसर पर भी वह अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं होती।

4. विश्वमैत्री की भावनाः प्रसाद जी ने मल्लिका और गौतम के माध्यम से विश्वमैत्री के संदेश को संप्रेषित करवाया है। मल्लिका अपने पति के हत्यारों की भी विकट स्थिति में सेवा करती है, वह किसी के साथ घृणा वैर-विरोध नहीं रखना चाहती। उसकी इसी भावना के कारण ही प्रसेनजित उसके पैरों में गिरकर अपने कुकृत्यों के लिए क्षमा-याचना करता है। युद्ध में घायल विरुद्धक अर्थ "मल्लिका का उसके प्रति आकर्षण" के रूप में लगाता है। वह उसके भ्रम का निवारण करते हुए कहती है-

"... राजकुमार! तुम्हारा कलंकी जीवन भी बचाना मैंने अपना धर्म समझा और यह मेरी विश्वमैत्री की परीक्षा थी। इसमें जब मैं उत्तीर्ण हो गयी तब मुझे अपने पर विश्वास हुआ। विरुद्धक, तुम्हारा रक्तकलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने कपिलवस्तु के निरीह प्राणियों का, किसी की भूल पर, निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से विद्रोह किया,

विश्वासघात किया; एक वीर को छल से मार डाला और
अपने देश की जन्मभूमि के विरुद्ध-अस्त्र ग्रहण किया।

तुम्हारे जैसा नीच और कौन होगा! किंतु यह सब जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिए उठा लायी।"

5. **बौद्ध-धर्म में अटूट आस्था:** बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं-करुणा, क्षमा, दया आदि में मल्लिका की अगाध आस्था है। वह गौतम द्वारा बताए गए करुणा के मार्ग की अनुगामी बन जाती है। जब बंधुल का भांजा कारायण मल्लिका से यह कहता है कि उसने प्रसेनजित की जीवन-रक्षा करके साँप को जीवनदान दिया है, तो वह उसे करुणा का संदेश देती हुई कहती है-

"अपना कर्त्तव्य मैं अच्छी तरह जानती हूँ। करुणा की विजय
पताका के नीचे हमने प्रयाग करने का दृढ़ विचार करके
उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है। अब एक भी पग पीछे
हटने का अवकाश नहीं। विश्वासी सैनिक के समान नश्वर
जीवन का बलिदान करूँगी - कारायण।"

वह दूसरों के बड़े से बड़े अपराधों को भी क्षण-मात्र से क्षमा कर देती है। काशी के युद्ध में घायल प्रसेनजित की सेवा करके वह पाठकों एवं दर्शकों की श्रद्धा-भाजन बन जाती है।

मल्लिका द्वारा सेवा-सुश्रुषा करने पर प्रसेनजित को अपनी गलती का आभास होता है और वह उससे क्षमा-याचना करते हुए कह उठता है-

"मुझे धिक्कार दो - मुझे शाप दो - मल्लिका! तुम्हारे
मुख-मण्डल पर तो ईर्ष्या और प्रीतिहिंसा का चिन्ह भी नहीं
है। जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो, मैं उसे पूर्ण करूँगा।"
प्रसेनजित मल्लिका से पुनः क्षमा-याचना करता है और उसके
चरण स्पर्श करते हुए कहता है -
"देवि, तुम्हारे उपकारों का बोझ अब मुझे असह्य हो रहा है।
तुम्हारी शीतलता ने इस जलते हुए लोहे पर विजय प्राप्त कर
ली है। बार-बार क्षमा माँगने पर भी हृदय को संतोष नहीं
होता। ... इस दुराचारी के पैरों में तुम्हारे उपकारों की बेड़ी
और हाथों में क्षमा की हथकड़ी पड़ी है। जब तक तुम कोई
आज्ञा देकर इसे मुक्त नहीं करोगी, यह जाने में असमर्थ है। "

प्रसेनजित के यहाँ से जाने के पश्चात अजातशत्रु प्रसेनजित को ढूँढता हुआ आता है। वहाँ पर मल्लिका के विषय में यह जानकर कि वह बंधुल की विधवा है और इन्होंने अपने पति के हत्यारे प्रसेनजित को भी माफ कर दिया, तो वह कहता है, "तब भी आपने उस अधम जीवन की रक्षा की। ऐसी क्षमा! आश्चर्य! वह देव-कर्त्तव्य ...!" इस प्रश्न का उत्तर देती हुई मल्लिका उससे कहती है-

"नहीं राजकुमार, यह देवता का नहीं-मनुष्य का कर्त्तव्य है।
उपकार, करुणा, समवेदना और पवित्रता मानव-हृदय के
लिए ही बने हैं।"

मल्लिका स्वयं तो सभी को क्षमा कर ही देती है, विरुद्धक को भी उसके पिता प्रसेनजित से क्षमा करवा देती है। वह 'क्षमा' के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहती है-

"... क्षमा से बढ़कर दंड नहीं है, और आपकी राष्ट्रनीति
इसी का अलंब करे, मैं यही आशीर्वाद देती हूँ।"

6. **कर्त्तव्यपरायणः** मल्लिका को नारी कर्त्तव्य-पालन और मर्यादा का आदर्श रूप कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वैधव्य दुख - 'जो नारी जाति के लिए कठोर अभिशाप है' - को मल्लिका ने जिस अगाध धैर्य के साथ स्वीकार किया है उससे उसकी कष्ट-सहिष्णुता का आभास किया जा सकता है। वह पहले दिन सद्धर्म के सेनापति सारिपुत्र मौद्गल्यायन और आनंद को भोजन के लिए निमंत्रण दे चुकी है, लेकिन उस दिन उसे अपने पति की हत्या का दुखद समाचार सुनना पड़ता है। फिर भी वह दासी सरला से भिक्षा का आयोजन करने के लिए कहती है तो दासी परिस्थितियों को देखते हुए कहना चाहती है कि ऐसे समय में क्या बौद्ध-भिक्षुओं को दान देना उचित होगा? सरला के प्रश्न का समाधान करते हुए कहती है-

"किंतु नहीं, सरला! मैं भी व्यवहार जानती हूँ, अतिथ्य परम
धर्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाकार होता है,
उसका अनुभव करती हूँ। शरीर की धमनियाँ खिंचने लगती
हैं। जी रो उठता है, तब भी कर्त्तव्य को करना ही होगा।"

वस्तुतः ऐसी कठोर स्थिति में भी वह अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं करती। कलेजे पर पत्थर रखकर वह शांतिसमन्वित श्रद्धा से निमंत्रित अपने अतिथि सारिपुत्र प्रभृति को भोजन कराती है। उस समय उसका चरित्र 'धैर्य' और 'कर्त्तव्य' का स्वयं आदर्श है।

समग्र विवेचन के उपरान्त कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने आलोच्य नाटक में मल्लिका को मानवीय कम, दैवी गुणों से सम्पन्न अधिक दिखाया है। उसके चरित्र की विशेषताएं पाठकों एवं दर्शकों पर एक अमिट छाप छोड़ती है। जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में - "मल्लिका त्याग, उदारता, सेवा, करूणा, मर्यादा और कर्तव्य की प्रतिभा है - बुद्ध के ज्ञान की जाती-जागती व्यवहार प्रतिमा है।" उसमें विश्व-मैत्री की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है जो आधुनिक युग में अत्यधिक प्रासंगिक है। इस प्रकार संपूर्ण नाटक के स्त्री पात्रों में मल्लिका का चरित्र ही सबसे ज्यादा अनुकरणीय है।

(ii) वासवी

मगध नरेश बिंबसार की बड़ी रानी वासवी को नाटककार ने सद्पात्र के रूप में परिस्थापित किया है। वह उच्चतर मानवीय मूल्यों में विश्वास रखने वाली स्त्री पात्र के रूप में पाठकों एवं दर्शकों के समक्ष आती है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है।

नोट्स

1. **मातृ हृदय:** नाटक के प्रारम्भ में वासवी जब अजातशत्रु से पूछती है कि कई दिनों से तुम मेरे यहाँ क्यों नहीं आए? तो छलना क्रोध में यह कहती है कि अब यह तुम्हारे पास नहीं आएगा।

भले ही वासवी अजात की विमाता हो लेकिन फिर भी वह अजात को अपने पुत्र से ज्यादा प्यार करती है। वह दुखी होकर छलना से कहती है-

> **"छलना! बहिन! यह क्या कह रही हो? मेरा वत्स कुणीक!**
> **प्यारा कुणीक! हा भगवान्! मैं उसे देखने न पाऊँगी? मेरा**
> **क्या अपराध।" ... शील और विनय का यह दुष्ट उदाहरण**
> **सिखाकर बच्चों की क्यों हानि कर रही हो?"**

समुद्रदत्त के प्रति वासवी का प्रेम उस समय भी दिखाई पड़ता है जब अजातशत्रु प्रसेनजित द्वारा बंदी बना लिया जाता है तो वासवी ही प्रयास करके उसे छुड़ाती है- "न न, भाई! खोल दो। इसे मैं दुखी देखकर बात नहीं कर सकती। मेरा बच्चा कुणीक -।" एक पुत्र ही अपनी माँ की वास्तविक पहचान कर सकता है क्योंकि जो माँ अपनी संतान के प्रति प्रत्येक क्षण न्यौछावर होने को तैयार रहे, अपना स्नेहांचल फैलाती रहे तो उसकी संतान भी उसे उतना ही प्यार करती है। अजातशत्रु भी अपनी वास्तविक माँ को पहचानते हुए कहता है-

> **"कौन! विमाता? नहीं, तुम मेरी माँ! इतनी ठंडी गोद तो**
> **मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का**
> **अनुभव किया। मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया है, माँ! क्या**
> **तुम क्षमा करोगी?"**

वासवी अपने मन के उद्‌गारों को अजातशत्रु के समक्ष व्यक्त करते हुए कहती है-

> **"... मैं तुम्हारी माँ हूँ। वह तो डायन है, उसने मेरे सुकुमार**
> **बच्चे को बंदी-गृह में भेज दिया। भाई, मैं इसे शीघ्र मगध**
> **के सिंहासन पर भेजना चाहती हूँ....।"**

वास्तुत: वासवी मातृ-हृदय से मंडित स्त्री है।

2. **अटूट सेवा-भावना:** महारानी वासवी के चरित्र की एक अन्य विशेषता उनकी अपने पति के प्रति अटूट-सेवा-भावना है। जब बिंबसार को राज्य-सिंहासन से च्युत किया गया तो बिंबसार के उपवन में जाने के निर्णय के साथ ही वह भी उनके साथ उपवन में जाने के लिए तत्पर हो जाती है। वहाँ वह अपने पति की सेवा-शुश्रुषा करके एक भारतीय नारी का कर्त्तव्य निभाना चाहती है-

> **"भगवन! हम लोगों के लिए एक छोटा-सा उपवन पर्याप्त है।**
> **मैं वहीं नाथ के साथ रहकर सेवा कर सकूँगी।"**

वह अपने पति को एक क्षण के लिए भी दुखी नहीं देखना चाहती। वह अपने पति से पूछती है कि यहाँ उपवन में तुम्हें किसी बात का दु:ख तो नहीं? प्रत्युत्तर में वे कहते हैं- "दु:ख तो

नोट्स

नहीं, देवि! ... किंतु कभी-कभी याचकों का लौट आना, मेरी वेदना का कारण होता है।" उनके इस दःख का समाधान करते हुए वासवी कहती है-

"नाथ! जो आपका है वही न राज्य का है, उसी का अधिकारी कुणीक है, और जो कुछ मुझे मेरे पिहर से मिला है, उसे जब तक मैं न छोड़ूँ - तक तक तो मेरा ही है! काशी का राज्य मुझे, मेरे पिता ने, आँचचल में दिया है, उसकी आय आपके हाथ में आनी चाहिए और मगध साम्राज्य की एक कौड़ी भी आप न छुएँ। नाथ! मैं ऐसा द्वेष से नहीं कहती हूँ; किंतु केवल आपका मान बचाने के लिए।"

वह अपने पति को प्रसन्न देखने के लिए जीवक के प्रति भी आभार व्यक्त करती है कि तुम हमारे कल्याण के लिए अत्यधिक चिंतित हो। वह कहती है-

"जीवक, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी सद्बुद्धि तुम्हारी चिरसंगिनी रहे। महाराज को अब स्वतंत्र-वृत्ति की आवश्यकता है, अतः काशी-प्रांत का राजस्व, जो हमारा प्राप्य है, लाने का उद्योग करना होगा।"

महाराज विंबसार इस तथ्य का विरोध करते हैं कि वे राष्ट्रीय झगड़े में नहीं पड़ना चाहते लेकिन वासवी उन्हें ढांढस बंधाते हुए कहती है- "तब भी आपको भिक्षावृत्ति नहीं करनी होगी। अभी हम लोगों में वह त्याग, मानापमान-रहित अपूर्व स्थिति नहीं आ सकेगी। फिर जो शत्रु से भी अधिक घृणित व्यवहार करना चाहता हो उसकी भिक्षावृत्ति पर अवलंब करने का हृदय नहीं कहता।" वह अपने पति से यह भी नहीं छिपाती कि हम वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वतंत्र नहीं रखे गये।

इस प्रकार वासवी अपने पति के साथ पूर्णतः समर्पित है। उसकी सौत भी इस तथ्य को स्वीकारती है। अतः वह एक सुसभ्य भारतीय नारी है।

3. **सहनशीलता:** वासवी के हृदय में सहनशील नामक प्रवृत्ति प्रचूर मात्रा में विद्यमान है। जब उसकी सौत छलना उस पर व्यंग्य उक्तियों की वर्षा करती है तो वह उसे धैर्यपूर्वक सहन करती रहती है। नाटक के प्रारम्भ में जब छलना क्रोध से उस पर इस उक्ति का प्रहार करती है-

"वह सीधी और तुम सीधी। आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा, और तुम यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।"

तो वासवी सब कुछ सहन करते हुए सहज भाव से यही कह पाती है-

"छलना! बहिन! यह क्या कह रही हो? मेरा वत्स कुणीक!

प्यारा कुणीक! हा भगवन! मैं उसे देखने न पाऊँगी? मेरा क्या अपराध-

XXXXXX

यह क्या मैं देख रही हूँ। छलना! यह गृह-विद्रोह की आग तू क्यों जलाना चाहती है? राजपरिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं?'

इस प्रकार वह कहीं भी क्रोध से काम नहीं लेती। एक अन्य स्थान पर जब छलना उन पर यह अभियोग लगाती है कि काशी में तुमने ही जान-बूझकर विप्लव खड़ा किया है तो वासवी शांत स्वर में कहती है-

"जिसने दिया था, यदि वह ले ले, तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसे न लौटा दूँ। तुम्ही बतलाओ कि मेरा अधिकार छीनकर जब आर्यपुत्र ने तुम्हें दे दिया तब भी मैंने कोई विरोध नहीं किया था।" वह उसे शांत भाव से यह भी सलाह देती है-

"बहिन जाओ, सिंहासन पर बैठकर राजकार्य देखो, व्यर्थ झगड़ने से तुम्हें क्या सुख मिलेगा। और अधिक तुम्हें क्या कहूँ, तुम्हारी बुद्धि।"

4. **क्षमाशील प्रवृत्तिः** वासवी हृदय से किसी के साथ भी घृणा-भाव नहीं रखती, भले दूसरे उसे कितनी ही कटु उक्तियों से घायल क्यों न कर दें। वह दूसरों द्वारा किए गये अपराध को भी शीघ्र ही क्षमा कर देती है। छलना वासवी पर अनेक बार कटुक्तियों से प्रहार करती है लेकिन फिर भी वह उसे क्षमा कर देती है और इतना ही नहीं वह अपने पति बिंबसार से भी छलना को माफ करने की प्रार्थना करती है-

"आर्य-पुत्र! अब मैंने इसको दंड दे दिया है, यह मातृत्व-पद से वांचित की गयी है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है। एक राजमाता को इतना बड़ा दंड कम नहीं है, अब आपको क्षमा करना ही होगा।"

इसी प्रकार वह अजातशत्रु को भी इसके किए हुए कृत्यों के लिए माफ कर देती है। अतः वासवी मल्लिका को छोड़कर अन्य स्त्री पात्रों में अत्यधिक सहनशील है।

5. **वसुधैव कुटुम्बकम की भावनाः** वासवी संपूर्ण विश्व को एक कुटुंब बनाने में विश्वास रखती है।

नोट्स

नाटक के अंत में विरुद्धक और उसकी बहन बाजिरा आपसी गिले-शिकवे दूर करते हैं, तब वासवी अपने पूरे परिवार के विषय में सोचती हुई कहती है-

"अहा! जो हृदय विकसित होने के लिए है, जो मुख हँसकर स्नेह-सहित बातें करने के लिए है, उसे लोग कैसे बिगाड़ लेते हैं। भाई प्रसेन, तुम अपने जीवन-भर में इतने प्रसन्न कभी न हुए होंगे, जितने आज। कुटुंब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही कालूम हुआ होगा। भगवन! क्या कभी वह भी दिन आवेगा जब विश्व-भर में एक कुटुंब स्थापित हो जाएगा और मानव-मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सम्हालेंगे?"

6. **बुद्ध; शिक्षा में अटूट विश्वास:** वासवी महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की अनुगामिनी है। वह अहिंसा में विश्वास करती है। वासवी नाटक के प्रारम्भ में छलना के झगड़े को शांत करते हुए कहती है- "यह क्या मैं देख रही हूँ! छलना! यह गृह-विद्रोह की आग तू क्यों जलाया चाहती है? राजपरिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं?"

इसी प्रकार वह शांति, स्नेह एवं करुणा का संदेश देते हुए यह गीत गाती है-

"बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में,
कुल-लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में।
बंधुवर्ग हो सम्मानित, हों सवेक सुखी, प्रणत अनुचर,
शांतिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर?"

द्वितीय अंक से छठे दृश्य में भी वासवी इसी प्रकार के गीत द्वारा मानव हृदय में करुणा का संचार करने के पक्ष में है-

"दाता सुमति दीजिये!
मानव-हृदय-भूमि करुणा से सींचकर
बोधन-विवेक-बीज अंकुरित कीजिए।
दाता सुमति दीजिये।"

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि वासवी का मन अत्यंत पवित्र और शांत है, जो किसी के प्रति ईर्ष्या या द्वेष भाव नहीं रखता। उसके हृदय में अधिकार की लालसा नहीं है। यह कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होते हुए सबका कल्याण करने में विश्वास रखती है। वह करुणा एवं ममता की साक्षा प्रतिमूर्ति है।

(iii) छलना

छलना महाराज बिंबसार की छोटी रानी तथा अजातशत्रु की माता है। वह देवदत्त की बातों में आकर अपने पति को सिंहासन च्युत करके अपने पुत्र अजातशत्रु को राज्य-सिंहासन सौंप देती है। नाटक के अंत में उसे

अपनी भूल का अनुभव होता है, अत: वह स्त्री से अपने दुर्व्यवहार के प्रति क्षमा माँग लेती है। उसके जीवन की चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. **हिंसा में विश्वास:** नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में अजातशत्रु लुब्धक को इसीलिए काड़े मारना चाहता है क्योंकि वह आज किसी मृगशावक को पकड़कर नहीं लाया। अजात की सौतेली बहन पद्मावती कोड़े को पकड़कर उसे करुणा का संदेश देती हुई कहती है कि- "मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन पशु-जगत में क्या काम कम है?"

यह सुनकर छलना अपने पुत्र अजात का पक्ष लेती हुई पद्मावती को डाँटती है-

> **"पदमावती! यह तुम्हारा अविचार है। कुणीक का हृदय छोटी-छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।"**

पद्मावती उसे समझाने का प्रयास भी करती है कि कुणीक मेरा भाई है इसलिए मैं उसे क्यों न समझाऊँ? किंतु छलना पद्मावती पर यह आरोप लगाती है-

> **"तो क्या तुम उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती हो? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदंड ग्रहण कर सकता है।"**
>
> XXXXXX
>
> **"पद्मा! तू क्या इसकी मंगल कामना करती है? इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भदी सीख है? जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दंड के आधार पर है। क्या तुम्हें नहीं कालूम कि वह भी हिंसात्मक है। "**

इतना ही नहीं, वह अपनी सौत वासवी पर भी ऐसा दोष लगा देती है जो सर्वथा अवांछनीय है-

> **"तू कुटिलता की मूर्ति है। कुणीक को अयोग्य शासक बनाकर उसका राज्य आत्मकसात् करने के लिए कौशांबी से आयी है।"**

निष्कर्षत: छलना का अहिंसा में विश्वास नहीं है। उसके विचार में राजा का परम धर्म न्याय है जो दंड के आधार पर टिका हुआ है। अत: वह हिंसा के आधार पर ही सर्वस्व अर्जित करना चाहती है।

2. **सौतिया डाह:** छलना का जीवन सौतिया-डाह से ग्रस्त है। वह वासवी को एक पल भी अपनी आंखों के समक्ष नहीं देख सकती। वासवी अपने सौतेले पुत्र अजातशत्रु को अपनी संतान से भी ज्यादा चाहती है लेकिन फिर भी छलना वासवी के प्रति व्यंग्योक्ति कहने से नहीं चूकती-

> **"वह सीधी और तुम सीधी! आज से कभी कुणी तुम्हारे पास न जाने पावेगा और तुम भी यदि भलाई चाहो, तो प्रलोभन न देना।"**

नोट्स

उपवन में छलना वासवी और अपने पति बिंबसार के पास अपनी व्यंग्योक्तियों की बाण वर्षा करने के लिए पहुँचती है। वहाँ वासवी उसे सदव्यवहार करते हुए कहती है कि "बहिन छलना! तुमको क्या हो गया है?" तो वह वासवी से अभद्रतापूर्वक कहती है-

"प्रमाद-और क्या। अभी संतोष नहीं हुआ? इतना उपद्रव करा
चुकी हो, और भी कुछ शेष है?

वह वासवी को नीचा दिखाने के लिए बताती है कि अजातशत्रु ने काशी पर अधिकार कर लिया है, यह सुनकर वासवी कहती है कि फिर तुम इतना घबराती क्यों हो उलाहना क्यों दे रही हो। इस पर छलना वासवी पर ही दोष लगाते हुए कहती है-

उलाहना क्यों न दूँ- जबकि तुमने जान-बूझकर यह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे नहीं दबा सकती थी, क्योंकि वह तो तुम्हारे पिता से तुम्हें मिला हुआ प्रांत था।"

वह वासवी से कहती है कि मैं यह ताना सुनने नहीं आई कि आर्यपुत्र ने तुम्हारा अधिकार छीनकर मुझे दे दिया था बल्कि मैं तो "तुमको तुम्हारी असफलता सूचित करने आयी हूँ।" वह आगे कहती है कि इस संदेश को अगर किसी सेवक के माध्यम से भेजती तो, "वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश भी अच्छी तरह से नहीं कहता। वासवी के मुख से प्रत्येक सिकुड़न पर इस प्रकार लक्ष्य न रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता।" उसकी धूर्ततापूर्ण बातों को सुनकर अपने क्रोध को संयमित किए हुए बिंबसार उचित ही उसकी भर्त्सना करते हुए कहते हैं-

"सहन की भी सीमा होती है। अधम नारी - चली जा। तुझे
लज्जा नहीं - बर्बर लिच्छवी रक्त।"

वस्तुतः छलना का सौत के रूप में अधम चेहरा पाठकों एवं दर्शकों के समक्षा बार-बार आता है। लेकिन नाटकांत में उसके इस रूप में भी परिवर्तन अवश्य आता है।

3. **राजसी दंभः** छलना को राजमाता होने का बड़ा अभिमान है। वह आयु और पद में वासवी से छोटी है, किंतु अपने को राजमाता बताते हुए अभिमानपूर्वक कहती है-

"छोटी हूँ या बड़ी, किंतु राजमाता हूँ। अजातशत्रु को शिक्षा
देने का मुझे अधिकार है। उसे राजा होना है। वह भिखमंगों
का - जो अकर्मण्य होकर दरिद्र हो गए हैं।"

इसी बात के लिए वह वासवी से झगड़ती है और फिर बिंबसार से भी इसी बात की शिकायत करती है-

"यही कि मैं छोटी हूँ इसलिए पटरानी नहीं हो सकती और
वासवी मुझे इस बात पर अपदस्त किया चाहती है।"

बिंबसार भी उसे राजमाता की उत्तराधिकारी मानते हुए कहते हैं- "छलना? यह क्या! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के लिए थोड़ा सम्मान रक्षित कर लेना तुम्हें विशेष लघु नहीं बना

सकता उन्होंने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।" किंतु छलना टका-सा उत्तर देती हुई कहती है।"

"इन भुलावों में मैं नहीं आ सकती-महाराज! मेरी धमनियों में
लिच्छवि-रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। यह नीरव अपमान,
यह सांकेतिक घृणा मुझे सह्य नहीं....।"

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि छलना में राजसी दंभ की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से उगार हुई है। इसी दंभ के कारण वह वासवी और बिंबसार का भी अपमान कर बैठती है।

4. **अभद्र व्यवहार:** आलोच्य नाटक के प्रथम दो अंकों में दूसरों के प्रति छलना का व्यवहार अभद्र ही दिखाई देता है। वह किसी के साथ भी सद् व्यवहार करती नजर नहीं आती। अजातशत्रु युद्ध में बंदी बना लिया जाता है तो छलना वासवी से कहती है- "अब तो तुम्हारा हृदय संतुष्ट हुआ?" वासवी उसे बताती है कि वह मेरा भी तो पुत्र था, लेकिन क्रोध में आकर वह छलना बहुत अपमान करती है-

"मीठे मुँह की डायन! अब तेरी बातों से मैं ठंडी नहीं होने
की। ओह! इतना साहस, इतनी कूत-चातुरी! आज मैं उसी
हृदय को निकाल लूँगी, जिसमें यह सब भरा था। वासवी -
सावधान! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ।"

नाटक के प्रारम्भ में देवदत्त के पद्-चिह्नों पर चलने वाली वही छलना उसके साथ भी अभद्र व्यवहार करती है-

"धूर्त। तेरी प्रवंचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई। पुत्र बंदी
होकर विदेश को चला गया और पति को मैंने स्वयं बंदी
बनाया। पाखंड तूने ही यह कुचक्र रचा है।"

राजशक्ति का घमंड ही छलना के व्यवहार के परिवर्तन का कारण है, इसीलिए वह सबकी अपशब्दों में भर्त्सना करती दिखाई देती है।

5. **परिवर्तनशील व्यक्तित्व:** आलोच्य नाटक के अंतिम भाग में छलना के चरित्र में परिवर्तन दिखाई देता है। वह अपने पूर्व के दुर्व्यवहार के लिए सभी पात्रों से क्षमा माँग लेती है। वह अपनी पुत्री पद्मावती से कहती है-

"बेटी! तुम बड़ी हो, मैं बुद्धि में तुमसे छोटी हूँ। मैंने तुम्हारा
अनादर करके तुम्हें भी दुःख दिया और भ्रांत पथ पर चलकर
स्वयं भी दुःखी हुई। ... पद्मा! तुम और अजात सहोदर
भाई-बहन हो, मैं तो सचमुच एक बवंडर हूँ। बहिन वासवी
क्या मेरा अपराध क्षमा कर देंगी?"

नोट्स

इसी प्रकार वह अपने पति बिंबसार से भी उसके पैरों में गिरकर क्षमा माँगती है-

> "नाथ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उदंडता थी। वह मेरी कूट-चातुरी थी, दंभ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वांचित कर दी गयी। ईंट-पत्थर के महल रूपी बंदीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दंडनायक, मेरे शासक! क्यों न उसी समय शील और विनय के नियम-भंग करने के अपराध में मुझे आपने दंड दिया! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यंत्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये।"

इस प्रकार नाटक के अंत में छलना का सिंहनी वाला रूप बदलकर एक सामान्य स्त्री वाला रूप बन जाता है। उसका हृदय-परिवर्तित हो जाता है। उसके जीवन की निष्ठुरता, क्रोध, राजसी दंभ, अभद्र व्यवहार, उग्रता आदि जाती हैं। इस प्रकार प्रसाद जी ने छलना के माध्यम से यह संदेश संप्रेषित किया है कि मनुष्य जब भी चाहे दृढ़ निश्चय करके अपने जीवन को सुधार सकता है। 'सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते' - छलना पर यह कहावत पूर्णतः चरितार्थ होती है।

(iv) आम्रपाली/मागंधी/श्यामा

मागंधी को आलोच्य नाटक में आम्रपाली एवं श्यामा आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। प्रस्तुत नाटक की वह सबसे ज्यादा भ्रष्ट नारी पात्र है। गौतम बुद्ध द्वारा उसका प्रणय-निवेदन ठुकराए जाने की दशा में वह अनेक कुकृत्यों में संलग्न हो जाती है। वह जिस विरुद्धक को प्रेम करने लगती वही उसको धोखा देकर उसकी हत्या करने का प्रयास करता है। गौतम बुद्ध उसे बचा लेते हैं और अन्ततः वह बौद्ध धर्म में सम्मिलित हो जाती है। उसकी चारित्रिक विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **प्रतिशोध की भावना से ग्रस्तः** मागंधी प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त दिखाई देती है। मागंधी गौतम से प्रणय-निवेदन करती है, लेकिन वे एक सन्यासी जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं इसीलिए उसके इस निवेदन को ठुकरा देते हैं। वह इसका गलत अर्थ लगा लेती है और गौतम से बदला लेने की भावना से ग्रस्त हो जाती है।

> "इस रूप का इतना अपमान! सो भी एक दरिद्र भिक्षु के हाथ। मुझसे ब्याह करना अस्वीकार किया। यहाँ मैं राजरानी हुई, फिर भी वह ज्वाला न गयी; यहाँ रूप का गौरव हुआ, तो धन के अभाव से दरिद्र-कन्या होने के अपमान की यंत्रण में पिस रही हूँ। अच्छा, इसका भी प्रतिशोध लूँगी, अब से यही मेरा व्रत हुआ। उदयन राजा है, तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ। दिखला दूंगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं।

वह अपने पति उदयन के माध्यम से कूट-नीति का आश्रय लेते हुए गौतम से अपने अपमान का प्रतिशोध लेना चाहती है। वह उदयन को बताती है कि गौतम पद्मावती के महल में प्रतिदिन आते हैं अत: उन दोनों के अवैध संबंध हैं। इस तीर से वह दो शिकार करना चाहती है - प्रथम तो राजा उदयन के मन को पद्मावती की ओर से विमुख कर अपनी ओर आकर्षित करना, दूसरे गौतम बुद्ध को बदनाम करना। वह गौतम को अपनी प्रतिहिंसा के संबंध में बताती है-

"गौतम! यह तुम्हारी तितिक्षा तुम्हें कहाँ ले जाएगी? यह तुमने कभी न विचारा कि सुन्दर स्त्रियाँ भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा देखें तो कौन खड़ा रहता है?"

2. **सौंदर्य की प्रीतिमूर्ति:** मागंधी एक अत्यधिक सुन्दर स्त्री है। निर्धन परिवार में जन्म लेकर भी वह अपनी सुन्दरता के बल पर उद्यन की तीसरी रानी बन जाती है। वह अपने शृंगार-प्रसाधनों द्वारा उदयन के मन को मोहित कर अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है तो उसकी दासी उससे कहती है-

"वाह स्वामिनी! तुम्हें वेशभूषा की क्या आवश्यकता है? यह सहज सुन्दर रूप बनावटों से और भी बिगड़ जाएगा।"

महाराज के महल में आते ही वह अपनी सुन्दरता और वाक्पटुता का जाल महाराज पर डालने में सफल हो जाती है-

"उठो मागंधी उठो! मुझे अपने हाथों से अपना प्रेम-पूर्ण पात्र शीघ्र पिलाओ, फिर कोई बात होगी।"

उदयन रानी मागंधी के रूप-सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे कहता है-

"तो मागंधी कुछ गाओ।। अब मुझे अपने मुखचंद्र को निर्निमेष देखने दो- एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्र-मालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले चरच्चंद्र की कल्पना करता हुआ मैं भावना की सीमा को लांघ जाऊँ और तुम्हारा सुभित-नि:श्वास मेरी कल्पना का आलिंगन करने लगे। ... वह रूप तुम्हारा-बड़ा प्रभावशाली था, जिसने उदयन को तुम्हारे चरणों में लुटा दिया ...।

शैलेन्द्र नामक डाकू भी उसकी रूप-माधुरी पर मुग्ध हो जाता है और उसके सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए कहता है कि श्यामा तुम्हारे सौंदर्य ने तो यह भी भूला दिया कि मैं एक डाकू था। मैं तुम्हारे रूपाकर्षण में इतना आकर्षित हो गया हूँ कि मुझे यह भी स्मरण नहीं कि मैं कौन था, मेरे जीवन का उद्देश्य क्या था। तुमने तो एक "हिंस्र पशु को पालतू बना लिया, आलसपूर्ण सौंदर्य की तृष्णा मुझे किस लोक में ले जा रही है! तुम क्या हो सुंदरी?"

लेकिन मागंधी के पास रूप का गौरव होने पर भी वह धन के अभाव में दरिद्र कन्या होने का अभिशाप झेल रही है। उसके सौंदर्य का अभिमान ही उसे अन्ततः अन्धकार के गर्त में धकेल

नोट्स

देता है। नाटकांत में उसे अपने अभिमान के टूटने का आभास होते ही वह बौद्ध-भिक्षुणी बन जाती है।

3. **सौंदर्य डाह:** सर्वप्रथम तो गौतम द्वारा मागंधी के प्रणव निवेदन को ठुकराना और दूसरे राजा उदयन की तीसरी रानी बनने पर सौतिया डाह उसे अशांत कर देती है। वह राजा उदयन के मन में गौतम, पद्मावती और वासवदत्ता संबंधी विरोधी भाव जागृत कर देती है-

> **"आप पृथ्वीनाथ हैं, आपको सब कुछ सोहता है। किंतु मैं तो अच्छी आँखों से इस गौतम को नहीं देखती। मगध के राज-मंदिर में ही गुड़ियों का स्वांग अच्छा है। कौशांबी इस पाखंड से बची रहे, तो बड़ा उत्तम हो। स्त्रियों के मंदिर में उपदेश क्यों हो-क्या उन्हें पवित्र छोड़कर किसी और धर्म की आवश्यकता है?"**

यहाँ पर मागंधी ने पद्मावती के मायके राजमहल में मुंडियों की भीड़ लगी रहने की ओर संकेत करके यह कहना चाहा है कि पद्मावती तो विवाह से पूर्व भी गौतम से मिलती रहती थी। मागंधी द्वारा पतिव्रत धर्म का प्रश्न उठाने पर उदयन के मन में पद्मावती के प्रति शंका उत्पन्न हो जाती है और वह इसका लाभ उठाते हुए पद्मावती के महल से लाई गई राजमहल उदयन की वीणा में साँप रखवा देती है। जब महाराज उदयन उसे बजाने के लिए उठाते हैं तो उसमें से सर्प का बच्चा निकलता है। उसी क्षण मागंधी उदयन के मन को पद्मावती के प्रति भड़काते हुए कहती है-

> **"पद्मावती! तू यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है! जो मेरी शंका थी वह प्रत्यक्ष हुई।"**

"क्षमा कीजिए नाथ! मैं प्रार्थना करती हूँ- अपने हृदय को इस हाला से तृप्त कीजिए। अपराध क्षमा हो! मैं दरिद्रकन्या हूँ! मुझे आपके पाने पर और किसी की अभिलाषा नहीं है। वे आपको पा चुकी हैं। अब उन्हें और कुछ की बलवती आकांक्षा है, चाहे लोग उसे धर्म ही क्यों न कहें। मुझमें इतनी सामर्थ्य भी नहीं।"

किंतु बाद में उसके षडयंत्र का पता चलते ही वह अपने महल में आग लगा देती है और जलकर मरने का नाटक करते हुए वहाँ से भाग जाती है।

4. **वारविलासिनी रूप:** मागंधी का दूसरा रूप श्यामा का है, जिसे वह अपने महल में आग लगाकर वहाँ से भागने के बाद अपनाती है। वह काशी की विख्यात वारविलासिनी बन जाती है। रात के सघन वन में वह डाकू शैलेन्द्र से मिलने के लिए आती है। उसके निम्नलिखित संवाद से पता चलता है कि शैलेन्द्र पर वह किस हद तक न्यौछावर है-

> "रात्रि चाहे कितनी भयानक हो, किंतु रमणी के हृदय से

> भयानक वह कदापि नहीं हो सकती। ... किंतु मैं शैलेंद्र से मिलने आयी हूँ- वह डाकू है तो क्या, मेरी वासना भी अतृप्त है। मागंधी! चुप, वह नाम क्यों लेती है। मागंधी कोशांबी के महल में आग लगाकर जल मरी - अब तो श्यामा, काशी की प्रसिद्ध वार-विलासिनी हूँ। बड़े-बड़े राजपुरुष और श्रेष्ठ इसी चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं। .. राजरानी होकर और क्या मिलता था, केवल सापत्न्य ज्वाला की पीड़ा ।"

विरुद्धक जब उससे इस निर्जन स्थान पर आने का कारण पूछता है तो वह निर्लज्जतापूर्वक कह देती है-

> "शैलेन्द्र, क्या तुम्हें यह बताना होगा! मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है, उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझायेगा?
>
> तुम स्नेह की परीक्षा चाहते थे- बोले तुम कैसी परीक्षा चाहते हो? ... शैलेंद्र, लो अपनी नुकीली कटार-इस तड़पते हुए कलेजे में भोंक दो।"

श्यामा अपना यह रूप केवल शारीरिक वासना को तृप्त करने के लिए ही अपनाती है। कोई प्रेमिका इतनी जल्दी अपने पति के समक्ष अपने सुंदर शरीर का समर्पण नहीं करती जितना जल्दी वह शैलेंद्र के समक्ष करती है। अतः वह वेश्याओं जैसा जीवन व्यतीत करने लग जाती है।

5. **सच्ची प्रेमिका:** आलोच्य नाटक में श्यामा का सच्चा प्रेमी रूप भी हमारे समक्ष आता है। वह शैलेंद्र नामक डाकू से प्रेम करने लग जाती है, लेकिन शैलेन्द्र उसके प्रेम पर विश्वास नहीं करता। श्यामा अपने प्रेम का विश्वास दिलाते हुए उससे कहती है-

> "तो क्या अभी तक तुम्हें मेरा विश्वास नहीं? क्या? तुम मनुष्य नहीं हो, आंतरिक प्रेम की शीतलता ने - तम्हें कभी स्पर्श नहीं किया? क्या मेरी प्रणय-भिक्षा असफल होगी? जीवन की कृत्रिमता में दिन-रात प्रेम का बनिज करते-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है? क्या वार-विलासिनी प्रेम करना नहीं जानती? क्या कठोर और क्रूर कर्म करते-करते तुम्हारे हृदय में चेतनलोक की गुदी और कोमलता के स्पंदन नाम को भी अवशिष्ट नहीं है? क्या तुम्हारा हृदय केवल एक मासपिंड है- जिसमें रक्त का संचार नहीं। नहीं-नहीं, ऐसा नहीं, प्रितम- (हाथ पकड़कर गाती है) ।"

वह शैलेंद्र से इतना अधिक प्यार करती है कि उसे फाँसी से बचाने के लिए समुद्रदत्त को बलि का बकिरा बना देती है। वह समुद्रदत्त के साथ इस प्रकार की छलपूर्ण बातें करती है कि उसके षडयंत्र का आभास भी नहीं हो पाता- "जाओ, बलिक के बकरे, जाओ! फिर न आना। मेरा शैलेन्द्र, मेरा प्यारा शैलेन्द्र।"

जिस रात्रि को शैलेंद्र श्यामा की हत्या करने का प्रयास करता है तो श्यामा को इस बात का थोड़ा-सा आभास हो जाता है और वह विरुद्धक से पूछती है-

> **"मैंने अपने जीवन-भर में तुम्हीं को प्यार किया है। तुम मुझे धोखा तो नहीं दोगे? ... नहीं नहीं, मैं आँख न खोलूँगी डर लगता है, तुम्हीं पर मेरा विश्वास है (यही रहो)।**

शैलेंद्र उसे सोया हुआ जानकर गला घोंटकर उसकी हत्या करने के प्रयास करता है लेकिन गौतम द्वारा वह बचा ली जाती है। नाटकांत में जब शैलेंद्र और मल्लिका के समक्ष श्यामा पुनः आती है तो शैलेंद्र आश्चर्यचकित रह जाता है। वहाँ वह शैलेंद्र से कहती है कि तुमने, "एक विश्वास करने वाली स्त्री पर अत्याचार किया है, उसकी हत्या की है।" वह शैलेंद्र को धिक्कारते हुए अपने सच्चे प्रेम के विषय में कहती है-

> **"हाँ शैलेंद्र, तुम्हारी नीचता का प्रत्यक्ष उदाहरण मैं अभी जीवित हूँ। निर्दय! चांडाल के समान क्रूर कर्म तुमने किया। ओह, जिसके लिए मैंने अपना सब छोड़ दिया, अपने वैभव पर ठोकर लगा दी, उसका ऐसा आचरण।"**

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि मागंधी ने अपने जीवन में पहली बार शैलेंद्र से सच्चा प्रेम किया है लेकिन उसी ने श्यामा को धोखा दे दिया। अन्ततः वह बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण लेती है।

6. **परिवर्तनशील-हृदयः** नाटक के अंत में श्यामा का हृदय-परिवर्तन हो जाता है। उसे जीवन के प्रत्येक पग पर निराशा ही हाथ लगती है, उसकी यही निराशा उसे बौद्ध धर्म में सम्मिलित करवा देती है।

वह अपने विगत जीवन के विषय में सोचती हुई निम्नांकित भाव अभिव्यक्त करती है-

> **"वाह री नियति! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये-कभी बैलों को चारा देते-देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठाकर पीने से संकोच होता था, कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ। इस बुद्धिमता का क्या ठिकाना है। वास्तविकत रूप के**

> परिवर्तन की इच्छा मुझे इतनी विषमता में ले आयी। अपनी परिस्थिति को संयंयत न रखकर व्यर्थ महत्त्व का ढोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख-लिप्सा ही में पड़ी- उसी का परिणाम है। स्त्री-सुलभ एक स्निग्धता, सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन में कैसे बनावटी भाव आ गये! जो अब केवल एक संकोचदायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट हैं।

प्रसाद जी ने उसके चरित्र में इस उत्थान और पतन को दिखाकर अन्त में उसकी मनोकामना पूर्ण होते हुए दिखाई गई है। जिस गौतम ने उसे ठुकरा दिया था, वे स्वयं चलकर उसके पास आते हैं। गौतम श्यामा के विषय में कहता है कि "अब तुम अग्नि से तपे हुए हेम की तरह शुद्ध हो गयी हो।" उसकी सम्पूर्ण आकांक्षाएं या मनोकामनाओं का शमन हो जाता है। उसे गौतम का सानिध्य मिल ही जाता है लेकिन वासना के रूप में नहीं बल्कि विश्व-कल्याण की ओर अग्रसर होने के लिए। वह विनती करके गौतम की शिष्या बन जाती है और अपने आम्र-कानन को भी संघ में समर्पित कर देती है। इस प्रकार उसका जीवन शुद्ध सोने के समान हो जाता है।

1.18 अभ्यास प्रश्न

1. जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. अजातशत्रु नाटक का नायक कौन है?
3. अजात शत्रु नाटक का उद्देश्य क्या है?
4. अजातशत्रु नाटक की रचना कब की गई?
5. अजातशत्रु के पुत्र का नाम क्या था?
6. अजातशत्रु का मतलब क्या है?
7. अजातशत्रु नाटक में कौशल का राजकुमार और राजा का पुत्र है जो परिवर्तन चाहता है कौन है?
8. प्रमुख नारी पात्र पर नोट लिखिए।

1.19 संदर्भ पुस्तकें

- वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 और भाग-2. वाराणसी : ज्ञानमण्डल प्रकाशन
- डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन तिवारी,
- डॉ. रामचन्द्र. हिन्दी का गद्य-साहित्य, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन

नोट्स

- चतुर्वेदी, डॉ. रामस्वरूप. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन
- गुप्त, गणपतिचन्द्र. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय भाग), इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन
- डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
- तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन

इकाई-2:

हमीदुल्ला: ख्याल भारमली

संरचना (Structure)

2.1 उद्देश्य
2.2 नवाब हमीदुल्लाह: एक परिचय
2.3 परम्परा, प्रगति और स्वरुप
2.4 हमीदुल्ला के नाटकों में नारी
2.5 'दुलारी बाई' और 'ख्याल भारमली' में लोकनाट्य शैली
2.6 "ख्याल भारमली" मंगचलारण की विशिष्टता
2.7 सूत्रधार – अभिनेत्री का प्रयोग
2.8 भोपा-भोपी का प्रयोग
2.9 गायन मण्डली का प्रयोग
2.10 भारमली की लोककथा
2.11 लोकसंवाद ओर लोकभाषा
2.12 अंग्रेजी शब्द और भाषा का प्रयोग
2.13 लोकगीत
2.14 लोकनृत्य
2.15 लोकवाद्य
2.16 पूर्वदीप्ति शैली
2.17 हास्य और व्यंग्य
2.18 निष्कर्ष
2.19 अभ्यास प्रश्न
2.20 संदर्भ पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भारमली की लोककथा के बारे में;
- अंग्रेजी शब्द और भाषा का प्रयोग के विषय में;
- सूत्रधार – अभिनेत्री का प्रयोग प्रयोग कर सकेंगे;
- लोकगीत, लोकनृत्य, लोकवाद्य के बारे में जानकारी।

2.2 नवाब हमीदुल्लाह: एक परिचय

हमीदुल्लाह खान जन्म- 9 सितम्बर, 1894; मृत्यु- 4 फरवरी, 1960) भारत में भोपाल रियासत के अंतिम नवाब थे। वह बहुत पढ़े लिखे एवं रियासत के कुशल संचालनकर्ता थे। नवाब सुल्तान जहां बेगम ने अपने जीवन काल में ही हमीदुल्लाह खान को 16 मई, 1926 को रियासत का शासक बनाये जाने की घोषणा कर दी थी। 9 जून, 1926 को हमीदुल्लाह खान भोपाल रियासत के शासक बने। शासक होने पर उन्होंने सभी विभागों के अलग-अलग मंत्री बनाये।

परिचय

भोपाल रियासत के आखिरी नवाब हमीदुल्लाह खान का जन्म 9 सितम्बर, 1894 में हुआ था। इसके पहले तमाम बेगमों के हमेशा लड़कियाँ पैदा होती रहीं। सुल्तान जहां बेगम शुरू से ही हमीदुल्ला से ज्यादा प्यार करती थीं एवं रियासत के कार्यों में उन्हें शामिल किया करती थीं। सुल्तान जहां ने 16 अप्रैल, 1916 को हमीदुल्लाह खान को रियासत का चीफ सेक्रेट्री बना दिया था। इनके दोनों बड़े भाई रियासत के उत्तराधिकार के लिये दावेदारी करने लगे थे। नवाब सुल्तान जहां बेगम ने अपने जीवन काल में ही हमीदउल्ला खान को 16 मई, 1926 को रियासत का शासक बनाये जाने की घोषणा की एवं 9 जून, 1926 ई. को ये शासक बने।

विवाह

नवाब हमीदुल्लाह खान की पहली शादी मात्र 11 वर्ष की उम्र में 6 दिसम्बर, 1905 को पेशावर में शहजादा हुमायूं की बेटी मैमूना सुल्तान से हुई, जिनसे 3 पुत्रियां हुई। आबिदा सुल्तान जिनकी शादी नवाब कुरबाई से, साजिदा सुल्तान जिनकी शादी नवाब इफ्तेखार अली खां पटौदी से और राबिया सुल्तान जिनकी शादी पहले नवाब के भतीजे रशीदुज्जफर खान से हुई पर सफल नहीं हुई, फिर आगा नादिर मिर्जा से हुई। नवाब हमीदुल्लाह खान ने दूसरी शादी सन् 1947 भोपाल में की थी, जिससे कोई संतान नहीं हुई।

कुशल शासक

हमीदुल्लाह खान बहुत पढ़े लिखे एवं बेहतरीन हुक्मरान थे। शासक होने पर उन्होंने सभी विभागों के अलग-अलग मंत्री बनाये। भोपाल में 1931 में बिजली महकमा, 1934 में माचिस फैक्ट्री एवं 1937 में टेक्सटाइल मिल एवं सीहोर में शुगर फैक्ट्री लगवाई। करबला और याट क्लब विद्युत शक्ति वाले जल आपूर्ति के पम्प लगाये गये। कार्ड बोर्ड फैक्ट्री, ग्राउन्ड ट्रक टेलीफोन स्टेशन एवं बैरागढ़ में हवाई अड्डे की तामीर कराई। नवाब भोपाल ने अहमदाबाद में राहत मंजिल, चिकलौद कोठी और अहमदाबाद में ही सूफिया मस्जिद बनवाई। नवाब साहब सन् 1930 से 1947 तक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। हमीदुल्लाह खान के संबंध उस समय के मशहूर व्यक्तियों महात्मा गाँधी, मोहम्मद अली जिन्ना, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू, डॉ. अंसारी आदि से थे।

नवाब हमीदुल्लाह खान हिन्दुस्तान की देशी रियासतों के हुक्मरानों की कमेटी, जो चेम्बर आफ प्रिंसेस कहलाती थी, के चान्सलर बने और इसी हैसियत से 1930 में लंदन में हुई गोलमेज कांफ्रेंस और 1931 में दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में भाग लिया। सन् 1947 में नवाब ने एक नामजद मंत्रिमंडल का गठन किया, जिसमें राजा अवधनारायण बिसारिया प्रधानमंत्री, के.एफ. हैदर वित्त मंत्री, मुजफ्फर अली खां खाद्य

मंत्री, सईद उल्ला खां रम्मी स्वास्थ्य व शिक्षा मंत्री एवं भैरों प्रसाद लोक निर्माण मंत्री बनाये गये थे। इस मंत्रिमंडल के गठन के बाद मार्च, 1948 में नवाब हमीदुल्लाह खान ने भोपाल को एक अलग रियासत का स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से मालगुजारी माफी का ऐलान किया, जिसका भारी विरोध हुआ तथा मंत्रिमंडल का नया गठन हुआ।

पाकिस्तान में शामिल होने की चाहत

हमीदुल्लाह खान दो बार 1931 और 1944 में चेम्बर ऑफ प्रिंसेस के चांसलर बने तथा भारत विभाजन के समय वे ही चांसलर थे। आजादी का मसौदा घोषित होने के साथ ही उन्होंने 1947 में चांसलर पद से त्यागपत्र दे दिया था। आजादी के बाद नवाब ने पाकिस्तान जाने की पूरी तैयारी कर ली थी। वहां जाने से पहले उन्होंने यहां से अपना खजाना पाकिस्तान भेज दिया था। इस दौरान नवाब मोहम्मद अली जिन्ना से संपर्क बनाए हुए थे। हमीदुल्लाह खान किसी भी हालत में भारत के साथ अपनी रियासत का विलय नहीं करना चाहते थे। उन्होंने एकीकरण के एग्रीमेंट पर साइन करने से मना कर दिया था। पाकिस्तान के संस्थापक जिन्ना के काफी करीबी होने के कारण उन्हें भारत सरकार पर दवाब बनाने में मदद मिल रही थी।

इस बीच पाकिस्तान जाने की तैयारी कर रहे नवाब हमीदुल्ला ने भोपाल बैंक और रियासत का खजाना पाकिस्तान भेज दिया। खजाना भेजने के बाद नवाब ने अपनी बेटी आबिदा सुल्तान से भोपाल रियासत का शासक बनने को कहा। बेटी ने पूरी स्थिति को समझकर मना कर दिया। जब उन्हें समझ आ गया कि भोपाल को पाकिस्तान में शामिल नहीं किया जा सकता और भारत में रियासत का विलय उनकी मर्जी के बिना भी हो जाएगा तो वह हज को चले गए। उन्हें लगा कि लौटने तक कोई नया रास्ता निकल आएगा।

रियासत का भारत में विलय

नवाब हमीदुल्ला ने भोपाल रियासत की जिस बैंक का खजाना पाकिस्तान भेजा था, उसमें करोड़ों रुपए भोपाल के लोगों के जमा थे। बाद में इस बैंक को दिवालिया घोषित कर दिया गया। 11 सितंबर, 1948 को पाकिस्तान के संस्थापक मोहम्मद अली जिन्ना की मौत हो गई। पाकिस्तान का राजनीतिक घटनाक्रम तेजीसे बदला। नवाब को सरदार पटेल की सख्त चेतावनी मिल गई थी। अंततः भारी मन से नवाब ने 1 जून, 1949 को भोपाल रियासत का विलय भारत में कर दिया।

2.3 परम्परा, प्रगति और स्वरुप

राजस्थान में प्रर्दश्य-कला (परफौर्किमग आर्ट) और लोकनाट्यो की एक समृह परम्परा रही है। यहाँ रंगमंच की परम्परा भी लोकगाथाओं व लोकवार्ताओं की ही भाँति प्राचीन है। बगड़ावत (देवनारायण) की महागाथा, पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी, ढोला-मारु सैणी बीजानन्द, रामू चनणा, जेठवा ऊजली, मूमल महेन्द्र, बाघो भारमली तथा दुरपदावतार इत्यादि ऐसी अनेक कथाएँ हैं। ये लोकवार्ताएँ गाथाएँ तथा आख्यान, प्रेम व सौन्दर्य तथा शौर्य व जीवट से भरे पड़े हैं। इनका नियमित इतिहास रुप तो ईसा की सोहलवीं सदी से मिलता है, परन्तु इन गाथाओं के प्रक्ररणों में देश, काल व परिस्थिति के अनुसार स्वभाविक भिन्नता भी दिखाई देती है। लोक नाट्यों में "तुर्रा कलंगी' कम-से-कम ५०० वर्ष पुराना है। मेवाड़ के दो पीर संतों ने जिनके नाम शाहअली, और तुक्कनगीर थे "तुर्राकलंगी' की रचना की। बीकानेर की "रम्मत' की अपनी न्यारी ही विशेषता है, जो उसे कुचामनी और चिड़ावा के ख्याल से अलग करती है। बीकानेर में

नोट्स

लगभग १०० वर्षों से चली आ रही लोकप्रिय लोककाव्य की प्रतिस्पर्द्धा में से ही "रम्मत' का निकास ढूंढ़ा जा सकता है।

राजस्थान के आदिवासी भीलों की संस्कृति ने लोककलाओं तथा लोक नाट्यों की परम्परा के विकास व संरक्षण एवं संवर्धन में बहुत योग दिया है। उन्होंने अपने रीति-रिवाजों के माध्यम से रंगमंच के लोक नाट्यों रुपों को भी निरन्तर जीवित रखा है। अरावली पर्वत श्रृंखलाओं में बसे भील प्रतिवर्ष मानसून की समाप्ति पर करीब चालीस दिनों का एक बड़ा समारोह आयोजित करते हैं, जिसमें अनेक प्रकार के नृत्य और नाटक आदि सम्पन्न किए जाते हैं। ये समारोह "गवरी' त्यौहार के नाम से जाने जाते हैं और यह भील समुदाय की प्राचीन संस्कृति एवं रंगमंचीय परम्परा के आज तक भी नए-ए रुप ग्रहण कर समृद्ध होने का संदेश देते हैं।

राजस्थान की संस्कृति प्राचीन होने के साथ-साथ जीवन्त भी है। क्रमबद्धता एवं अपने पुनर्नवीकरण की ये दो आधारभूत शक्तियाँ इसमें अंतर्निहित हैं। ये दो शक्तियाँ इसे आज के लगातार परिवर्तनशील समाज की जरुरतों के अनुरुप सार्थक बनाती है। असाधारण व्यवहारिक बुद्धि की धरोहर लिए सर्वसाधारण, लोकजन की सार्वजनिक चेतना में उभरने वाले महान विचारों का जो रुप उभरता है, उसे यह प्राणवान लोक व आदिम संस्कृति सहज ही ग्रहण करके आत्मसात् कर लेती है। राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोक नाट्यों और उन्हें सम्पन्न करने वाली लोक मंडलियों की यही शक्ति है।

राजस्थान में सामन्तवादी काल में राज्याश्रयों के लोक नाट्यों एवं अन्य प्रदर्शन कलाओं को लगातार पोषण मिला है, वे संमृद्ध भी हुई। उस समय का दरबारी माहौल प्रश्रय कलाओं के तथा लोक नाट्यों के विकास के लिए अत्यन्त अनुकूल था। राज दरबारों में इनके प्रति रुचि होने से विभिन्न राज्यों के सामन्त वर्ग इन कलाओं से भली भाँति परिचित होते थे। जबकि दरबारोन्मुख होने के कारण आमजन को ये कलाएँ बहुधा देखने को नहीं मिलती थी। इसलिए आम लोगों में इनके प्रति गहरी रुचि नहीं हो सकी व केवल लोक समाज की पेशेवर जातियों तक ही ये कलाएँ सीमित रह गई।

राजा-महाराजाओं के दैनिक, मासिक, वार्षिक मनोविनोद के लिए होने वाले पेशेवर जातियों द्वारा सम्पन्न ये लोकनाट्य आमजन देख भी नहीं सकते थे। क्योंकि राजा-महाराजा तथा सामन्त इन्हें नीची नजरों से देखते थे। मध्यकाल में यह प्रवृति विशेष रुप से विकसित हो गई व गाँवों तक में भी फैल गई। रुढ़ जाति प्रथा के विकसित हो जाने से लोकनाट्य दलित जाति या निम्न वर्ग के मनोरंजन का साधन रह गई और यही कारण था कि उच्च वर्ग में इसी मध्यवर्ती सामन्ती प्रथा के कारण लोक नाट्यों के प्रति एक हीन भावना पैदा हो गई। इस तरह लोकनाट्य आमजन की सम्पत्ति बना रहा। और यही उनकी सामाजिक सामुदायिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनी रही।

राजस्थान को लोक नाट्यों की विविध रुपो की दृष्टि से तीन क्षेत्रों में बांटा जा सकता है -

१. उदयपुर, डूँगरपुर, कोटा, झालावाड़ और सिरोही के पर्वतीय क्षेत्र,

२. जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर तथा जैसलमेर के रेगिस्तानी क्षेत्र,

३. राजस्थान का पूर्वांचल, जिसमें शेखावटी, जयपुर, अलवर, भरतपुर तथा धौलपुर आदि प्रांत हैं।

सामुदायिक मनोरंजन की दृष्टि से पहाड़ी इलाके बहुत अधिक समृद्ध हैं, क्योंकि इनके भीतर भीलों, मीणों, वनराजों, सहरियों और गिरासियों की रंगमय संस्कृति बिखरी बड़ी है। इनका सहज स्वाभाविक

प्राकृतिक परिवेश तथा प्राकृतिक देवी-देवताओं में इनकी अटूट निष्ठा ही इनके जीवन्त पर्यन्त नृत्यों, नाट्यों तथा रंगीन परिधान में डूबी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का कारण है। यही उनके नृत्य, नाट्य, संगीत एवं मेले के अवसर पर उत्पन्न होने वाली सामुदायिक भावना का प्रतीक बनकर सामने आती है।

राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत कम है और वहां की साधारण जनता को अपनी जीविका निर्वाह के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में मनोरंजन का कार्य सरगड़ा, नट, निरासी, भाट व भाण्ड नामक पेशेवर जनजातियों के लोग करते हैं।

ये लोग स्वांग, लोक नाट्य को जमाने की नयी जरुरतों के मुताबिक ढाल कर लोगों का मनोरंजन करने में निपुण होते हैं। ऐसे कार्य प्राय: ये भाण्डों (लोक नाट्य का प्रचलित प्राचीन रुप) के माध्यम से करते हैं। इनके वार्तालाप पूरी तौर पर व्यंग्य विनोद प्रधान होते हैं और लोगों को हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देते हैं।

राजस्थान का पूर्वांचन, विशेषतौर पर शेखावटी का इलाका ख्याल की परम्परागत लोक नाट्य शैली के लिए विख्यात है। ख्याल राजस्थान के लोक नाट्य की सबसे लोकप्रिय विद्या है। इसको जनता के समक्ष मंचित करने वाली पेशेवर जातियों या नाट्य मण्डलियों के लिए कमाई के प्रचुर साधन है। व इस अँचल में प्रकृति भी इन नाट्यकर्मियों के प्रति इतनी क्रूर नहीं है जितनी जैसलमेर, बाड़मेर के रेगिस्तानी इलाकों में है। कठपुतली, भाट, कामड़ घोड़ी, नर्तक व भोपे आदि लोक नाट्यों के विविध रुपों को नियमित रुप से आज जनता से समक्ष प्रस्तुत कर अपनी जीविका आसानी से चला रहे हैं।

इनको सम्पन्न करने वाली पेशेवर जातियों, समूहों तथा मण्डलियों के माध्यम से ही ये लोकनाट्य रुप अपना निरन्तर विकास कर रहा है। जिसमें लोक रंगमंच आज भी अपना प्रभाव कायम किए हुए है। अलवर, भरतपुर क्षेत्र के लोक नाट्यों में राजस्थान, हरियाणा और उत्तरप्रदेश की लोक संस्कृतियों का मिला-जुला रुप भी देखने को मिलता है।

राजस्थान के सीमावर्ती इलाके, जैसे धौलपुर, सवाईमाधोपुर, डीग उत्तरप्रदेश से जुड़े होने के कारण वहाँ की संस्कृति से अछूते नहीं रह सकते और रासलीलाएँ, रामलीला, रसिया, ख्याल एवं नौटंकी आदि लोक नाट्यों पर स्पष्टत: ब्रजभूमि की संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। ऐसा लगता है जैसे यहाँ राजस्थान व ब्रज क्षेत्रों की लोक संस्कृतियाँ गलबहियाँ डाले हों।

राजस्थान में लोक नाट्यों के निम्नांकित रुप विद्यमान हैं। ये लोक नाट्य इन क्षेत्रों के लोगों के मनोरंजन की आवश्यकता से पैदा हुए हैं और इन्होंने यहाँ के जनजीवन के लोकाचार में अपना स्थान बना लिया है।

ख्याल - १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही राजस्थान में लोक नाट्यों के नियमित रुप से सम्पन्न होने के प्रमाण मिलते हैं। इन्हें ख्याल कहा जाता था। इन ख्यालों की विषय-वस्तु पौराणिक या किसी पुराख्यान से जुड़ी होती है।

इनमें ऐतिहासिक तत्व भी होते हैं तथा उस जमाने के लोकप्रिय वीराख्यान आदि होते हैं। भौगोलिक अन्तर के कारण इन ख्यालों ने भी परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग रुप ग्रहण कर लिए। इन ख्यालों के खास है, कुचामनी ख्याल, शेखावटी ख्याल, माँची ख्याल तथा हाथरसी ख्याल। ये सभी ख्याल बोलियों में ही अलग नहीं है। बल्कि इनमें शैलीगत भिन्नता भी है। जहाँ कुछ ख्यालों में संगीत की महत्ता भी है दूसरों में नाटक, नृत्य और गीतों का प्राधान्य है। गीत प्राय: लोकगीतों पर आधारित है या शास्त्रीय संगीत

नोट्स

पर। लोकगीतों एवं शास्त्रीय संगीत का भेद ख्याल को गाने वाले विशेष नाट्यकार पर ही आधारित होता है। अगर लोकनाट्यकार शास्त्रीय संगीत का जानकार है तो वह ख्याल संगीत प्रधान होगा। यदि खिलाड़ी अभिनेता नृत्य का जानकार हुआ तो ख्याल नृत्य प्रधान होगा। इन ख्यालों में से कुछेक की विशेषताएँ इस प्रकार है।

कुचामनी ख्याल

विख्यात लोक नाट्यकार द्वारा इसका प्रर्वतन किया गया इसने प्रचलित ख्याल परम्परा में अपनी शैली का समावेश किया। इस शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित है –

अ) इसका रुप आपेरा जैसा है।

ब) गीत (लोकगीतों) की प्रधानता है।

स) लय के अनुसार ही नृत्य के कदमों की ताल बंधी है।

द) खुले मंच (ओपन एयर) में इसे सम्पन्न किया जाता है।

इसकी कुछ अन्य विशेषताएँ भी है। यथा –

(१) सरल भाषा,

(२) सीधी बोधगम्य लोकप्रिय धुनों का प्रयोग,

(३) अभिनय की कुछ सूक्ष्म भावभिव्यक्तियाँ, तथा

(४) सामाजिक व्यंग्य पर आधारित कथावस्तु का चुनाव।

लच्छीराम

खुद एक अच्छे नर्तक और लेखक थे। उन्होंने १० ख्यालों की रचना की, जिनमें चाँदी नीलगिरी, राव रिड़मल तथा मीरा मंगल मुख्य है। उनके पास अपनी खुद की नृत्य मण्डली थी, जो वह पेशेवर नृत्य के लिए भी उपयोग करते थे। ख्याल सांयकाल से शुरु होकर सुबह तक चलता है और उसे देखने के लिए दूर-दराज के इलाकों से आते हैं। यद्यपि राम के निधन को ६५ साल हो गए हैं, पर उनके ख्याल राजस्थान के सभी क्षेत्रों में आज भी दिखाए जाते हैं।

स्त्री चरित्र का अभिनय पुरुष पात्र ही करते हैं। ख्याल में संगत के लिए ढोल वादक, शहनाई वादक व सारंगी वादक मुख्य रुप से सहयोगी होते हैं। गीत बहुत ऊँचे स्वर में गाये जाते हैं और इन्हें प्रायः नृतक ही गाते हैं। इन नृतकों की गाते समय साँस टूट जाने की पूर्ति मंच पर बैठे दूसरे सहगायक करते हैं। इन दिनों ख्याल शैली के प्रमुख प्रर्वतक उगमराज खिलाड़ी है।

शेखावटी ख्याल

नानूराम इस शैली के मुख्य खिलाड़ी रहे हैं। उनका स्वर्गवास ६५ साल पहले हुआ, फिर वे अपने पीछे स्वचरित ख्यालों की एक धरोहर छोड़ गए हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित है –

(१) हीरराझाँ (२) हरीचन्द्र (३) भर्तृहरि (४) जयदेव कलाली (५) ढोला मरवड़ और (६) आल्हादेव।

नानूराम चिड़ावा के निवासी थे, और मुसलमान थे। किन्तु सभी जाति के लोग उनका बडडा सम्मान करते थे। अपनी कला के लिए वे आज भी सभी सम्प्रदायों में याद किए जाते है। उनके योग्यतम शिष्यों

में दूलिया राणा का नाम लिया जाता है, जो उपर्युक्त सभी ख्याल अपने भतीजे के साथ खेला करते हैं।

(१) अच्छा पद संचालन,

(२) पूर्ण सम्प्रेषित हो सके उस शैली, भाषा और मुद्रा में गीत गायन,

(३) वाद्यवृन्द की उचित संगत, जिनमें प्रायः हारमोनियम, सारंगी, शहनाई, बाँसुरी, नक्कारा तथा ढोलक का प्रयोग करते हैं।

दुलिया राणा की मृत्यु के बाद उनके पुत्र सोहन लाल तथा पोते बन्सी बनारसी आज तक भी साल में आठ महीनों तक इन ख्यालों का अखाड़ा लगाते हैं। दूलिया राणा, जिन्हें गुजरे अधिक अर्सा नहीं हुआ, स्त्री चरित्रों की भूमिका बड़ी कुशलता से निभाते थे और यह क्रम उन्होंने ८० वर्ष की अवस्था तक जारी रखा। वे जितने अच्छे गायक थे उतने ही अच्छे नृतक भी थे।

शेखावटी के पूरे इलाके में दूलिया के ख्याल बहुत लोकप्रिय है। उनके ख्यालों के गीतमय संवाद उन्हें साहित्यिक तथा रंगमंच के बहुत अनुकूल बनाते हैं। इस इलाके के हजारों लाखों लोग इन ख्यालों को निशुल्क देखते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। दूलिया राणा के परिवार के लोग ही इन ख्यालों में होने वाले व्यय का निजी तौर पर वहन करते हैं और खिलाड़ियों को स्वयं पारिश्रमिक भी देते हैं। इन ख्यालों के खिलाड़ी प्रायः मिरासी, ढोली और सरगड़ाओं में से ही होते हैं। परन्तु जो अन्य जाति के लोग इसमें शरीक होना चाहें तो उन पर कोई पाबंदी नहीं है। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन जातियों के अलावा भी अन्य गैर-पेशेवर जाति के लोग केवल मनोविनोद के लिए बी इन ख्यालों को अपने स्तर पर भी सम्पन्न करते हैं।

जयपुरी ख्याल

यद्यपि सभी ख्यालों की प्रकृति मिलती-जुलती है, परन्तु जयपुर ख्याल की कुछ अपनी विशेषता है जो इस प्रकार है।

(१) स्त्री पात्रों की भूमिका भी स्त्रियाँ निभाती हैं।

(२) जयपुर ख्याल में नए प्रयोगों की महती संभावनाएँ हैं।

(३) यह शैली रुढ़ नहीं है। मुक्त है तथा लचीली है।

(४) इसमें अखबारों, कविता, संगीत, नृत्य तथा गान व अभिनय का सुंदर समानुपातिक समावेश है।

गुणिजन ख्याल के कलाकार जयपुरी ख्यालों में हिस्सा लिया करते थे। इस शैली के कुछ लोकप्रिय ख्याल निम्नांकित है –

(१) जोगी-जोगन (२) कान-गूजरी (३) मियाँ-बीबू (४) पठान, और (५) रसीली तम्बोलन।

सन् १९८१ में ख्याल भारमली के कथ्य पर नयी शैली में एक नाटक लिखा गया। इसके लेखक राजस्थान के प्रयोगवादी नाटककार हमीदुल्ला है। यह नाटक राजस्थान के अलावा हैदराबाद, बैंगलोर, चौन्नई, मुम्बई, दिल्ली और लखनऊ आदि स्थानों पर खोला गया। इसके बहुरंगी लोक वातावरण के कारण इसे सभी स्थलों पर पसन्द किया गया तथा कुछ प्रांतीय भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ।

तुर्रा कलंगी ख्याल मेवाड़ के शाह अली और तुकनगीर नाम के दो संत पीरों ने ४०० वर्ष पहले इसकी रचना की और इसे यह नाम दिया। तुर्रा को महादेव 'शिव' और 'कलंगी' को 'पार्वती' का प्रतीक

नोट्स

माना जाता है। तुकनगीर "तुर्रा' के पक्षकार थे तथा शाह अली 'कलंगी' के। इन दोनों खिलाड़ियों ने 'तुर्राकलंगी' के माध्यम से "शिवशक्ति' के विचारों को लोक जीवन तक पहुँचाया। इनके प्रचार का मुख्य माध्यम काव्यमय सरंचनाएँ थी, जिन्हें लोक समाज में "दंगल' के नाम से जाना जाता है। ये "दंगल' जब भी आयोजित होते हैं, तो दोनों पक्षों के खिलाड़ियों को बुलाया जाता है और फिर इनमें पहर-दर-पहर काव्यात्मक संवाद होते हैं। इन काव्यात्मक संवादों के नित नए-नए रुप ग्रहण करने से शिव शक्ति दर्शन का लोक जगत में उच्च स्तरीय काव्यात्मक संवाद प्रचलन में आया है।

"तुर्रा कलंगी' का ख्याल बहुत लोकप्रिय हुआ है और यह सम्पूर्ण राजस्थान में खेला जाता है। इसका विस्तार मध्यप्रदेश तक भी है। "तुर्रा कलंगी' सम्बन्धी सबसे पहले केले गए ख्याल का नाम "तुर्रा कलंगी का ख्याल' था।

तुर्रा कलंगी के शेष चरित्र प्राय: वही होते हैं जो अन्य ख्यालों के होते हैं। फिर भी निम्नलिखित विशिष्ट बातें इसकी उल्लेखनीय है -

(अ) इसकी प्रकृति गैर व्यावसायिक कि की है।

(ब) इसमें रंगमंच की भरपूर सजावट की जाती है।

(स) नृत्य की कदम ताल सरल होती है।

(द) लयात्सम गायन जो, कविता के बोल जैसा ही होता है।

(ई) यही एक ऐसा लोकनाट्य है जिसमें दर्शक अधिक भाग लेते थे।

क्षेत्र में आकर सम्पन्न करते हैं। यह समारोह मानसून की समाप्ति के अवसर पर किया जाता है। इस समारोह का रुप रंगमंचीय ही है, यह सांस्कृतिक, कलात्मक एवं रंगमंचीय अभिनय तीनों ही दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध लोकनाट्य शैली है। भीलों जैसे आदिम कबीलों द्वारा सभी दृष्टि से उत्कृष्ट यह आयोजन विस्मय में डाल देता है।

राजस्थान की आदिम जातियों में से एक भील जाति ने इस क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीनकाल से निवास किया हुआ है। इनकी शौर्यपूर्ण गाथाएँ, इनकी रंगीनी संस्कृति की धरोहर है। हिन्दू पुराण गाथाओं के सम्मिश्रण से बना भील समुदाय का यह गवरी लोकनाट्य इस आदिम समुदाय की ऐतिहासिक परम्परा को उजागर करता है और सामुदायिक सीमाओं के बाहर जाकर चिरकाल की परम्पराओं के अंगीकरण का यह अपने आप में एक सुन्दर दृष्टान्त बन गया है।

अगस्त के महीने में रक्षाबन्धन के दूसरे दिन भील व भोपा जाति के लोग किसी मंदिर के आगे इकट्ठे होते हैं, और देवी "गवरी' का आह्वान करते हैं वे उसे अपना अतिथ्य ग्रहण करने की मनौती करते है। धान्य बीज प्रतिमा पर फेंककर चढ़ाए जाते हैं। यदि ये प्रतिमा के दाहिनी और गिर जाते हैं तो इसे माता "गवरी' की स्वीकृति माना जाता है, परन्तु बाँयी ओर गिरने पर इसे देवी की "मनाही' माना जाता है। अब यदि देवी का उत्तर हाँ में है तो व्यापक स्तर पर समारोह की तैयारियाँ शुरु हो जाती है। लकड़ी के मुखौटों, आदिम मेकअप का साजो-सामान, जवाहरात, वेशभूषा तथा रंगमंच की सामग्री सभी समारोह के लिए एकत्र की जाती है।

मन्दिर के सामने समारोह के निष्पादन के लिए बांस गाढ़ दिया जाता है तथा प्रतिदिन कई प्रकार के पारम्परिक लोक नाट्य मय दर्शकगणों के सम्मुख श्रृंखलाबद्ध रुप में प्रस्तुत किए जाते हैं। केन्द्र में गाड़ा

गया लट्टू। इस नाट्य का आधार बिन्दु होता है। यह सांसारिक लोगों के देवतागणों के बीच के जंक्शन के रुप में कार्य करता है। जब देवी की आत्मा इस लट्टे से नीचे आती है तो खिलाड़ियों के साथ दर्शक भी अभिभूत हो जाते हैं।

"तुर्रा कलंगी' के मुख्य केन्द्र है, घोसूण्डा, चित्तौड़, निम्बाहेड़ा तथा नीमच (मध्य प्रदेश) इन स्थानों में "तुर्रा कलंगी' के सर्वश्रेष्ठ कलाकार दिए हैं, जैसे चेतराम, घोसूण्डा का हमीद बेग एवं संवादों, जब पायल तारचन्द तथा ठाकुर ओंकार सिंह आदि। इन तुर्राकलंगी खिलाड़ियों में "सोनी जयदयाल' बहुत ही विख्यात एवं प्रतिभाशाली था। उसके ख्याल आज भी लोकप्रिय हैं। उसकी मृत्यु के बाद भी इन क्षेत्रों के लोग उसके बोलों एवं संवादों को बहुत इज्जत देते हैं।

"तुर्रा कलंगी' के ख्याल में २० फील ऊँचाई के दो अलग मंच आमने-सामने बनाए जाते हैं। इस ख्याल के दो मुख्य खिलाड़ी अपने-अपने मंचों पर आते है, ये मंच सुंदर ढ़ंग से सजे होते हैं। इन्हें फूल-पत्तियों तथा चित्रकारी से, छज्जों आदि से अलंकृत किया जाता है। इसके संवादों को "बोल' की संज्ञा दी जाती है और ये काव्यत्मक होते हैं। इस ख्याल के दो बोल बानगी के तौर पर नीचे दिए जाते हैं –

सवाल तुर्रा : महादेव विकराल रुप ले,

जोत चन्द्रमा न पड़ी
पार्वती और गंगा लड़ती
इन दोनों में कौन बड़ी?
जवाब कलंगी : मि सायरी करते हो,
बातें करते हो बड़ी-बड़ी
पार्वती और गंगा दोनों
बतलाओं किस रोज लड़ी?

गवरी – मेवाड़ में भीलो का यह सामुदायिक गीत नाट्य अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं पारम्परिक रीति-रिवाज से युक्त है। इसमें प्रयोग किए जाने की बहुत सम्भावनाएँ हैं। इसका सांगीतिक लय गीतात्मक रुप प्रयोग के अनुकूल है। गवरी का संचालन एवं नियंत्रण संगीत द्वारा होता है।

जैसा कि पहले बताया गया है, अरावली क्षेत्रों में रहने वाले भील, प्रत्येक वर्ष ४० दिनों का गवरी समारोह उदयपुर शहर के आसपास के क्षेत्रों में आकर सम्पन्न करते हैं। यह समारोह मानसून की समाप्ति के अवसर पर किया जाता है। इस समारोह का रुप रंगमंचीय ही है, यह सांस्कृतिक, कलात्मक एवं रंगमंचीय अभिनय तीनों ही दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध लोक नाट्यशैली है। भीलों जैसे आदिम कबीलों द्वारा सभी दृष्टि से उत्कृष्ट यह आयोजन विस्मय में डाल देता है।

राजस्थान की आदिम जातियों में से एक भील जाति ने इस क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीनकाल से निवास किया हुआ है। इनकी शौर्यपूर्ण गाथाएँ, इनकी रंगीन संस्कृति की धरोहर है। हिन्दू पुराण गाथाओं के सम्मिश्रण से बना भील समुदाय का यह गवरी लोकनाट्य इस आदिम समुदाय की ऐतिहासिक परम्परा को उजागर करता है व सामुदायिक सीमाओं के बाहर जाकर चिरकाल की परम्पराओं के अंगीकरण का यह अपने आप में एक सुन्दर दृष्टान्त बन गया है।

नोट्स

अगस्त के महीने में रक्षाबन्धन के दूसरे दिन भील व भोपा जाति के लोग किसी मंदिर के आगे इकट्ठे होते हैं और देवी "गवरी" का आह्वान करते हैं, वे उसे अपना आतिथ्य ग्रहण करने की मनौती करते हैं। धान्य बीज प्रतिमा पर फेंककर चढ़ाए जाते हैं। यदे ये प्रतिमा के दाहिनी ओर गिर जाते हैं तो इसे माता "गवरी' की स्वीकृति माना जाता है, परन्तु बांयी और गिरने पर इसे देवी की "मनाही' मानी जाती है। अब यदि देवी का उत्तर हाँ में है तो व्यापक स्तर पर साजो-सामान, जवाहरात, वेशभूषा तथा रंगमंच की सामग्री सभी समारोह के लिए एकत्र की जाती है।

गवरी की कथा में कथानक या सहकथानक क्रमबद्ध नहीं होते, परन्तु फिर भी मूल गाथा से इनका सम्बन्ध होता है और उसके साथ तारतम्य दिकाना ही इनका लक्ष्य है। ये बिखरे हुए कथानक युद्ध, पराजय, मृत्यु तथा अन्ततः जीवात्मा के पुनर्जीवित हो उठने से सम्बद्ध होते हैं। यह पुनर्जीवन देवी की कृपा से मिलता हुआ दिखलाया जाता है।

"नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' से दिक्षित भानु भारती ने "पशु गायत्री' नाम का एक नाट्य अनेक वार मंचित किया है। यह प्रयोग अपनी कलात्मक अभिव्यंजना के लिए विज्ञप्त है। इस नाट्य विद्या का माध्यम इतना जीवंत है कि इसे शिक्षा और विकास के कार्यक्रमों से भी जोड़ जो सकता है। गवरी के नवीन रुपान्तरण की दृष्टि से भानु भारती के "पशु गायत्री' का अपना महत्तव है।

गवरी की मुख्य विशेषताएँ निम्ननिखित हैं -

(१) जुलाई, अगस्त के महीने में "बूढिया देन' की पूजा के अवसर पर "गवरी' सम्पन्न किया जाता है।

(२) भील अपना घर छोड़कर सामुदायिक समारोह के विचारों से बंधकर "गवरी' में भाग लेने आते हैं और ४० दिनों तक लगातर वहीं रहते हैं।

(३) गवरी सुबह से शाम तक प्रतिदिन चलता रहता है।

(४) इनमें भाग लेने वाले नर्तक, अभिनेता और गायक सभी उत्साह व उल्लास से भरे होते हैं।

गवरी के कुछ मुक्य प्रसंग है - देवी अम्बड़, बादशाह की सवारी, मिन्यावड़, बनजारा, खाड़लिया भूत थात शेर सूअर की लड़ाई। ये सभी प्रसंग प्रतीकार्थक हैं।

रम्मत - बीकानेर की रम्मतों का अपना अलग ही रंग है। ये कुचामन, चिड़ावा और शेखावटी के "ख्यालों' से भिन्न होती है। १०० वर्ष पूर्व बीकानेर क्षेत्र में होली एवं सावन आदि के अवसर पर होने वाली लोक काव्य-प्रतियोगिताओं से ही उनका उद्‌भव हुआ है। कुछ लोक कवियों ने राजस्थान के सुविख्यात लोक - नायकों एवं महापुरुषों पर काव्य रचनाएँ की थीं, ये रचनाएँ ऐतिहासिक एवं धार्मिक लोक चरित्रों पर रची गयीं। इन्हीं रचनाओं को रंगमंच के ऊपर मंचित कर दिया गया। इन रम्मतों के रचयिताओं के नाम इस प्रकार हैं -

(१) मनीराम व्यास

(२) तुलसी राम

(३) फागू महाराज

(४) सूआ महाराज

(५) तेज कवि (जैसलमेरी)

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि तेज कवि जैसलमेरी रंगमंच के क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे।

नोट्स

सन् १९३८ में जन्मे इस कवि ने रम्मत का अखाड़ा श्रीकृष्ण कम्पनी के नाम से चालू किया। सन् १९४३ में उन्होंने "स्वतंत्र बावनी' की रचना की और उसे महात्मा गाँधी को भेंट कर दी।

ब्रिटिश सरकार ने इस पर निगरानी रखी और उनकी गिरफ़्तारी का वारण्ट जारी कर दिया। जब तेज कवि को वारण्ट की सूचना मिली, वह पुलिस कमिश्नर के घर गये और अपनी ओजस्वी वाणी मे कहा –

कमिश्नर खोल दरवाजा, हमें भी जेल जाना है,

हिन्द तेरा है न तेरे बाप का

हमारी मातृभूमि पर लगाया बन्दीखाना है।

इससे सिद्ध होता है कि रम्मत और ख्याल के खिलाड़ी सिर्फ मनोरंजक नहीं थे, बल्कि वे समाज में हो रही क्रांति के प्रति पूरी तरह से जागरुक भी थे। रम्मत की खुच उल्लेखनीय बातें निम्नांकित हैं –

(१) रम्मत शुरु होने से पहले रम्मत के मुख्य कलाकार मंच पर ही आकर बैठ जाते हैं, ताकि हरेक दर्शक उन्हें अपनी वेशभूषा और मेक-अप में देख सके। संवाद विशेष गायकों द्वारा गाए जाते हैं, जो मंच पर ही बैठे होते हैं। और मुख्य चरित्र उन गायकों द्वारा गाये जाने वाले संवादों को नृत्य और अभिनय करते हुए स्वयं भी बोलते जाते हैं।

(२) रम्मत में मुख्य वाद्य नगाड़ा तथा ढोलक होते हैं।

(३) कोई रंगमंचीय साज-सज्जा नहीं होती। मंच का धरातल थोड़ा-सा ऊँचा बनाया जाता है। जो मुख्य गीत गाये जाते हैं उनका सम्बन्ध निम्नांकित विषयों से है –

चौमासा – वर्षा ऋतु का वर्णन,

लावणी – देवी-देवताओं की पूजा से सम्बंधित गीत,

गणपति वंदना – गणपति की वन्दना

रामदेवजी का भजन – रम्मत शुरु होने से पहले रामदेवजी का भजन गाया जाता है।

रम्मत की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उसकी साहित्यिकता है। वाद्यवादक व संगत करने वाले कलाकाल रम्मत में स्वयं मनोरंजन का विशेष साधन बन जाते हैं और लोक समाज में इस वाजिन्दों साजियों की बहुत इज्जत होती है।

रम्मत के शेष तत्व शेखावटी ख्याल से मेल खाते हैं। फर्क इतना ही रहता है कि जहाँ शेखावटी ख्याल पेशेवर ख्याल की गिनती में आ गए हैं, रम्मत आज भी सामुदायिक और लोकनाट्य का ही रुप लिए है। इसमें किसी भी जाति का व्यक्ति भाग ले सकता है।

रम्मत के कुछ विख्यात खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार है – स्वर्गीय श्री रामगोपाल जी मेहता, साई सेवग, गंगादास सेवग, सूरज काना सेनग, जीतमल और गीड़ोजी। ये सभी बीकाने के हैं। गीडोजी अपने समय के विख्यात नगाड़ावादक रहे हैं।

बीकानेर के अलावा रम्मतें पोकरण, फलौदी, जैसलमेर और आस-पड़ोस के क्षेत्र में खेली जाती हैं। इन रम्मतों में जिन्होंने बहुत लोक ख्याति अर्जित की है वे हैं – रम्मत पूरन भक्त की, मोरहवज की, डूंगजी जवाहर जी की, राजा हरिशचन्द्र और गोपीचन्द भरथरी की।

तमाशा – जयपुर में तमाशे की गौरवशाली परम्परा है। यह लोकनाट्य १९वीं शती के पूर्व मध्यकाल में महाराज प्रतापसिंह के काल में शुरु हुआ। इसके खिलाड़ी इस तमाशे को लेकर देश के सुदूर दक्षिणी

नोट्स

भाग से यात्रा करते हुए पहुँच गये। यह परिवार भ परिवार कहलाता है। इस परिवार के लोगों ने ही तमाशा थियेटर के रुप में जयपुर ख्याल और ध्रुवपद-गायकी का समावेश किया।

पं. बंशीधर भ इसके मुखिया थे। इन्हें जयपुर राजघराने का भी संरक्षण मिला। यह परिवार आज भी विद्यमान हैं और यह परिवार परम्परागत विधि से आज भी तमासा का लोक मंचन करता है। इस परिवार में उस्ताद परम्परा फूल जी भ द्वारा स्थापित हुई।

फूलजी भ अपनी ध्रुवपद गायकी के लिए प्रसिद्ध थे। इस समय गोपीकृष्ण भ जो "गोपीजी' के नाम से जाने जाते हैं। इस परम्परा के उस्ताद है। वे आज भी "तमाशा' का हर साल आयोजन करते हैं। इस परिवार में वासुदेव भ एक अच्छे रंगमंच अभिनेता तथा गायक हैं और वे इस परम्परा को जीवित रखने में सक्रिय हैं। वासुदेव भ "गोपीजी' के चचेरे भाई हैं। गोपीचन्द तथा "हीर रांझा' इनके द्वारा खेले जाने वाले "तमाशे' हैं। ये तमासे आज भी लोकप्रिय हैं। तमासे की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(१) भट्ट परिवार द्वारा प्रस्तुत "तमाशा' महाराष्ट्र के तमाशे से भिन्न हैं।

(२) संवाद काव्यमय है तथा इन्हें राग-रागनियों में निबद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है।

(३) "तमाशा' खुले मंच पर होता है, इसे "अखाड़ा' कहा जाता है।

(४) इस भ परिवार द्वारा २५० वर्षों पूर्व की इस परम्परागत लोकनाट्य शैली का प्रर्दशन आज तक लगातार हर साल किया जाता है।

(५) सारी संगीत रचनाएँ राग-रागनियों में निबद्ध है।

(६) संगीत, नृत्य और गायन, इन तीनों की "तमाशे' में प्रधानता है।

(७) सिनेमा व टी.वी. के इस युग में भी दर्शक के बीच "तमाशा' आज भी अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

स्वांग - लोकनाट्य रुपों में एक परम्परा "स्वांग' की भी है। शाब्दिक दृष्टि से इसका अर्थ है किसी विशेष, ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में विख्यात चरित्र या देवी देवता की नकल में मेकअप करना व वेशभूषा पहनना। कुछ जनजाति के लोग तो स्वांग करने का पेशा अपनाए हुए हैं। यह एक ऐसी विद्या है जिसे एक ही चरित्र सम्पन्न करता है।

परन्तु आधुनिक प्रसार-प्रचार के माध्यमों के विकसित हो जाने से यह तमासे का लोकनाट्य रुप शहर से दूर गाँव की धरोहर रह गया है और इसे केवल शादी-ब्याह तथा त्यौहार के अवसर पर ही दिखलाया जाता है।

फड़ - फड़ भोपों द्वारा खेली जाती है। ये भोपें जल्दी-जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान तक चले जाते हैं। चित्रित फड़ को दर्शकों के सामने खड़ा तान दिया जाता है। भोपा गायक की पत्नी या सहयोगिनी, लोलटेन लेकर फड़ के पास नाचती-गाती हुई पहुँचती है और वह जिस अंश का गायन करती है, डंडी से उसे बजाती है। भोपा अपने प्रिय वाद्य "रावण हत्या' को बजाता हुआ स्वंय भी नाचता-गाता रहता है। यह नृत्य गान समूह के रुप में होता है। दर्शकगण फड़ के दृश्यों से एवं सहवर्ती अभिनय से बहुत प्रभावित होते हैं और अपने परिवार के लिए इसे देखना, वर्ष की शुभ घटना मानते हैं।

फड़ से सम्बन्धित दो लोकप्रिय चित्र गीत कथाएँ पाबूजी व देवनारायण जी की फड़े ही हैं। पाबूजी राठौड़ जाति के महान लोक नायक हुए है। इनका समय आज से ७०० वर्ष पूर्व था। उनकी गाथा के आज भी राजस्थान में हजारों-लाखों प्रशंसक हैं।